DCEAH-103

प्राचीन भारतीय कला, वास्तुकला और प्रतिमा विज्ञान

Ancient Indian Art, Architecture and Iconography

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम

इकाई 1	कला : अर्थ, परिभाषा एवं मुख्य विशेषताएँ	3—8
इकाई 2	वास्तुकला एवं मूर्तिकला का उद्‌भव एवं विकास	9—24
इकाई 3	हड़प्पा कला, वास्तुकला, मूर्तिकला एवं मुहरें	25—52
इकाई 4	मौर्य एवं शुंग कालीन कला—वास्तुकला, लोककला, मूर्तिकला, स्तम्भ एवं स्तूप—भरहुत, साँची एवं अमरावती	53—78
इकाई 5	शैलोत्खनित स्थापत्य—चैत्यगृह एवं विहार—कार्ले, भाजा एवं अजन्ता	79—91
इकाई 6	शुंग—सातवाहन मूर्तिकला—लोक और शाही परंपराएँ, टेराकोटा और स्तूप मूर्तियाँ, अमरावती	92—98
इकाई 7	कुषाण कालीन कला : महायान बौद्ध धर्म और कला, मथुरा एवं गांधार कला	99—109
इकाई 8	गुप्त कालीन कला का उदभव एवं विकास—मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला, कला की विभिन्न शैलियों का विकासः मथुरा, सारनाथ एवं मन्दिर निर्माण की प्रमुख शैलियां—नागर, द्रविड़ एवं बेसर	110—129
इकाई 9	चन्देल, कलचुरि एवं परमार कालीन कला—खजुराहो समूह	130—142
इकाई 10	पल्लव एवं चालुक्य कालीन कला—मण्डप, रथ (महाबलिपुरम्, संरचनात्मक मन्दिर)	143—157
इकाई 11	चोल कालीन कला एवं स्थापत्य	158—165
इकाई 12	राष्ट्रकूट कालीन कला एवं स्थापत्य—एलोरा	166—177
इकाई 13	प्राचीन भारत में प्रतिमा की उत्पत्ति, प्राचीनता और प्रतिमा की विभिन्न परंपराएँ	178—183
इकाई 14	हिन्दू प्रतिमा विज्ञान—विष्णु, शिव एवं सूर्य	184—192
इकाई 15	बौद्ध प्रतिमा विज्ञान—ध्यानी बुद्ध, नश्वर मानुषी बुद्ध और बोधिसत्व	193—202

DCEAH-103

प्राचीन भारतीय कला, वास्तुकला और प्रतिमा विज्ञान
Ancient Indian Art, Architecture and Iconography

परामर्श समिति

प्रो.सीमा सिंह,	कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.जे.एन.पाल	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.राजकुमार गुप्ता	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यलय,प्रयागराज
डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

लेखक

डॉ.संजय कुमार कुशवाहा	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज (इकाई 1—15)

सम्पादक

प्रो.हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2024

ISBN : 978-81-19530-85-4 **January : 2024 (मुद्रित)**

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार सिंह, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2025

मुद्रकः— चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा0 लि0 42/7 जवाहर लाल नेहरु रोड प्रयागराज

NFT-186

इकाई–1 : कला : अर्थ, परिभाषा एवं मुख्य विशेषताएँ

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 कला : अर्थ

1.4 परिभाषा

1.5 मुख्य विशेषताएं

1.5.1 निरंतरता

1.5.2 धार्मिकता / आध्यात्मिकता

1.5.3 अभिव्यक्ति की प्रधानता

1.5.4 समन्वय की प्रवृत्ति

1.5.5 प्रतीकात्मकता

1.5.6 राष्ट्रीय एकता

1.5.7 अलंकरण की प्रधानता

1.5.8 सर्वांगीणता

1.6 सारांश

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.8 बोधप्रश्न

1.1 प्रस्तावना

कला, मानव मस्तिष्क, हृदय के भाव और हस्त शिल्प इन तीनों के समन्वय से मूर्त रूप लेती हैं। इसलिए जब से मानव ने सोचना प्रारंभ किया, बुद्धि का विकास हुआ तथा शारीरिक बनावट में परिवर्तन हुआ तब से मानव द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ कृतियों का निर्माण किया जाना प्रारंभ हुआ जो तत्कालीन समय के साक्ष्य के रूप में प्राप्त होती है। ये कृतियां जिस काल में

बनी उस काल के मानवी कौशल या कला को प्रदर्शित करती हैं अतः हम कह सकते हैं कि कला भारतीय संस्कृति और समाज अथवा अन्य किसी भी संस्कृति एवं समाज की दर्पण है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- कला के अर्थ को।
- कला की परिभाषा के बारे में।
- प्राचीन भारतीय कला की विशेषताओं को।

1.3 कला : अर्थ

कला मानव मस्तिष्क की उच्चतम एवं प्रखरतम कल्पना है। कला का संबंध लौकिक जगत से है। कला शब्द संस्कृत भाषा के कल् धातु में कच्+ टाप्प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका अर्थ होता है किसी वस्तु का छोटा खंड, चंद्रमा की एक रेखा, शोभा, अलंकरण एवं कुशलता आदि। कुछ विद्वानों के अनुसार कला 'क'+'ला' से मिलकर बना है, जिसमें 'क' का अर्थ सौंदर्य तथा 'ला' का देना या लाना है अर्थात सौंदर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु कला है।कला एक विस्तृत शब्द है, कला शब्द से तात्पर्य मनुष्य के मन की सच्ची भावनाओ और ह्रदय की गहराईयो में स्थित भावनाओ की सुंदर प्रस्तुति से है. मन की स्थिति को माननीय क्रियाओ के द्वारा दर्शाना ही कला है. जैसे नृत्य में अनेक भाव होते है. नृत्य करते समय कलाकार के मन में खुशी, हसी, गुस्सा, लोभ इत्यादि भाव आते है. यह भाव कलाकार के नृत्य में भी प्रकट होते है. इसे ही कला कहा जाता है.

इतिहास और संस्कृति के संदर्भ में कला से तात्पर्य सौंदर्य, सुंदरता, अलंकरण और आनंद से है। कला के महत्व को स्पष्ट करते हुए भतृहरी ने अपनी पुस्तक नीतिशतक में लिखा है कि साहित्य, संगीत और कला से हीन मनुष्य पूँछ और सींग से रहित साक्षात पशु के समान है–

साहित्य संगीतकला विहीनः

साक्षातपशुः पुच्छविषाणहीनः ।

आचार्य खेमराज ने कला के संदर्भ में बताया है कि अपने 'स्व' अर्थात भाव को किसी न किसी वस्तु के माध्यम से व्यक्त करना ही कला है और यह अभिव्यक्ति चित्र, नृत्य, मूर्ति, वाद्य, गायन कला आदि के माध्यम से होती है।

1.4 परिभाषा

आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि कला किसी वस्तु के स्वरूप को मोहक बनती है तथा सुशोभित करती है। कला किसी कार्य को सम्यक रूप से संपन्न करने की प्रक्रिया को भी कहा जा सकता है। जिस कौशल द्वारा किसी वस्तु में उपयोगिता और सुंदरता का संचार हो जाए वही कला है।

कला को अलग–अलग ढंग से कई विद्वानों ने परिभाषित करने की कोशिश किया है जिसका विवरण निम्नवत् है– कला को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि अपने मनोगत भाव को सौंदर्य के साथ मूर्त रूप में व्यक्त करना ही कला है या अपने मनोगत भाव को दृश्य रूप में व्यक्त करना ही कला है।

कला को कलाकृति का पर्याय मानते हुए कहा गया है कि कलाकृति में कौशल छन्द तथा लय होता है।

'प्रसाद जी' के अनुसार, (कला का अर्थ) ईश्वर की कर्तव्य शक्ति का मानव द्वारा शारीरिक तथा मानसिक कौशलपूर्ण निर्माण कला है।

'डॉ. श्याम सुन्दर दास' के अनुसार,–'जिस गुण या कौशल के कारण किसी वस्तु उपयोगी गुण और सुन्दरता आ जाती है, उसको कला की संज्ञा दी जाती है।'

'पी.एन. चौयल' के अनुसार 'कला आदमी को अभिव्यक्ति देती है।'

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार "जो सत्य और सुन्दर है वही ही कला है."

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार

कांट कला को सौंदर्य बोध का ही परिणाम मानते हैं।

अरस्तु के अनुसार "कला हमारी प्रकृति के सुन्दर अनुभवों का अनुकरण है."

प्लेटो के अनुसार "कला सत्य की अनुकृति है, "कला में सौंदर्य बोध एवं नैतिकता के समन्वय को आवश्यक मानते हैं ।

हरबर्ट रीड' (कला का अर्थ)– अभिव्यक्ति के आह्लादक या रंजक स्वरूप को कला मानते हैं।

हीगल (कला का अर्थ)– कला को आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम माना है।

'क्रौचे' दृष्य कला बाह्य प्रभाव की आन्तरिक अभिव्यक्ति है।

'टॉल्सटॉय' के अनुसार 'क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि, शब्द आदि के द्वारा भावों की वह अभिव्यक्ति जो श्रोता, दर्शक और पाठक के मन में भी वही भाव जागृत कर दे, कला है।'

1.5 मुख्य विशेषताएं

भारतीय कला का इतिहास अत्यंत प्राचीन तथा गौरवशाली है। भारतीय कला का विकास हमें प्रागैतिहासिक काल से ही कला के विभिन्न प्रकारों में दिखाई देना शुरू हो जाता है हालांकि प्रारंभिक काल काल मानव की आवश्यकता की पूर्ति के क्रम में किए गए उपकरणों का परिणाम है वही कला धीरे–धीरे मानव के विकास के साथ–साथ आगे बढ़ती गई जो कि हमें बाद में स्थापत्य कला, मूर्ति कला, मृदभांड कला आदि में प्रदर्शित होती है। भारतीय कला की विशेषताएं निम्नवत् है।

1.5.1 निरंतरता

निरंतर लगभग 3000 वर्ष पुरानी सेंधव सभ्यता की कलाकृतियों से लेकर 12वीं सदी तक की कलाकृतियों में एक निरंतर कलात्मक कला प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है भारतीय कला के विभिन्न तत्वों जैसे नगर विन्यास स्तंभ युक्त भवन निर्माणमूर्ति निर्माण आदि का रूप हमें भारत की प्राचीनतम सभ्यता में दिखाई देता है उसी के आधार पर वस्तु तथा दक्षिण का सम्मिलित विकास हुआ।

1.5.2 धार्मिकता / आध्यात्मिकता

धार्मिकता /आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का प्रधान तत्व है जिसमें उसके सभी बच्चों को प्रभावित किया है कल भी इसका अपवाद नहीं है कल के सभी पक्षों वस्तु या विस्थापित के लक्षण चित्रकला आदि के ऊपर धर्म का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है हिंदू बौद्ध जैन आदि धर्म से संबंधित मंदिरों मूर्तियों तथा चित्रों का निर्माण कलाकारों के द्वारा किया गया लेकिन इसका अर्थ या नहीं है कि इसमें लौकिक विषयों की अपेक्षा की गई धार्मिक रचनाओं के साथ ही साथ भारतीय रचनाकारों ने लौकिक जीवन से संबंधित मूर्तियों तथा अद्भुत कलाओं का निर्माण बहुतायत में किया है इस प्रकार धार्मिकता तथा लौकिकता का सामान्य हमें भारतीय कला में देखने को मिलता है।

1.5.3 अभिव्यक्ति की प्रधानता

कलाकारों ने अपनी कुशलता का प्रदर्शन शरीर का यथार्थ चित्रण करने अथवा सौंदर्य को भरने में नहीं किया बल्कि आंतरिक भावों को उभरने का प्रयास

ही अधिक हुआ है इसका सबसे सुंदर उदाहरण हमें भारतीय शैली में बनी बुद्ध की मूर्तियों में देखने को मिलता है जहां गांधार शैली की मूर्तियों में बहुत दिक्कत बहुत अधिकता एवं शारीरिक सौंदर्य की प्रधानता है वहां गुप्तकालीन मूर्तियों में आध्यात्मिकता एवं भावुकता है।

1.5.4 प्रतीकात्मकता

इसमें कुछ प्रतिको माध्यम से अत्यंत रोचक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त कर दिया गया है कुशल युग के पूर्व महात्मा बुद्ध का अंकन प्रति के माध्यम से ही किया गया है पदम चक्र, हंस, स्वास्तिक आद्या प्रति के माध्यम से विभिन्न भावनाओं को व्यक्त किया गया है अशोक के सारनाथ सिंह शीर्ष स्तंभ की फलक पर उत्मीर्ण पशुओं गज अश्व बैल तथा सिंह के माध्यम महात्मा बुद्ध के विचार जन्म गृह त्याग तथा सार्वभौम सत्ता के भावों को व्यक्त किया गया है।

1.5.5 समन्वय की प्रवृत्ति

भारतीय संस्कृति में अभिव्यक्त समन्वय की प्रवृत्ति भी कलात्मक कृतियां के माध्यम से मूर्ति होती है। सुकुमारता का गंभीरता के साथ रमणीयिता का संयम के साथ आध्यात्मिक का सौंदर्य के साथ तथा यथार्थ का आदर्श के साथ अत्यंत सुंदर समन्वय हमे इस कला में दिखाई देता है सुप्रसिद्ध कलाविड हेबल में आदर्शवादिता रहस्यवादिता प्रतीकात्मकता परिलौकिकता को भारतीय कला का सार्थक निरूपित किया है।

1.5.6 राष्ट्रीय एकता

भारत की कला राष्ट्रीय एकता को स्थूल रूप में प्रकट करने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। समूचे देश की कलात्मक विशेषताएं प्रायः एक जैसी हैं मूर्तियों में समान लक्षण तथा मुद्राएं देखने को मिलती हैं विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियों को देखने के बाद ऐसा जान पड़ता है कि वह किसी देशव्यापी संस्था द्वारा तैयार करवाई गई हो। पर्वतों को काटकर बनाए गए मंदिरों अथवा पाषाण से बनाए गए मंदिरों में यद्यपि कुछ स्थानीय विभिन्नताएं हैं। फिर भी उनकी सामान्य शैली एक ही प्रकार की है इसके माध्यम से भारतीय एकता की भावना सरोकार होती है।

1.5.7 अलंकरण की प्रधानता

भारतीय कला की एक अन्य विशेषता अलंकरण की प्रधानता भी है। प्राचीन काल से ही कलाकारों ने अपनी कृतियों को विविध प्रकार से अलंकृत करने का प्रयास किया है। अलंकरणों का उद्देश्य कला के सौंदर्य बढ़ाना है।

1.5.8 सर्वांगीणता

भारतीय कला में सर्वांगीणता की दिशा दिखाई देती है, दूसरे शब्दों में कहें तो इसमें राजा तथा सामान्य जन दोनों का चित्रण मुख्य रूप से किया गया है यदि मौर्य काल की कला दरबारी है तो शुंग काल की कला लोक जीवन से संबंधित है। विभिन्न कालों की कलाकृतियों में सामान्य जन–जीवन की मनोरम झांकी कला में संरक्षित है।

1.6 सारांश

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय कला की प्रकृति धार्मिक होने के साथ–साथ उसमें लोक कला, आदर्शवादिता, रहस्यवादिता, चमत्कारिकता,राष्ट्रवादिता तथा सर्वांगीणता इत्यादि के तत्व दिखाई पड़ते हैं। इन सभी तत्वों का प्रदर्शन भारतीय कला को विश्व की प्राचीन कलाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथ्वी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

1.8 बोधप्रश्न

प्रश्न –1 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न –2 प्राचीन भारतीय कला की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

प्रश्न –3 कला क्या है? परिभाषित कीजिए।

इकाई–2 : वास्तुकला एवं मूर्तिकला का उद्भव एवं विकास

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 वास्तुकला का उद्भव एवं विकास

2.4 मूर्तिकला का उद्भव एवं विकास

2.5 सारांश

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.7 बोधप्रश्न

2.1 प्रस्तावना

वास्तुकला स्थाई निर्माण को कहां जाता है अर्थात किसी स्थान को मानव के लिए वास योग्य बनाने की कला है। अतः कालांतर में यह चाहे जितनी जटिल हो गई हो, इसका आरंभ मौसम की उग्रता, वन्य पशुओं के भय और शत्रुओं के आक्रमण से बचने के प्रारंभिक उपायों में ही हुआ होगा। आदिकाल में शिकारियों और मछुआरों ने पहाड़ी गुफाओं में शरण ली होगी। ये गुफाएँ ही शायद मानव निवास के प्राचीनतम रूप रहे होंगे। किसान वृक्षों के झुरमुटों में रहते और सरकंडे, घास आदि के झोंपड़े बनाते रहे होगें। अपने पशुओं के साथ घूमनेवाले चरवाहे चमड़े के खोलों में रहते रहे होंगे और उन्हें बांसों या लट्ठों से ऊँचा करके डेरे बनाते रहे होंगे। इन्हीं गुफाओं और डेरो में बाद के वास्तुविकास के बीज मिलते हैं। मिस्र के पुराने मकानों के नमूने साक्षी हैं कि अनगढ़ चट्टानी दीवारों और छतों वाली प्राकृतिक गुफाओं से ही पत्थर की दीवारें उठाने और उन पर पटियों की छत रखने का विचार उत्पन्न हुआ। झुरमुटों के अनुरूप झोंपड़े बने, जिनकी दीवारें परस्पर सटाकर गाड़ी हुई शाखाओं से और छत घास से बनाई गई। इस प्रकार के एकमंजिले और दुमंजिले झोंपड़े अब भी आदिवासी बनाते हैं। चमड़े के डेरे भी अरब के बद्दू और अन्य घुमंतू जातियाँ काम में लाती हैं।

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय वास्तुकला के बारे में एक अद्भुत तथ्य यह है कि मूर्तिकला उसका एक अविभाज्य अंग थी। इस संदर्भ में सिधु घाटी की संस्कृति ही शायद एकमात्र अपवाद है, क्योंकि उसकी इमारतें उपयोगितावादी हैं,

पर उनमें कलात्मक कौशल नहीं है। हो सकता है, समय के साथ उनकी अलंकारमय सजावट नष्ट हो गई हो। हालांकि मूर्तिकला विकसित थी।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- वास्तुकला एवं मूर्तिकला के अर्थ को।
- वास्तुकला का उद्‌भव एवं विकास के बारे में।
- मूर्तिकला का उद्‌भव एवं विकास को।

2.3 वास्तुकला का उद्‌भव एवं विकास

प्रागैतिहासिक अवशेष, जिनका वास्तुकीय की अपेक्षा पुरातात्विक महत्व ही अधिक है, प्रायः एकाश्मक (जैसे–कुस्तुंतुनिया, उत्तरी फ्रांस, इंग्लैंड, सैवाय, या भारत में), स्तूप (जो शायद मिस्र के पिरामिड या वेल्स, स्काटलैंड और आयरलैंड के छत्ताकुटीर जैसे ही बने) तथा स्विट्‌जरलैंड, इटली, या आयरलैंड में मिले सरोवर निवासियों के रूप में हैं। बाद में धीरे–धीरे इनका विकास होता गया।

यद्यपि मौर्यों द्वारा निर्मित भवनों के अवशेष हमारे बीच नहीं हैं पर मौर्य शासन काल की कई बातों का जिक्र ग्रीक इतिहासकार मेगास्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में किया है। इसमें मौर्यो की राजधानी पाटलिपुत्र शहर के वैभव एवं उसकी सत्ता के बारे में भी उल्लेख किया गया है। पाटलिपुत्र शहर दस मील लंबा और दो मील चौड़ा था, जो मजबूत लकड़ी की दीवारों से घिरा हुआ था। उसमें 500 टॉवर और 64 दरवाजे थे। उसके भीतर शाही महल था जो अपने आकार में ईरान के शाही महल की नकल पर बना था। चंद्रगुप्त के पौत्र अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाया और कला तथा प्राचीन सभ्यता संस्कृति के विकास के लिए बौद्ध धर्म की गतिविधियों का विस्तार किया। 1400 ईसवी के आस–पास जब चीनी बौद्ध यात्री फाह्यान भारत आया, तब उसने शाही महल को खड़े हुए देखा था। शाही महल के साथ–साथ दीवारों, दरवाजों तथा अन्य कलाकृतियों को देखकर वह इतना प्रभावित हुआ कि उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि उनका निर्माण मानव कलाकारों–चित्रकारों के हाथों हुआ होगा। अपराजितप्रेच्छा और बृहतसंहिता में भी स्थापत्य कला के उद्‌भव और विकास का वर्णन मिलता है।

मंदिर स्थापत्य कला

मंदिर के पर्यायवाची अनेक शब्द प्राचीन ग्रंथों में प्रयुक्त मिलते हैं जिन्हें देवालय, देवगृह, देवागार, देवकुल, देवतायतन, देवस्थान आदि इन सभी शब्दों से

देवता के निवास स्थान का बोध होता है। अतएव मंदिर की कल्पना देवता की आवास के रूप में की गई है। पुरातात्विक उत्खनन से यह प्रमाणित होता है कि अति प्राचीन काल से ही यहां मूर्ति पूजा प्रचलित थी सिंधु सभ्यता की खुदाई से कुछ ऐसी मूर्तियां व मोहरे उपलब्ध हुई है जिन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूर्ति पूजा हड़प्पा संस्कृति का एक प्रमुख अंग थे एक मोहर पर योगी की मूर्ति अंकित है मार्शल महोदय ने इसकी तुलना शिव अथवा पशुपति से की है। खुदाई से प्राप्त मातृ देवी की अनेक मूर्तियां इसकी संपुष्टि करती हैं कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो निवासी मूर्तिपूजक थे, किंतु उत्खनन से ऐसा कोई स्थानीय भवन उपलब्ध नहीं हुआ है,जिसे उन देवताओं का आवास गर्भगृह या मंदिर की संज्ञा दी जा सके। वैदिक साहित्य में भी इंद्र, वायु, वरुण, अग्निमित्र, यम आदि देवी–देवताओं का उल्लेख है लेकिन मंदीर तथा मूर्ति पूजा का प्रायः अभाव ही है। संभव है कि ईश्वर उपासना की प्राचीनतम पद्धति प्रार्थना थी, जो अति सरल एवं सर्व सुलभ थी। अस्तुति तथा प्रार्थना द्वारा देवता को प्रसन्न किया जाता था और मनवांछित फल प्राप्ति की आशा की जाती थी। वेदों की सूक्त एवं मंत्र इन्हीं प्रार्थनाओं के संग्रह है। वैदिक युग का मानव प्रकृति, नदी की विचित्र लीलाओं का अवलोकन आश्चर्य भरी दृष्टि से करता और आनंद के सागर में डूब जाता था। बहुत सी घटनाओं को सरल रूप में समझने के लिए उसने अनेक देवताओं की कल्पनाएं की जिनके द्वारा इस अखिल ब्रह्मांड का कार्य संचालित होता है इस प्रकार वह प्राकृतिक एवं अध्यात्मिक शक्तियों का साक्षात अनुभव करता है, इसलिए उसे मूर्ति जैसे प्रतीक तथा उसके आवास या मंदिर की आवश्यकता नहीं थी यद्यपि अग्नि तथा नाग पूजा का वर्णन कई स्थानों पर है। संभव है विशेष पूजन के अवसरों पर देवताओं की कास्ट निर्मित प्रति कृतियां बनाई जाती होंगी।

मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। इन मंदिरों में दो मंडप होते थे जो स्तम्भों तथा बल्लों पर आश्रित थे। इनकी छतों पर नरकट एवं चटाई का आच्छादन होता था परंतु प्रमाण स्वरूप इस युग का कोई मंदिर उपलब्ध नहीं है। परवर्ती ग्रंथों में भी मंदिर का उल्लेख है किंतु इसकी सम्पुष्टि के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। कालांतर में बौद्ध एवं जैन धर्म के उदय के फलस्वरूप ब्राम्हण धर्म यज्ञ हवन कर्मकांड की आलोचना प्रारंभ हुई तथा बौद्ध धर्म में चैत्य और विहार का निर्माण होने लगा। यही स्थिति कुषाण काल तक बनी रही। गुप्त वंश के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म को बढ़ावा मिला देवी–देवताओं की पूजा के साथ ही देवालय का भी निर्माण होने लगा। प्रारंभिक मंदिरों का वास्तु विन्यास बौद्ध विहारों से प्रभावित था। गुप्तकालीन वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण मंदिर है। ईट पत्थर निर्मित मंदिर स्थापत्य शैली का प्रारंभ गुप्त काल में माना जाता है।

पिछले काल की तुलना में इस काल में वास्तु में ईट पत्थर का प्रयोग पिछले युग की तुलना में अधिक होने लगा वास्तु के अस्थाई माध्यम के रूप में लकड़ी का प्रयोग अधिक उपयुक्त ना था। कुषाण काल में मूर्ति प्रधान थी किंतु गुप्त काल तक आते–आते देव प्रतिमा पर्याप्त विकसित हुई जिसे प्रतिष्ठित करने के लिए मंदिर निर्माण की आवश्यकता महसूस हुई। अति प्राचीन काल में मंदिर वेदी के रूप में खुले आकाश में स्थापित होते थे जिन्हें यान या चरण कहते थे। द्वितीय चरण में वेदी के चारों ओर बाड़ निर्माण की प्रथा प्रारंभ हुई, जिसे प्राकार कहते हैं। नगरी (चित्तौड़) का नारायण वाटिका, जोकि दितीय शताब्दी ईसा पूर्व का निर्मित है, शिला प्रकार का प्राचीनतम उदाहरण है। यहां चबूतरे पर पूजा शिला रखी जाती थी जो वस्तुतः शालिग्राम यानी विष्णु की मूर्ति है। मंदिर वास्तु का तीसरा चरण गुप्त काल से प्रारंभ हुआ जिसमें मूर्तियों की स्थापना के लिए नागर शैली के मंदिर विकसित हुए। शिल्प शास्त्र के अनुसार मंदिर वास की प्रथम तीन श्रेणियां नागर, द्रविड़ और बेसर का प्रारंभ गुप्त काल से शुरू है।

नागर शब्द नगर से बना है। सर्वप्रथम नगर निर्माण होने के कारण अथवा संख्या में बाहुल्य होने के कारण इन्हें नागर की संज्ञा दे दी, शिल्प शास्त्र के अनुसार नागर मंदिरों के 8 प्रमुख अंग निर्धारित किए गए–

1. मूलाधार पीठिका– जिन पर संपूर्ण भवन खड़ा किया गया है।

2. मसूरक– नीव और दीवारों के बीच का भाग

3. जंघा– दीवारें विशेषता गर्भ गृह की दीवार

4.कपोत–कार्निस

5.शिखर– मंदिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का ऊपरी भाग

6. ग्रीवा–शिखर का ऊपरी भाग

7. वर्तुलाकार आमलक–शिखर के शीर्ष भाग पर कलश के नीचे का भाग ।

8. कलश–शिखर का शीर्ष भाग ।

नागर शैली के मंदिर वर्गाकार होते हैं। वर्गाकार गर्भगृह के ऊपर की बनावट ऊंची मीनार जैसी होती है। इनकी शिखर की रेखाएं तिरछी और चोटी की ओर झुकी होती है तथा शीर्ष आमलक से सुशोभित रहता है। हिमालय एवं विंध्य पर्वतमाला के मध्यस्थ क्षेत्र में नागर शैली के मंदिर विस्तृत है। प्रांतीय भेद के अनुरूप ही इस शैली के मंदिरों के विविध नाम है यथा उड़ीसा के नागर मंदिरों को कलिंग, गुजरात में लाट तथा हिमालय क्षेत्र में इनको ही पर्वती मंदिर कहा

गया है। पर्सी ब्राउन ने नागर शैली को ही उत्तर भारतीय आर्यशैली या आर्यावर्त शैली की संज्ञा दी है।

गुप्तकालीन मंदिरों की विशेषताएं

मंदिर निर्माण सामान्यतया एक ऊंचे चबूतरे पर होता था, जिन पर चढ़ने के लिए चारों तरफ से सीढ़ी होती थी। प्रारंभिक मंदिरों की छत चपटी होती थी, आगे चलकर शिखर बनने लगे प्रधान शिखरों के साथ गौड़ शिखर भी बनने लग गए थे। समान्यतया वर्गाकार गर्भगृह होता था। जो मंदिर का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता था। इसके चारों तरफ आच्छादित प्रदक्षिणा पथ बना होता था । गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर बने चौखट पर मकर वाहिनी गंगा तथा कूर्म वाहिनी यमुना की आकृतियां उत्कीर्ण थी, जो गुप्त काल की अनुपम विशेषता है। प्रारंभ में गर्भगृह के सामने एक स्तंभयुक्त मण्डप बनाया जाता था । बाद में इसे गर्भगृह के चारों तरफ बनाया जाने लगा। द्वार कलश अलंकृत होते थे, जिनमें पूर्ण कलश की आकृति उत्कीर्ण रहती थी। गुप्तकालीन अधिकांश मंदिर मध्य प्रदेश के पठारी क्षेत्र में अवस्थित है। सांची मंदिर संख्या 17 यह गुप्त काल का सबसे प्रारंभिक मंदिर है। इसमें चौकोर (वर्गाकार) सादा गर्भगृह तथा उसके सामने स्तंभों पर आधारित बरामदा या लघु मंडप मिलता है।

तिगवा का विष्णु मंदिर (जबलपुर, मध्यप्रदेश): यह मंदिर भी गुप्त काल का प्रारम्भिक मंदिर है। स्मिथ ने इसे समुद्रगुप्त के काल का बताया है। प्रवेश द्वार के पार्श्व पर गंगा–यमुना की आकृतियां उत्कीर्ण है। गर्भगृह के भीतर विष्णु की नरसिंह स्वरूप प्रतिमा स्थापित की गई, प्रतिहारी के रूप में वामन का अंकन मिलता है।

एरण का विष्णु मंदिर (सागर, मध्य प्रदेश): यू एन राय के अनुसार इस मंदिर का निर्माण समुद्रगुप्त ने आटविक राज्यों पर जीत के उपलक्ष्य में करवाया । एरणिक(एरण प्रदेश) को समुद्रगुप्त का भोग नगर कहा जाता है। परम भागवत चंद्रगुप्त द्वितीय ने मंदिरों तथा प्रतिमाओं के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। विष्णु का मंदिर, महाविष्णु की जो कल्पना गुप्तकालीन साहित्य में मिलती है,उसका मूर्त रूप एरण के उक्त मंदिर में मिलता है। यहां से प्राप्त एक लेख के अनुसार 485 ईसवी में बुध गुप्त के काल में इस मंदिर के सम्मुख एक गरुड़ध्वज स्तंभ(14. 35मीटर) की स्थापना की गई थी।

नचना कुठार का पार्वती मंदिर (अजयगढ़,मध्य प्रदेश): इसकी दीवार पर मिथुन चित्र उत्कीर्ण है। कनिंघम ने यहां पर चौमुखी नाथ शिव मंदिर की पहचान की है। पार्वती मंदिर अत्यंत सुरक्षित अवस्था में है। इस मंदिर की विशेषता यह

है कि यह एक ऊंची कुर्सी (मेधी) पर बनाया गया है तथा इसके गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ को आच्छादित किया गया है। यह मंदिर बौद्ध चैत्य शालाओं की विशेषता लिए है। द्वार पर गंगा–यमुना कि मूर्तियों का अंकन है। मंदिर की दीवारों पर राम कथा रामायण का सर्वप्रथम स्थापत्य में उत्कीर्णन तथा हिरण के एक परिवार का रिलीफ स्थापत्य मिलता है। इस मंदिर में शिव पार्वती संगीत वाद्य के साथ उत्कीर्ण है।

भूमरा का शिव मंदिर (सतना, मध्य प्रदेश)ः इसकी खोज आर डी बनर्जी ने किया था। इस मंदिर के गर्भ गृह में एक मुखी शिवलिंग स्थापित है। शिव रत्न जड़ित मुकुट पहने हैं तथा जटाओं के मध्य अर्धचंद्र ललाट पर त्रिनेत्र हैं। द्वार स्तंभ के दाहिने मकर वाहिनी गंगा तथा बायें कूर्म वाहिनी यमुना उत्कीर्ण है। मंदिर का ऊपरी चौखट भी उसी प्रकार अलंकृत है तथा प्रतिमा के लिए ताख बने हैं, जिसके बीच में शिव की अर्ध प्रतिमा स्थापित है। मंदिर के अनेक प्रस्तरों पर विभिन्न बाजों सहित गज,कमल एवं कीर्तिमुख उत्कीर्ण है।

देवगढ़ का दशावतार मंदिरः विश्व का प्रसिद्ध देवगढ़ का दशावतार मंदिर उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले नेम बेतवा नदी के तट पर स्थित है।पाषाण खंडों को तरस कर निर्मित किए गए, इस मंदिर पर गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था। वर्तमान में टूटी–फूटी अवस्था में होते हुए भी यह मंदिर अपने प्रकार का सबसे अलंकृत तथा कलात्मक रूप से संयोजित है। डॉ कुमार स्वामी इस मंदिर का निर्माण काल गुप्त काल के अंतिम वर्षों में माना है। गुप्तकालीन अन्य मंदिरों की छत जहां सपाट है वही इस मंदिर का आकार पिरामिड के आकार का है, जो एक नवीन वास्तुकला का प्रतिनिधित्व करता है। इस मंदिर की गर्भगृह का प्रवेश द्वार अत्यन्त आकर्षक है। गर्भगृह में विष्णु की सजीव मूर्ति उकेरी गई है। प्रवेश द्वार के दोनों पार्श्व में गंगा–यमुना का अंकन है तथा द्वारपालों का भी स्तंभों पर उर्त्कीणन उल्लेखनीय है। देवगढ़ के इस गुप्तकालीन मंदिर के स्थापत्य एवं अलंकरण की प्रशंसा प्रसिद्ध विद्वान डॉ कुमार स्वामी ने की है यथार्थ रूप में गुप्त काल का यह देवगढ़ का दशावतार मंदिर वास्तुकला एवं अलंकरण की दृष्टि से भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उत्तर भारत के नागर शैली के मंदिरों में शिखर का प्रादुर्भाव इसकी महत्वपूर्ण वास्तुगत विशेषता है। इसलिए पर्सी ब्राउन ने भी अंगीकार किया है कि बहुत कम गुप्तकालीन स्मारक, शिल्प कौशल तथा सुरुचि में देवगढ़ मंदिर का सामना कर सकते हैं, इस मंदिर का प्रभाव बाद के मंदिरों में स्पष्ट देखा जा सकता है।

वास्तविक वास्तु योजना के हिसाब से होयसल मंदिर केशव मन्दिर और हलेबिड के मन्दिर सोमनाथपुर और अन्य दूसरों से भिन्न हैं। स्तम्भ वाले कक्ष सहित अंतर्गृह के स्थान पर इसमें बीचो–बीच स्थित स्तंभ वाले कक्ष के चारों तरफ बने अनेक मंदिर हैं, जो तारे की शक्ल में बने हैं। कई मंदिरों में दोहरी संरचना

पायी जाती है। इसके प्रमुख अंग दो हैं और नियोजन में प्रायः तीन चार और यहाँ तक कि पांच भी हैं। हर गर्भगृह के ऊपर बने शिखर को जैसे–जैसे ऊपर बढ़ाया गया है, उसमें आड़ी रेखाओं और सज्जा से नयापन लाया गया हैं, जो शिखर को कई स्तरों में बांटते हैं और यह धीरे–धीरे कम घेरे वाला होता जाता है। वस्तुतः होयसल मंदिर की एक विशिष्टता संपूर्ण भवन की सापेक्ष लघुता है।

2.4 मूर्तिकला का उद्भव एवं विकास

भारत की एक दीर्घकालीक मूर्तिकला–परम्परा है, जिसकी खोज नवपाषाणिक संस्कृतियों में की जा सकती है, हालांकि पुरातात्तिवक दृष्टि से विकास के निरन्तर लम्बे प्रक्षेप पथ को तीसरी शताब्दी ईसापूर्व से आगे खोजा जा सकता है। भारतीय उपमहाद्वीप में कला को ईश्वर की रचना माना जाता है और इसलिए कोई भी कला एक–दूसरे से श्रेष्ठ नहीं है। जिस प्रकार शिव से नृत्य एवं संगीत का उद्भव हुआ, विष्णु से चित्रकला एवं मूर्तिकला उत्पन्न हुई और रूद्र विश्वकर्मा से वास्तुकला उत्पन्न हुई। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिकांश प्राचीन एवं मध्यकालीन कला सामाजिक–धार्मिक संदर्भ के अन्तर्गत उत्पन्न हुई।

देवताओं की विशेषताओं का आरंभिक उल्लेख वैदिक काल से मिलता है जहाँ हमें श्री सुक्त में श्री जैसे विभिन्न देवताओं के शब्द–चित्र मिले हैं, यद्यपि पुरातात्तिवक दृष्टि से यह सिद्ध नहीं हुआ है। हालांकि छठी शताब्दी ईसा पूर्व के व्याकरणाचार्य पाणिनि ने उनके अस्तित्त्व और किसी प्रकृति अथवा मूर्ति के इर्द–गिर्द अनुष्ठान का उल्लेख किया है। उसी प्रकार शौनक ऋषि ने अपने सार–संग्रह वृहत देवता में दस आवश्यक तत्त्वों का उल्लेख करते है, जो हमें किसी देवता को पहचानने, यथा रूप, सम्बन्ध, प्रतीक, वाहन, गुण, संकेत आदि में मदद करता है।

भारतीय मूर्तिकला

भारतीय मूर्तिकला भारत के उपमहाद्वीपों की सभ्यताओं की मूर्तिकला परंपराएँ, प्रकार और शैलियाँ का संगम है। मूर्तिकला भारतीय उपमहाद्वीप में हमेशा से कलात्मक अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम रही है। भारतीय भवन मुख्य रूप से मूर्तिकला से अलंकृत हैं और प्रायः एक–दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते।

भारतीय मुर्तिकला की परंपरा सिंधु घाटी सभ्यता से फैली। उस काल में मिट्टी की छोटी मूर्तियाँ बनाई गई। मौर्य काल (तीसरी शताब्दी ई.पू.) के महान् गोलाकार पाषाण स्तंभों और उत्कीर्णित सिंहों ने दूसरी और पहली शताब्दी ई.पू. में स्थापित हिंदू और बौद्ध प्रसंगों वाली परिपक्व भारतीय आकृति मूलक मूर्तिकला का मार्ग प्रशस्त किया। शैलियों और परंपराओं की व्यापक श्रेणी भारत के विभिन्न भागों में शताब्दियों तक फली–फूली, लेकिन नौवीं–दसवीं शताब्दी तक आते–आते भारतीय मूर्तिकला एक ऐसे रूप में पहुँच गई, जो अब तक मामूली परिवर्तनों के साथ बनी हुई है। 10वीं शताब्दी से यह मूर्तिकला मुख्यतः स्थापत्यीय अलंकरण

के एक भाग के रूप में तुलनात्मक रूप से छोटी व औसत श्रेणी की असंख्य आकृतियों को इस प्रयोजन के लिए बनाकर प्रयोग की जाने लगी थी।

भारतीय मूर्तिकला की विषय–वस्तु हमेशा लगभग काल्पनिक मानव रूप होते थे, जो लोगों को हिंदू, बौद्ध या जैन धर्म के सत्यों की शिक्षा देने के काम आते थे। अनावृत्त मूर्ति का प्रयोग शरीर को आत्मा के प्रतीक और देवताओं के कल्पित स्वरूपों को दर्शाने के लिए किया जाता था। मूर्तियों में हिंदू देवताओं के बहुत से सिर व भुजाएँ इन देवताओं के विविध रूपों और शक्तियों को दर्शाने के लिए आवश्यक माने जाते थे।

प्रमुख शैलियाँ

भारतीय मूर्ति कला की प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार हैं–

1. सिंधु घाटी सभ्यता की मूर्ति कला
2. मौर्य मूर्तिकला
3. मौर्योत्तर मूर्तिकला
4. गान्धार कला की मूर्तियाँ
5. मथुरा कला की मूर्तियाँ
6. अमरावती मूर्तिकला
7. गुप्तकाल मूर्तिकला
8. वाकाटक मूर्तिकला
9. मध्यकाल की मूर्तिकला
10. चोल मूर्तिकला
11. आधुनिक मूर्तिकला

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय वास्तुकला के बारे में एक अद्भुत तथ्य यह है कि मूर्तिकला उसका एक अविभाज्य अंग थी। इस संदर्भ में सिधु घाटी की संस्कृति ही शायद एकमात्र अपवाद है, क्योंकि उसकी इमारतें उपयोगितावादी हैं, पर उनमें कलात्मक कौशल नहीं है। हो सकता है, समय के साथ उनकी अलंकारमय सजावट नष्ट हो गई हो। हालांकि मूर्तिकला विकसित थी।

प्राचीन भारत में प्रतिमा–निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। हड़प्पा सभ्यता के अवशेषों में मिटटी की बनी हुई अनेक नारी–प्रतिमाऍं, योगी की प्रतिमाऍं एवं पशुपति की प्रतिमा प्राप्त हुई हैं, जो सामान्य मूर्तियों से भिन्न हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त प्रस्तर पर निर्मित एक योगी कीप्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसके मुॅह पर दाढ़ी, उत्तरीय ओढे हुए हैं, दृष्टि नासाग्र है। इस मूर्ति के उत्तरीय पर जिस प्रकार की तिफुलियॉ आकृति खीची गईं है वैसी आकृति का प्रचार मिस्र, कीट, मेसोपोटामिया आदि में भी था, जहॉ उसका संबंध देव प्रतिमाओं से था। अतः यह प्रतिमा भी

किसी महापुरूष या देवता की ही मानी जा सकती है। हडप्पा सभ्यता से कायोत्सर्ग मुद्रा में प्राप्त नग्न धड़ एवं मुहरों पर अंकित आकृतियों को टी. एन. रामचन्द्रन व आर. पी. चन्दा आदि विद्वानों ने जैन प्रतिमाएॅ माना है। इसी तरह पशुपति की प्रतिमा को विद्वान शिव प्रतिमा का पूर्व रूप मानते हैं।

सिंधु घाटी या 'हड़प्पा' सभ्यता में मूर्तियों के बनने की परम्परा स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। इस सभ्यता की सर्वाधिक प्रसिद्ध लघु कांस्य मूर्ति है, जो नृत्यरत अवस्था में है। चूना पत्थर और लाल पत्थर के दो खंडित धड़ भी हैं, जो हड़प्पा से मिले है। इन सभी मूर्तिशिल्पों में से सबसे सुरक्षित हैं। एक व्यक्ति का 7 इंच ऊंचा सिर और कंधा, जिसके चेहरे पर छोटी सी दाढ़ी और बारीक कटी हुई मूंछे हैं तथा उसका शरीर एक शॉल में लिपटा है जो बाएं कंधे के ऊपर और दाई बाँह के नीचे से होकर गयी है, जो लगता है कि किसी पुजारी की छवि है। इस मूर्ति और मोहनजोदड़ो से मिले अन्य दाढ़ी वाले सिरों तथा सुमेरिया के मूर्तिसंग्रह में कुछ समानता है। टेराकोटा की विविध वस्तुएं भी है। जिनमें सभी प्रकार की छोटी–छोटी आकृतियाँ और अलग–अलग आकारों और डिजाइनों के सेरामिक पात्र शामिल हैं।

मिट्टी से बनी जानवरों की आकृतियाँ खासतौर पर बहुत लुभावनी लगती हैं, जिन्हें खिलौनों के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता होगा, क्योंकि वह खेलने के अंदाज में बनी हैं और छोटी–छोटी भी हैं। अनेक मर्तबानों और कटोरों पर ऐसे डिजाइन चित्रित हैं, जिन्हें आमतौर पर प्रकृति से लिया गया है और उनका संबंध उर्वरता से होता है।

सिंधु क्षेत्र में पायी गयी अन्य कलात्मक अवशेषों में सील (मुहर) की अनेक चौकोर छोटी–छोटी आकृतियाँ भी थीं, जिन्हें कई प्रकार के डिजाइनों में अभिचित्रित किया गया था। ये सील उन लोगों की हो सकती थीं जिन्होंने इनका उपयोग सम्पत्ति चिन्हित करने अथवा अन्य अनुबंधों को मजबूती प्रदान करने के लिए किया होगा। कुछ शीलों में बैल की अनेक आकृतियाँ बनी हुई मिलीं है, जबकि कुछ अन्य सीलों में अन्य जानवरों की आकृतियाँ थीं। विशेषज्ञों के मतानुसार सीलों में अभिचित्रित आकृतियाँ विश्व के कुछ उन महान् उद्धहरणों में हैं, जो तत्कालीन कलाकारों की महान् क्षमता को दर्शाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय भी कलात्मक आकार देने में कलाकार मर्मज्ञ थे।

सैंधव सभ्यता के पश्चात प्राचीन भारत की वैदिक सभ्यता में प्रतिमा के पुरातात्त्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं, लेकिन साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित होता है कि वैदिक काल में भी प्रतिमा पूजा की जाती थी। कुछ विद्वान मानते है कि वैदिककालीन उपासना काल्पनिक, भावात्मक एवं प्रतीकात्मक थी। यज्ञ का प्राधान्य था। अतः सभी अपने घरों में यज्ञ कर आहुति देते थे। अतः उनकी उपासना का आधार प्रतिमा न होकर प्रार्थना एवं आहुति थी। लेकिन विद्वानों का एक बड़ा वर्ग मानता है कि ऋग्वैदिक काल में प्रतिमा पूजा की जाती थी। ऋग्वेद में एक स्थल पर रूद्र की रंगी हुई प्रतिमा का उल्लेख हुआ है। एक स्थान पर कहा गया है कि पूजा के समय व्यक्ति इन्द्र और अग्नि को सजाते थे।

ऋग्वेद में इन्द्र की प्रतिमा के लिए कहा गया है कि कौन मेरे इन्द्र को दस गायों में खरीदेगा। कोई व्यक्ति पूजा करते समय किसी देव की प्रतिमा के समक्ष कहता है कि तुम अपने वास्तविक रूप से इसमें प्रवेश करो। इन वाक्यों से स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल में प्रतिमा पूजा की जाती थी। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में देवताओं के अलौकिक और शारीरिक रूपों का वर्णन किया गया है। वेदों में बहुत से देवताओं का वर्णन है। उनके मानवीय स्वरूप का वर्णन है, उनके अस्त्रों, शस्त्रों, हॉथों तथा अन्य काल्पनिक रूपों का वर्णन वैदिक साहित्य में मिलता है। इस समय के साहित्य में प्रायः वे सभी रूप एवं सभी देवताओं के संबंध में सूचनाएँ मिलती हैं जो परवर्ती काल में मूर्ति या प्रतिमा कला के विषय बने। साहित्य में उनके शाब्दिक रूपों का वर्णन है जिन्हे बाद में विविध प्रतीकों की सहायता से सांसारिक वस्तुओं के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप दिया गया है। इनमें यक्ष, नाग, गन्धर्व, सूर्य, आदि, अनेक देवी देवताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में श्री लक्ष्मी नामक देवी का उल्लेख किया गया है जो सौदर्य और समृद्धि की देवी थी। पुरूष सूक्त में भी इसका उल्लेख एक गृहस्थ की देवी के रूप किया गया है जिसे हाथियों द्वारा अभिषिक्त जल से उत्पन्न बतलाया गया है। हम जानते हैं कि परवर्ती काल में इन्हीं वर्णनों को ध्यान में रखकर श्री लक्ष्मी की प्रतिमाएँ बनाई गईं। इसी तरह अथर्ववेद में यक्षों का उल्लेख है और यह यक्ष पूजा तत्कालीन लोगों के धर्म का एक अंग था जिसे मौर्य–काल तथा उसके पश्चात मूर्ति–कला में स्थान दिया गया। इसी प्रकार चण्डिका और अदिति नामक देवियों के उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलते है, जो बाद के कालों में प्रतिमा के रूप में दिखाई गई है।

लौरियानन्दनगढ़ से प्राप्त स्वर्ण–पत्र पर बनी नारी मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह मूर्ति उस भीटे से प्राप्त हुई है, जिसे वैदिक भीटा कहा जाता है। अतएव प्रायः सभी विद्वानों की यह धारणा है कि यह प्रतिमा लगभग 7–8 वीं शताब्दी ई. पूर्व की मूर्ति–कला का सुन्दर नमूना है। इसे ऋग्वेद में वर्णित पृथ्वी देवी की मूर्ति माना जा सकता है। यह मूर्ति एक शव के साथ स्थापित की गई थी और इसके पीछे सम्भवतः सही विचार था कि वह शव पृथ्वी देवी को समर्पित कर दिया गया है। कुछ विद्वानों इसे लक्ष्मी की प्रतिमा स्वीकार की है।

ऐसी ही मृण्मूर्तियॉ मथुरा से भी प्राप्त हुई हैं जिन्हे मौर्य–युग से पहले की कृतियॉ माना जाता है। इनमें प्रायः वही विशेषताएँ मिलती हैं जो लौरियानन्दनगढ़ की नारी–प्रतिमा में है। तक्षशिला के भीर नामक टीले से भी मूर्ति–कला के उदाहरण मिले हैं, जिनमें मृण्मूतियॉ भी हैं।

पिपरहवा नामक स्थान से भी एक नारी–प्रतिमा प्राप्त हुई, जिसे मौर्य–काल से पहले की मूर्ति माना जाता है। इसका निर्माण भी लौरियानन्दनगढ से प्राप्त नारी–प्रतिमा में मिली विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है।

प्रथम शताब्दी के खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में जिन प्रतिमा का उल्लेख है, जिसे खारवेल मगध से वापिस लाया जिसको तीन सौ वर्ष पूर्व नंद राजा ले गया था। इससे स्पष्ट होता है कि ईसा पूर्व चौथी शती में जिन प्रतिमाओं

की प्रतिष्ठा की जाती थी। पुरातात्त्विक दृष्टि से प्राचीन जिन प्रतिमा पटना (लोहानीपुर) से प्राप्त हुई है। प्रतिमा का दिगम्बरत्व एवं कायोत्सर्ग मुद्रा स्पष्टतः उसे जिन प्रतिमा सिद्ध करते हैं, विद्वानों ने इसे मौर्यकालीन प्रतिमा माना है। उदयगिरि एवं खण्डगिरि की गुफाओं में ईसा पूर्व द्वितीय एवं प्रथम शती के जैन धर्म से संबंधित अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त बिहार प्रान्त के भोजपुर जनपद के अन्तर्गत चौसा से भी शुँगकालीन प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं हैं, जो पटना के संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

मौर्यकाल एवं उसके बाद शुंगकाल अनेक यक्ष प्रतिमाओं का निर्माण किया गया, जो भारत के विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत हैं। वेसनगर एवं घोसुण्डी अभिलेख ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में वासुदेव की प्रतिमा की पूजा का उल्लेख करते हैं, जिससे इस धर्म की जानकारी पुष्टि की जा सकती है। भागवत धर्म के प्रभाव स्वरूप बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय अस्तित्व में आया एवं बौद्ध धर्म में प्रतिमा पूजा की जाने लगी। महाराष्ट्र स्थित पर्वतमाला की गुहाओं में निर्मित चैत्यों में बौद्ध की प्रतिमा स्थापित की गईं एवं साथ ही मथुरा व गंधार में बौद्ध व बोधिसत्त्व की प्रतिमाएँ निर्मित व प्रतिष्ठित की गईं। गंधार शैली में प्राप्त प्रतिमाएँ उन पर यूनानी प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। गुप्तयुग तक प्रतिमाएँ राजाश्रय में निर्मित एवं प्रतिष्ठित की जाती रहीं। पूर्व मध्यकाल में देश में सामंतवाद एवं क्षेत्रीयतावाद चरम पर पहुँच गया। फलस्वरूप कला की क्षेत्रीय शैलियाँ भी प्रादुर्भूत हुई। अलग–अलग शासकों ने अपने–अपने क्षेत्र में मंदिरों एवं प्रतिमाओं का निर्माण एवं प्रतिष्ठा करवायी।

अशोक ने अपने शासन काल में स्तंभों का निर्माण बड़े पैमाने पर कराया था। इन स्तंभों को उसने बौद्ध धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रचार प्रसार के साथ अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों एवं घटनाक्रमों के प्रतीक के रूप में लगवाया था। अशोक के शासनकाल के दौरान लगाये गये श्वेत–भूरे पत्थर उसके पूरे राज्य में देखे जा सकते थे। अशोक द्वारा लगाये गये उन स्तंभों में अनेक स्तंभों में अभिलेख भी लिखे हुए थे। स्तंभों के माध्यम से उसने बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार किया। अशोक के शासन काल में लगे स्तंभ तकरीबन 40 फीट ऊंचे होते थे। उन स्तंभो में कलाकृतियाँ भी अभिचित्रित थीं। उनमें पुष्पदल, घंटी–जैसी आकृतियों के साथ–साथ जानवर भी चित्रित होते थे। स्तंभ के चारों ओर जानवरों की आकृ तियाँ दिखायी देती थीं। जिनमें सिंह बैल अथवा हाथी मुख्यतः होते थे।

रामपुरवा से मिले वृषभ स्तंभ में वृषभ को कुछ इस तरह से दिखाया गया है– जिस तरह के चित्र सिंधु घाटी की खुदाई से प्राप्त पुरानी सीलों पर चित्रित थे। माना जाता है कि वे प्राचीन परंपरा की वे एक कड़ी के रूप में हैं। सारनाथ, जहाँ बुद्ध ने अपना पहला व्याख्यान दिया, वहाँ सिंह स्तंभ लगे थे। उस स्तंभ में बैल, घोड़ा, सिंह और हाथी क्रमवार अंकित थे, उनके बीच में चक्र था। जो वाहन का प्रतीक था। ऐसा लगता है कि वह स्तंभ धर्म का वाहन था। यह स्तंभ मूल रूप से विशाल पत्थर का है जिसमें पाहिये हैं और उस स्तंभ के ऊपर सिंहों की आकृतियाँ अंकित है। उस स्तंभ में अंकित आकृतियाँ प्राचीन काल का अद्भुत नमूना हैं और उसमें चित्रित्र कलाकृतियाँ इस तरह ढ़ाली गयीं कि जिनकी प्रसिद्धि

आज भी विद्यमान है। इसी के साथ वे भारत की प्राचीन महान् कलात्मक उपलब्धियों की भी परिचायक हैं।

अशोक के शासन काल के पहले भी भारत में स्तूप जैसी चीजें ज्ञात थीं। मूलरूप से वैदिक आर्यों ने ईटों और साधारण मिट्टी से उनका निर्माण किया था। मौर्यकाल के पहले इस तरह के स्तूपों के उदाहरण नहीं मिलते हैं। अशोक के शासनकाल में बुद्ध के शरीर को ध्यान में रखकर स्मृति चिन्हों का निर्माण किया गया और यही स्तूप पूजा के साधन बने। बौद्ध कला और धर्म में स्तूप को भगवान बुद्ध के स्मृति चिन्ह के रूप में स्वीकार किया गया। स्तूप अंदर से कच्ची ईटों से तथा बाहरी खोल पक्की ईटों से बनाये गये और फिर उनमें हल्का प्लास्टर चढ़ाया गया। स्तूप को ऊपर से लकड़ी अथवा पत्थर की छतरी से सुसज्जित किया गया और प्रदक्षिणा के लिए चारों ओर लकड़ी का मार्ग भी बनाया गया।

मौर्यकाल की मानवीय आकृतियों का प्रदर्शन करने वाली अनेक पत्थर की कलाकृतियाँ भी पायी गयी हैं। उनमें एक है– महिला की संरक्षित प्रतिमूर्ति जो पटना संग्रहालय में रखी हुई है। यह मूर्ति दीदारगंज के निवासियों को मिली थी। उसमें प्रयोग की गयी पालिश और रख–रखाव की तकनीक निसंदेह रूप से मौर्य काल की है। इस मूर्ति के शरीर के निचले हिस्से में वस्त्र हैं। इसके अतिरिक्त उस महिला ने कानों, बाहों और गले में बड़ी मात्रा में आभूषण पहने हुए हैं। इस प्रतिमूर्ति को भारतीय कला जगत् के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा जाता है।

मौर्यों के बाद उत्तर भारत में (184 ईसा पूर्व) मुख्यतः सत्ता में शुंग रहे। सातवाहनों के पास दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र था। इन दोनों के शासनकाल में कला रचनात्मक गतिविधि के चरण में पहुंची, जिसने बौद्ध धर्म के सहारे और उसको मुख्य स्त्रोत बनाते हुए घरेलू कलात्मक आंदोलन का एक साथ प्रतिनिधित्व किया। इस युग को प्रारंभिक कला के रूप में कला के इतिहास का दौर कहा जाता है। शुंग–सातवाहन युग की कला का प्रभाव उत्तर भारत के बोधगया, सांची और भरहुत में बौद्ध आश्रमों के प्रवेश द्वार और रेलिंग में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है, जिन्हें स्तूप कहा जाता है तो पश्चिमी भारत में पीतलखोरा, कोण्डाने और भाजा में पत्थर निर्मित गुफा–आश्रमों के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित हैं। भारतीय कला क्षेत्र में कला का जो प्रारंभिक दौर है वह कला के विकास का रचनात्मक युग है, जिसकी नींव इस तरह से रखी गयी कि वह भारतीय वास्तु और शिल्प के उच्च बौद्धिक और शहरी स्तर के विकास में सहयोग कर सके। फिर भी कला के विकास का यह प्रारंभिक दौर सौदर्यपूर्ण आंदोलन का युग रहा जो कुषाण के शासन काल में कला के विकास के महानतम युग में प्रविष्ट हुआ।

कुषाण साम्राज्य में निर्मित मूर्तियाँ मूर्तिकला का अद्भुत उदहारण है। साम्राज्यवाद का कुषाण युग, इतिहास का एक महानतम आंदोलन रहा है, यह उत्तर–पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान, (वर्तमान अफगानिस्तान) तक फैला था। ईसवीं की पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच कुषाण एक राजनीतिक सत्ता के रूप में विकसित हुए और उन्होंने इस दौरान अपने राज्य में कला का

बहुमुखी विकास किया। भारतीय कला जगत् का परिपक्व युग यहीं से प्रारंभ होता है।मूर्तिकला की दो शैली का विकास हुआ जिसमें गांधार और मथुरा मूर्तिकला शैली है।

गांधार मूर्तिकला की सबसे उत्कृष्ट मूर्ति वह है– जिसमें बुद्ध को एक योगी के रूप में बैठे हुए दिखाया गया था। एक संन्यासी के वस्त्र पहने उनका मस्तक इस तरह से दिखायी दे रहा है। जैसे उसमें आध्यात्मिक शक्ति बिखर रही हो, बड़ी–बड़ी आँखे, ललाट पर तीसरा नेत्र और सिर पर उभार। ये तीनों संकेत यह दिखाते हैं कि वह सब सुन रहे हैं, सब देख रहे हैं और सब कुछ समझ रहे हैं। यद्यपि बुद्ध के ये तीनों रूप विदेशी कला द्वारा भी प्रभावित हैं। बहरहाल शुद्ध रूप से भारतीय प्रतीत होती यह मूर्ति यह दर्शाती है कि कला घरेलू और विदेशी तत्वों का मिलाजुला रूप है। गांधार क्षेत्र की कला के जो महत्त्वपूर्ण तत्व हैं और उनकी जो शक्ति है– वह उत्तर–पश्चिमी भारत की बौद्ध कला में देखी जा सकती है और यह प्राचीन देवताओं का प्रतिनिधित्व एवं उनके रूप दिखाती हैं। इसी तरह का प्रभाव खुदाई से निकले पत्थरों में भी देखा जा सकता है, यह पत्थर चाहे अपनी कलात्मक शैली या अपने दैवीय रूप को दिखाते हों लेकिन उनका रोमन वास्तुकला से साम्राज्यवादी समय से ही गहरा संबंध रहा है, मूर्ति की स्थिति, शरीर का आकार और उसका वास्तु ढांचा स्पष्टतः रोमन मॉडल पर ही आधारित है।

मथुरा कला शैली भारतीय मूर्तिकला का प्रतिनिधित्व करती है। ईसा काल की प्रथम तीन शताब्दियाँ मथुरा शैली मूर्तिकला का स्वर्णिक काल हैं। महायान बौद्ध धर्म के नये आदर्शों ने तत्कालीन मूर्ति शिल्पकारों को प्रेरित किया था। भारतीय पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, बुद्ध मूर्तियों का निर्माण इस शैली के कलाकारों का महान् योगदान है। इन मूर्तियों में प्रयुक्त पत्थर सफेद–लाल था, जो शताब्दियों तक अपनी उत्कृष्ट कलात्मक गुणवत्ता के रूप में विद्यमान रहा। जैन शैली द्वारा प्रभावित एक स्तूप की रेलिंग में चित्रित एक आकर्षक महिला की आकृतियां, जो अत्यधिक आभूषणों से युक्त है, प्राचीन भारतीय कला की यादगार और उल्लेखनीय कलाकृति सन्यास और धर्मपरायणता के सन्दर्भ में मथुरा की इन मूर्तियों में कहीं भी अश्लीलता और कामोत्तेंजना की भावभंगिमा नहीं दिखायी देती है।

भारतीय कला के इतिहास, मथुरा की कुषाण कला में इसलिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसने प्रतीकवाद और मूर्ति शिल्पवाद को अपनाया और बाद में उसे स्वीकार कर लिया। उदाहरण के लिए, पहली बार मथुरा में देवी–देवताओं की मूर्तियों की रचना की गयी। बुद्ध मूर्तियों का प्रभाव चारों ओर फैला और चीन के कला केंन्द्रों तक पहुंचा। इस शैली की कुछ उल्लेखनीय कलाकृतियों में विम कडफीसेस और कनिष्क की मूर्तियाँ, महिलाओं के चित्र सहित अनेक रेलिंग स्तंभ, बैठे हुए कुबेर एवं ध्यानरत बौद्ध प्रतिमाएं प्रमुख हैं।

गुप्तकालीन मूर्तिकला

भारतीय कला के इतिहास में गुप्त काल को इसलिए महान् युग कहा जाता है– क्योंकि कलाकृतियों की संपूर्णता और परिपक्वता जैसी चीजें इससे पहले कभी नहीं रहीं। इस युग की कलाकृतियों मूर्तिशिल्प, शैली एवं संपूर्णता, सुंदरता एवं संतुलन जैसे अन्य कला तत्वों से सुसज्जित हुई।

गुप्त शासक ब्राह्मण धर्म को मानते थे और उनकी भक्ति विशेष रूप से विष्णु में थी, किंतु उन्होंने बौद्ध धर्म और जैन धर्म के लिए भी उदारता दिखायी। पौराणिक हिंदू धर्म में तीन देवता हैं विष्णु, शिव एवं शक्ति। शिव के प्रति उनमें विशेष अनुराग था यानी शिव अग्रणी देवता थे। यद्यपि दक्षिण और पूर्व में शैववाद का विकास हुआ तथा दक्षिण–पश्चिम मालाबार के कुछ भागों में एवं पूर्वी भारत में शक्तिवाद का विकास हुआ कृष्ण पर आधारित वैष्णववाद था जो मुख्यतः भारत के उत्तरी एवं मध्यम भाग में केंद्रित रहा। इन सभी धार्मिक देवताओं की पूजा सब जगह होती रही और उनके मन्दिर एवं उनकी मूर्तियाँ सब जगह प्रतिष्ठापित हुई। गुप्त कला अध्यात्मिक गुणों से युक्त है और उसकी दृष्टि भी जीवन की गहन सच्चाई को दर्शाती है। यद्यपि गुप्तकाल का प्रारंभिक दौर हिंदू कला पर जोर देता है, जबकि बाद का युग बौद्ध कला का शिखर युग है, जो सभी प्राचीन कलाओं और उनकी मनोभावना व गुणवत्ता का द्योतक है।

गुप्त मूर्ति कला की सफलता प्रारंभिक मध्यकाल की प्रतीकात्मक छवि एवं कुषाण युग की कलापूर्ण छवि के मध्य निर्मित एक संतुलन पर आधारित हैं। हिंदू, बौद्ध एवं जैन कलाकृतियाँ मध्य भारत सहित देश के अनेक भागों में पायीं। ये मूर्तिकला में अद्वितीय हैं। बेसनगर से गंगा की मूर्ति, ग्वालियर से उड़ती हुई अप्सराओं की मूर्ति, सोंडानी से मिली हवा में लहराते गंधर्व युगल की मूर्ति, खोह से प्राप्त एकमुख लिंग और भुमरा से अन्य कई प्रकार की मिली मूर्तियाँ उसी सुंदरता, परिकल्पना और संतुलन को प्रदर्शित करती हैं जैसा कि सारनाथ में देखा जाता है।

भगवान हरिहर की मानवाकार प्रतिमा मध्य प्रदेश में मिली है। अनुमान है यह पांचवी ईस्वी के पूर्वाद्ध की रचना है। विष्णु का आठवां अवतार कहे गए कृष्ण की प्रतिमाएं भी 5 वीं सदी ई. के आरंभिक काल से मिल रही हैं। वाराणसी से प्राप्त एक मूर्ति में उन्हें कृष्ण गोवर्धनधारी के रूप में अंकित किया गया है। जिसमें उन्हें बाएं हाथ के सहारे गोवर्धन पर्वत उठाए दिखाया गया है। जिसके नीचे वृंदावनवासी जल प्रलय से बचने के लिए एकत्रित हुए थे। वह भयावह जलवृष्टि इंद्र ने भेजी थी, जो वृंदावन वासियों की अपने प्रति उपेक्षा से क्रोधित हो उठे थे।

बुद्ध की प्रतिमाएं

गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प में बुद्ध धर्म का शांत एवं आदर्श स्वरूप अत्यंत भव्यता से बुद्ध की मूर्तियों में अभिव्यक्त हुआ है। उनके चहरे की भाव मुद्रा और मुस्कान उसकी परम समरसता की अनुभूति को दर्शाती है, जिसे उस महाज्ञानी ने प्राप्त किया था। इन मूर्तियों के शिल्प की हर रेखा में सौंदर्य और भाव का

परम्परागत स्वरूप दर्शाया गया है। कायिक स्थिति, हस्त मुद्राएं और अन्य सभी लक्षण प्रवृति–प्रतीकों के रूप में उपस्थित हैं। मस्तक अंडाकार, भौंहे कमान जैसी, पलकें कमल की पंखुड़ियां, अधर आम्रफल की तरह, कंधों की गोलाई हस्तिशुण्ड जैसी, कटि सिंह की और उंगलियां फूलों जैसी है। सांची के विशाल स्तूप के प्रवेश द्वारों पर पांचवी सदी में रखी गयी बुद्ध की चार प्रतिमाएं उस कोमलता, लालित्य और प्रशांति को दर्शाती हैं, जो समृद्ध और परिपक्व गुप्तकालीन शिल्प विधा की विशेषताएं हैं। बुद्ध की काया की रूपरेखाओं में दर्शित लालित्यपूर्ण अनुकूलन मूर्तिशिल्प के उस विकास क्रम को व्यक्त करता है, जिसे प्रारंभिक गुप्तकालीन कोणीय स्वरूप का अगला चरण कहा जा सकता है। बुद्ध की प्रतिमाएं मथुरा में भी मिली हैं, जो बौद्ध धर्म का सुसम्पन्न केन्द्र रहा था। इनमें एक सबसे प्राचीन प्रतिमा 5वीं सदी ई. की है, जो पूर्ववर्ती प्रतिमाओं के भारी आयतन अपनाने के बावजूद कुषाणकालीन आदिरूपों से दृष्टियों से भिन्न है। शाक्यमुनि की उत्कीर्ण उत्तिष्ठ मुद्रा में प्रतिमा पूर्णतः भिक्षु के परिधान में हैं, जिसकी तहतें समानांतर छल्लों में दर्शित हैं। बुद्ध के सिर के पीछे प्रभामंडल भी बनाया गया है।

इस काल में बौद्ध मूर्तिशिल्प का एक अन्य सक्रिय केन्द्र सारनाथ था, जहाँ बुद्ध की खड़ी और बैठी प्रतिमाएं बनाई गई। सारनाथ के खंडहरों में मिली बुद्ध की अपेक्षाकृत अधिक उभार वाली मूर्ति को गुप्तकालीन मूर्तिकला का सर्वसुंदर और भव्य प्रतिमान कहा जा सकता है। हल्के रंग के बलुई पत्थर से बनी इस प्रतिमा में बुद्ध को बैठकर अपना प्रथम उपदेश देते हुए दर्शाया गया है। प्रतिमा की पीठिका के नीचे घुटनों के बल झुके हुए दो भिक्षुक को न्यायचक्र की पूजा करते दिखाया गया है। इस न्याय चक्र को बुद्धि का प्रतीक मानते हैं। सारनाथ की इस बुद्ध प्रतिमा में उत्कृष्टता से चित्रित प्रभामंडल इसकी विशेषता है।

यद्यपि भित्तिचित्र अजंता की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कलाकृतियां हैं, पर गुहा मन्दिर का स्थापत्य शिल्प और प्रवेश द्वारों पर नक्काशी भी असाधरण है। इन मंदिर में जो शैलियां मूलरूप से चिनाई और काष्ठ कला रूपों में विकसित हुई, उन्हें समकालिन चट्टानों से तराशा गया था। ये कृतियाँ असंख्य और विविध शैली की हैं और इन्हें बिना किसी एकीकृत नियोजन के प्रवेश द्वार के अग्रभागों पर अंकित किया गया है।

पाल कालीन मूर्तिकला शैली में बनी मूर्तियों को और परिष्कृत किया जाने लगा। बिहार और बंगाल के पाल और सेन शासकों के समय में बौद्ध और हिंदू दोनों ही प्रकार की सुंदर मूर्तियाँ बनाई गई है। इस मूर्तियों के लिए काले बैसाल्ट पत्थरों का प्रयोग किया गया है। मूर्तियां अतिसज्जित और अच्छी पॉलिश की हुई हैं– मानो वे पत्थर की न होकर धातु की बनी हों।

होयसल शैली (1050–1300ई) का विकास कर्नाटक के दक्षिण क्षेत्र में हुआ। ऐसा कहा जा सकता है कि होयसल कला आरंभ ऐहोल, बादामी और पट्टदकल के प्रारंभिक चालुक्य कालीन मंदिरों में हुआ, लेकिन मैसूर क्षेत्र में विकसित होने के पश्चात् ही इसका विशिष्ट स्वरूप प्रदर्शित हुआ, जिसे होयसल शैली के नाम से जाना गया। अपनी प्रसिद्धि के चरमकाल में इस शैली की एक प्रमुख विशेषता स्थापत्य की योजना और सामान्य व्यवस्थापन से जुड़ी है।

2.5 सारांश

मानव प्रारम्भ में प्राकृतिक आवास में रहता था बाद में विकास के साथ झोपडीयों, मिट्टी और ईटों का आवास एवं मंदिर स्थापत्य के निर्माण की कला का विकास किया। अन्य कलाओं के समान ही भारतीय मूर्तिकला भी अत्यन्त प्राचीन है। यद्यपि पाषाण काल में भी मानव अपने पाषाण उपकरणों को कुशलतापूर्वक काट–छाँटकर विशेष आकार देता था और पत्थर के टुकड़े से फलक निकालते हेतु 'दबाव' तकनीक या पटककर तोड़ने की तकनीक का इस्तेमाल करने लगा था। उच्चपुरापाषाण काल में बेलन नदी घाटी के लोहदा नाले से हड्डी की एक मातृदेवी की प्रतिमा प्राप्त हुई परन्तु भारत में मूर्तिकला अपने वास्तविक रूप में हड़प्पा सभ्यता के दौरान ही अस्तित्व में आई। इस सभ्यता की खुदाई में अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो लगभग 4000 वर्ष पूर्व ही भारत में मूर्ति निर्माण तकनीक के विकास का द्योतक हैं। इसके बाद मिट्टी की प्रतिमा से होते हुए बौद्ध, ब्राहम्ण, जैन, शाक्त धर्म से सम्बन्धित देवी – देवताओं की मूर्तियां बनने लगी। अन्ततः कह सकते है कि प्रारम्भ में मूर्तिकला एवं वास्तुकला आवश्यकता जनित आवास एवं खेल – खिलौनों से होते हुए कभी धर्म के साथ और कभी धर्म से इतर भव्य मूर्ति, महल एवं मंदिर तक आ पहुँची है।

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वाल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

2.7 बोधप्रश्न

- वास्तुकला एवं मूर्तिकला के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
- वास्तुकला के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।
- मूर्तिकला के उद्भव एवं विकास को विवेचित कीजिए।

इकाई—3 : हड़प्पा कला : वास्तुकला, मूर्तिकला एवं मुहरें

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 हड़प्पा कला

3.3.1 वास्तुकला

3.3.1.1 हड़प्पाकालीन नगर—नियोजन

3.3.1.2 सड़कें

3.3.1.3 नालियाँ

3.3.1.4ईट

3.3.1.5 बृहत्स्नानागार

3.3.1.6 अन्नागार या भण्डारागार

3.3.1.7 पुरोहित आवास

3.3.1.8 सभा भवन

3.3.1.9 सुरक्षा प्राचीर

3.3.1.10लोथल की गोदी/बंदरगाह

3.3.2 सार्वजनिक महत्व के स्थापत्य

3.3.3मूर्तिकला

3.3.3.1 पाषाण मूर्ति

3.3.3.2 धातु की मूर्तियाँ

3.3.3.3 मृण्मूर्तियॉ

3.3.4 मुहरें

3.4 सारांश

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.6 बोधप्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सिंधु सभ्यता, सिंधु और उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित क्षेत्र में उद्भुत एवं विकसित हुई। बाद के अध्ययनों से इस सभ्यता के साक्ष्य सरस्वती और उसकी सहायक नदियों के द्वारा निर्मित मैदान में भी प्राप्त होते हैं। सिंधु सभ्यता के बारे में सर्वप्रथम स्पष्ट जानकारी 1921 ईस्वी में हड़प्पा के उत्खनन के साथ होती है। इस पुरास्थल का उत्खनन दयाराम साहनी के द्वारा एवं बाद में माधव स्वरूप वत्स के द्वारा करवाया गया। इसी दौरान 1 वर्ष बाद एक अन्य पुरास्थल मोहनजोदड़ो की खोज होती है और 1922 ईस्वी में उत्खनन का कार्य राखलदास बनर्जी द्वारा जान मार्शल के निर्देशन किया गया, इन दोनों पुरास्थलों की खोज ने प्राचीन विश्व की सभ्यताओं में एक नया अध्याय जोड़ दिया और भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे प्राचीनतम और व्यवस्थित नगरीय जीवन से संबंधित सभ्यता की नींव पड़ी। इस सभ्यता के अन्य पुरास्थलों में चाहुन्दडों, कालीबंगा, मोहनजोदड़ो, सुत्कागेंदोर, बनावली, धौलावीरा, राखीगढ़ी, रंगपुर, आलमगीरपुर, सुरकोटड़ा इत्यादि है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

हड़प्पा कला के विविध आयाम को।

हड़प्पा सभ्यता की वास्तुकला के बारे में।

हड़प्पा सभ्यता की मूर्तिकला को।

हड़प्पन मुहरों के बारे में

3.3 हड़प्पा कला

हड़प्पा सभ्यता की कला प्रस्तर, धातु एवं मृण्मूर्तियों, मृद्भाण्ड कला, वास्तुकला, चित्रकला, मुहरों और मनकों आदि के रूप में प्राप्त होती हैं। इनके अतिरिक्त सोने, चाँदी, तांबे, आदि रत्नों के आभूषण निर्मित करने में भी हड़प्पा

कलाकारों ने अपनी कला का परिचय दिया है। सिन्धु सभ्यता की कला में वास्तुकला और मूर्तिकला का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसका विवरण निम्नवतहै–

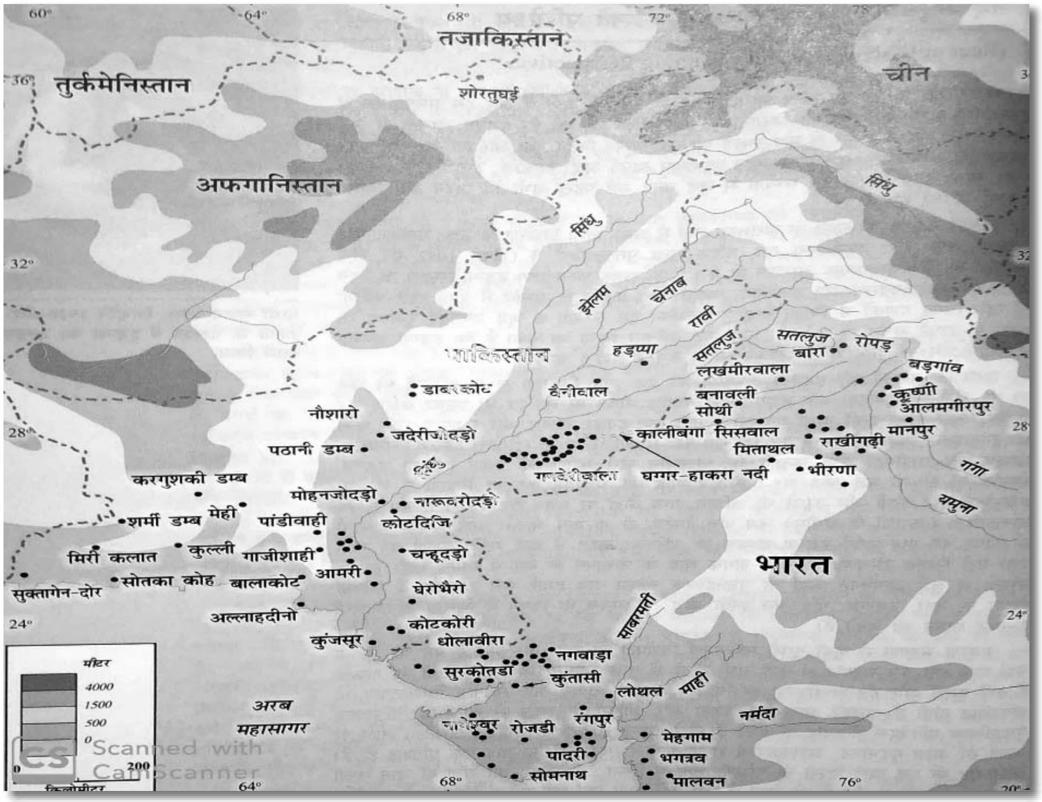

3.3.1 वास्तुकला

भारतीय इतिहास में नगरों का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम सैधव सभ्यता में हुआ। नगर एक ऐसा विशाल जन समूह होता है जिसकी जीविका प्रधानतः उद्योग –धंधों तथा व्यापार–वाणिज्य पर निर्भर करती है। हड़प्पा सभ्यता के नगरों की खुदाई पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रमुख नगरों में हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हूदडो, लोथल, कालीबंगा, बनावली व धौलावीरा।हड़प्पा का उत्खनन सन् 1921 ई० में जान मार्शल के निर्देशन में दयाराम साहनी ने करवाया। मोहनजोदड़ो का उत्खनन सन् 1922 ई० में राखलदास बनर्जी ने करवाया। ये

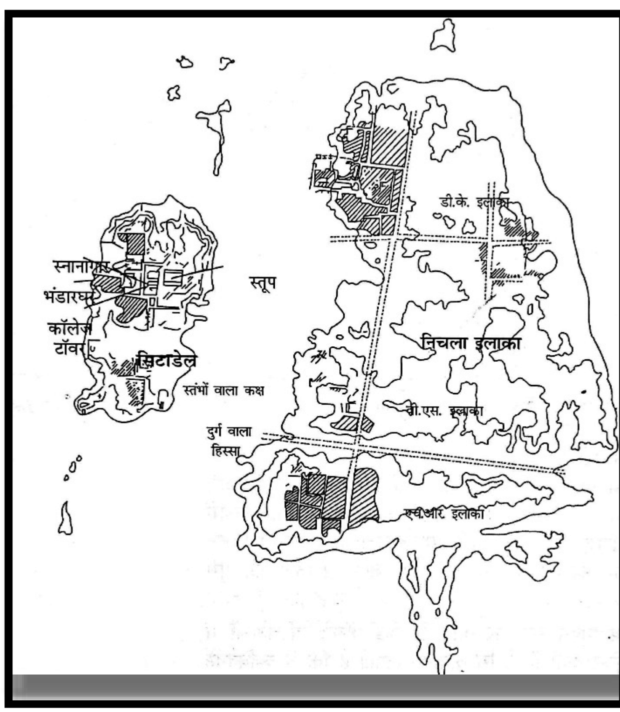

दोनों ही नगर उच्चकोटि के नगर निवेश का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनका विधान दुर्ग के रूप में किया गया है, जिनमें परिखा, प्राकार, द्वार, अट्टालक, राजमार्ग, प्रासाद, कोष्ठागार आदि वास्तु के सभी तत्व प्राप्त होते है।

3.3.1.1 हड़प्पाकालीन नगर–नियोजन

हड़प्पाकालीन नगर–नियोजन एवं वास्तुकला को निम्न् बिंदुओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, जिससे यहाँ के स्थापत्य कला पर भी विशेष प्रकाश पड़ता है। जिसका विवरण निम्नवत् है :–

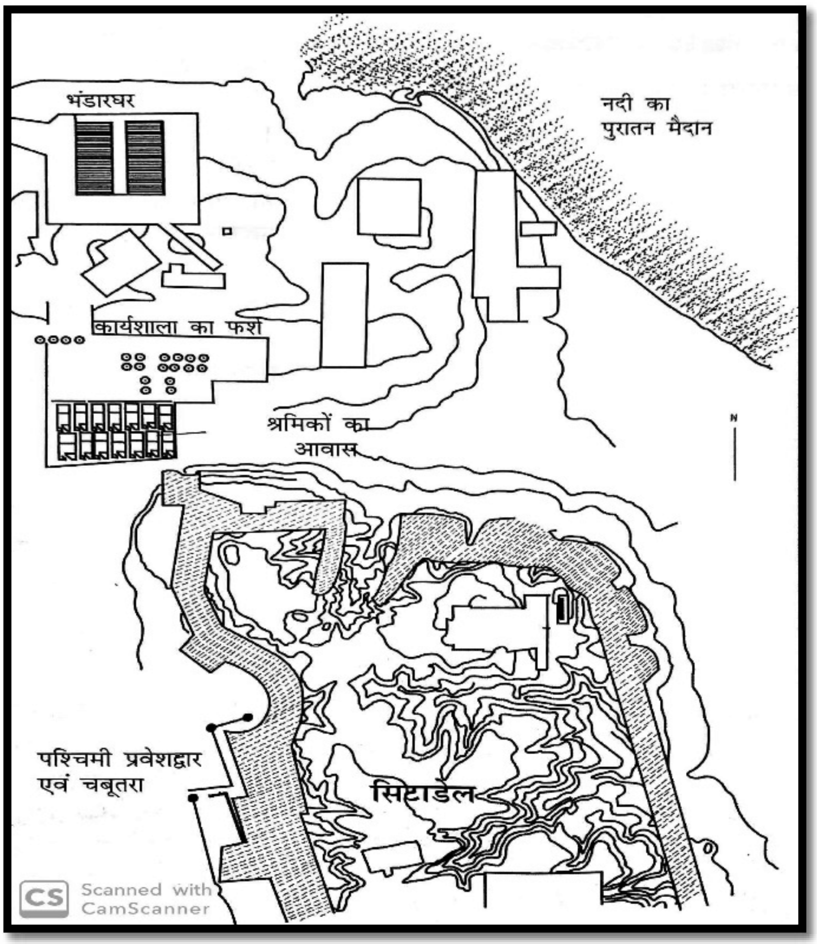

नगर के दक्षिण भाग में सामान्य नगर का बसाव था। सर्वत्र भवन निर्माण में कौशल व सामाग्री की बनावट एक सी है। सामान्यतः मकानों का क्षेत्रफल 27’x30’ था। ये छोटे मकान होता था। प्रत्येक भवन के बीच में एक आंगन होता था आंगन के तीन ओर कमरे बने होते थे। आंगन तथा कमरे की फर्श इटों को विछाकर बनाया जाता था। प्रायः रसोई आंगन में ही बनाई जाती थी।मोहनजोदडो के मकानों में दो कमरे होते थे, जबकि इनके दरवाजे गलियों की ओर होते थे। मुख्य सड़क के कोलाहल एवं प्रदूषण से बचने हेतु शायद दरवाजे, खिड़कियाँ व

रोशनदान सड़कों की ओर न होकर पीछे की ओर होते थे। प्रत्येक मकान में रसोईघर, आँगन, कुएँ, स्नानागार तथा ढकी नालियाँ होती थी। मकानों के दरवाजे सम्भवतः लकड़ी के होते थे तथा छते भी लकड़ी की होती थी। जिन पर चढ़ने हेतु पक्की ईटों की सीढ़ियाँ बनाई जाती थी। इस सभ्यता के लोग साफ–सफाई तथा स्वास्थ्य के प्रति अधिक सजग थे।

3.3.1.2 सड़कें

सैंधव सभ्यता के नगर मोहनजोदड़ो की प्रमुख विशेषता उसकी सड़कें थी । यहाँ की मुख्य सड़क 9.15 मी. चौड़ी थी जिसे पुराविदों ने राजपथ कहा है। अन्य सड़कों की चौड़ाई 2.75 मी. – 3.66 मी. तक थी। गलियाँ 1.80 मी. तक चौड़ी होती थीं। सड़के सीधी दिशा में परस्पर समकोण पर काटती थी तथा नगर को अनेक वर्गाकार तथा चतुर्भुजाकार खण्डों में विभाजित करती थी। सड़के मिट्टी की बनी थी किंतु इनके सफाई की अच्छी व्यवस्था थी। इस पर कूड़ा करकट हेतु गड्ढे होते थे अथवा कूड़ा–पात्र रखे जाते थे ! हड़प्पा की सड़कों के किनारे इस प्रकार के गड्ढे मिले हैं। मोहनजोदड़ो की एक सड़क के दोनों किनारों पर चबूतरे बने मिलते हैं। यही की मुख्य सड़क 7.5.मी. चौड़ी थी तथा मोहनजोदड़ो व हड़प्पा की भाँति यहाँ भी मकान सड़क के दोनों ओर, बने थे। बनावली के उत्खनन से जो सड़के प्राप्त हुई हैं। ये सड़के नगर को तारांकित भागों में विभाजित करती

है। कालीबंगा में भवनों के आगे व पीछे दोनों ओर सड़कें बनी थी। सड़कों को पक्की करने का प्रयास केवल यही से मिलता है। लोथल की खुदाई से चार सड़कों का अस्तित्व मिला है।

3.3.1.3 नालियाँ

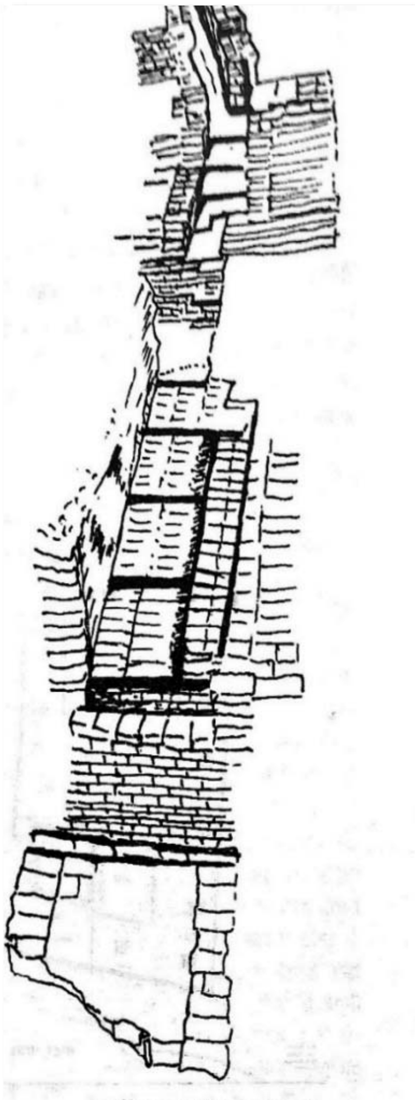

लोथल : पक्की ढलानदार नाली

सैंधवकालीन प्रमुख नगर मोहनजोदड़ों में नालियों की सुंदर व्यवस्था थी । प्रायः प्रत्येक सड़क तथा गली के दोनों ओर पक्की नालियाँ बनाई गई थी जिनसे होकर नगर का गंदा पानी निकल जाता था। किसी–किसी स्थान पर बड़ी नालियों के बीच गड्ढे भी बनाये जाते थे। मकान के कमरों, रसोई, स्नानगृह, शौचालय आदि सभी से निकलकर नालियों को एक बड़ी नाली से जोड़ दिया जाता था तथा फिर वह बड़ी वाली सार्वजनिक नाली से मिल जाती थी। स्थान–स्थान पर मेनहोल बने होते थे। इन्हें बड़ी–बड़ी ईंटों से ढका जाता था जिन्हें हटाकर नाली को साफ करते थे। कालीबंगा से प्राप्त नालियों के अवशेष से पता चलता है कि यहाँ की नालियाँ पक्की ईटों से निर्मित थी, किंतु यहाँ से सार्वजनिक नाली के अवशेष नहीं मिले है। मकानों की नालियों का पानी नाबदानों में गिरता था। लोथल में भी नालियों व नरमोखों की अत्युत्तम प्रबंध देखने को मिलता है। जो यहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य व सफाई के प्रति सजगता का प्रमाण हैं। यहाँ से पक्की ईटों की नालियों के साक्ष्य मिले हैं।

यहाँ की नालियाँ 12" से 9" तक चौड़ी होती थी। कहीं–कहीं पर सड़कों के दोनों ओर नालियाँ होती थी और कहीं पर केवल एक ओर बनाई जाती थी। सैंधव सभ्यता के कुछ नगरों का पानी बहकर बड़ी नाली में गिरता था, जो सिंधु नदी में पहुंच जाता था। नगर के बाहर बड़ी नाली बनी थी, जो 2.5 फिटचौड़ी तथा 4 से 5 फीट गहरी थी।

3.3.1.4 ईंट

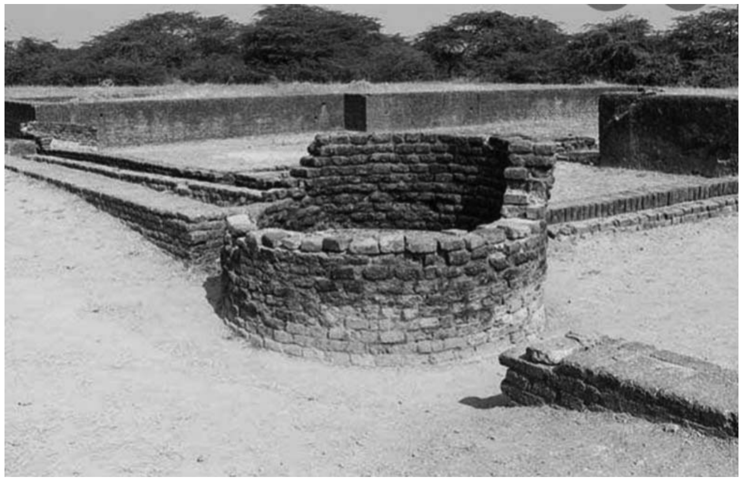

मोहनजोदड़ो के मकान तथा स्नानगृह अच्छी तरह से पकाई गई इटों की सहायता से बने थे। ईटें चतुर्भुजाकार होती थी। मोहनजोदड़ो से प्राप्त सबसे बड़ी ईंट का आकार 51.43 सेमी. X 26.27 सेमी. X 6.35 सेमी. की है। सबसे छोटी ईंट का आकार 24.13X11. 05X5.08 सेमी. है। बहुत कम भवनों की दीवारें चौड़ी ईंटों (पक्की व कंच्ची ईटों के तह को अदल–बदल करके) से बनाई गई है। ईंटें मुलायम मिट्टी से बनाई जाती थी। इनको बनाने हेतु सांचे व आवां वहाँ मिले हैं। ये कई आकार की मिली हैं जिनमें गोल, लम्बे, अर्धगोल आदि है। चंहुंदड़ों के उत्खनन से पता चलता है कि यहाँ स्नानगृह व शौचालय की फर्श ईटों की बनती थी। यहाँ से प्राप्त कुछ ईंटें वक्राकार हैं। कालीबंगा के भवन कच्ची ईटों से निर्मित मिले हैं। ये सामान्यतः 30X15X7.15 सेमी. आकार की है। यहाँ पक्की ईंट का प्रयोग केवल नालियों, कुआँ व स्नानागार बनाने में ही किया गया है। मकानों की फर्श की ईटों पर वृत्त को काटते हुए वृत्त का सुंदर अलंकरण किया गया है। संकालिया का मत है कि इस प्रकार के अलंकरण का कोई धार्मिक महत्व ही रहा होगा। लोथल से भी ईटों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। यह नगर चारों ओर से एक प्राचीर से घिरा था। प्राचीर के भीतर कच्ची ईटो से बने चबूतरों पर घर का प्रमाण मिलता है। घरों के निर्माण में कच्ची ईंटों का प्रयोग किया जाता था। कुछ विशिष्ट भवन ही पक्की ईंटों से बनते थे। नालियों व स्नानागृह की फर्शो का निर्माण भी पक्की ईटों से किया जाता था । यहाँ की सबसे बड़ी उपलब्धि 214X36 मी. का पक्की ईटों द्वारा निर्मित एक घेरा है । जिसे राव महोदय ने जहाजों की गोदी (Dock-Yard) बताया है।

3.3.1.5 बृहत्स्नानागार

यह मोहनजोदड़ो का सर्वाधिक उल्लेखनीय स्थापत्यिक साक्ष्य है, जो उत्तर से दक्षिण तक 187' (59.86 मी.) तथा पूर्व से पश्चिम तक 108' (लगभग 33 मी०) है।इसके केंद्रीय खुले प्रांगण के बीच जलकुण्ड/जलाशय बना है, जो 67 फुट (11.89 मी०) लंबा, 23 फुट (7.01 मी.) चौड़ा तथा 8 फुट (2.49 मी.) गहरा है। इसमें उतरने हेतु उत्तर तथा दक्षिण की ओर सीढ़िया बनी है। इसकी फर्श पक्की ईटों की बनी है। फर्श तथा दीवार की जुड़ाई जिप्सम से की गई है। बाहरी दीवार पर बिटूमिन का एक इंच मोटा (2.54 सेमी.) प्लास्टर लगाया है। इसके दक्षिणी पश्चिमी छोर पर एक नाली थी, जिसके द्वारा पानी निकाला जाता था । जलाशय के तीन ओर बरामदे तथा उनके पीछे कई कमरे व गैलरियां थी। इन्हीं में से एक कमरे में ईटों की दोहरी पंक्ति से बनाया गया कुआ था, जिससे स्नानागार में पानी भरा जाता था। प्रत्येक कमरे में ईंटों की बनी सीढी मिलती है जिससे पता चलता है कि दूसरी मंजिल भी रही होगी। बृहत्स्नानागार के उत्तर में छोटे स्नानागार भी बने हैं जो संभवतः आम जनता हेतु या धार्मिक समारोहों हेतु प्रयोग किये जाते थे।

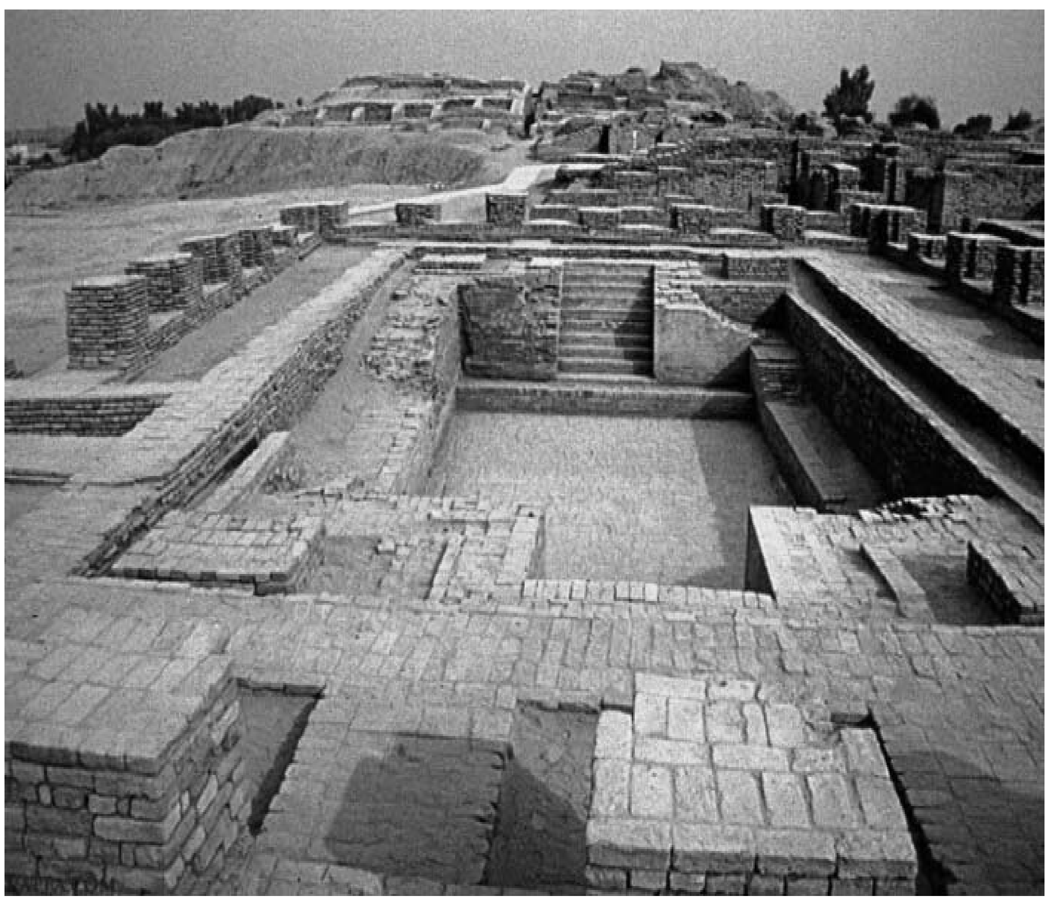

3.3.1.6 अन्नागार या भण्डारागार

बाद में इसकी उपयोगिता अन्नागार के रूप में देखी जाने लगी, मोहनजोदड़ो से प्राप्त अन्नागार 50X27 मीटर का है। ईट से निर्मित इस ठोस आधार को 27 वर्गाकार एवं आयताकार खण्डों में बांटा गया है। जिसके बीच सकरा गलियारा बना है। दो गलियारे पूरब–पश्चिम और आठ उत्तर–दक्षिण की दिशा में है ऐसा लगता है कि संपूर्ण अन्नागार का बाहरी ढांचा लकड़ी का बना हुआ था।अन्नागार के दक्षिण–पश्चिम हिस्से में 4–5 मीटर चौड़ी सीढ़ियां बनी थी, सिढ़ियों के नीचे कुआ बना था तथा सिढ़ियों के ऊपर नहाने के लिए एक चबुतरा बना था। इसके उत्तर में झावां ईट से बना चबूतरा मौजूद है, जिसकी पहचान मॉटिमर व्हीलर ने लदान प्रक्षेत्र (Loading area) के रूप में किया है चूँकि इसकी खुदाई के दौरान तथाकथित अन्नागार से प्राप्त सामग्रियों का कोई रिकॉर्ड नहीं रखा जा सका। अतः इसकी उपयोगिता के विषय में अधिक कुछ भी निश्चित रूप से कहना उचित नहीं है। अनाज अथवा अनाजों का संग्रह करने वाले पात्रों के अभाव अन्नागार के रूप में पहचान स्थापित करने के प्रयास पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं।

स्नानागार के पश्चिम में 1.52 मी. ऊँचे चबूतरे पर निर्मित एक भवन मिला

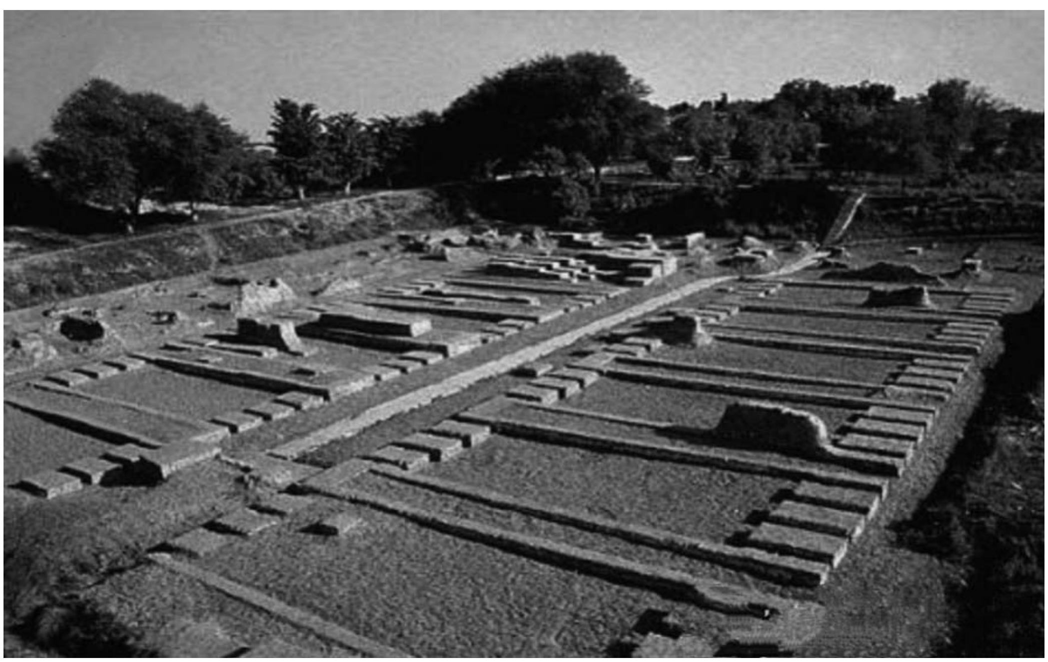

है, जो पूर्व से पश्चिम में 45.72 मी. लम्बा तथा उत्तर से दक्षिण में 22.06 मी. चौढ़ा है। इसका ऊपरी ढांचा बॉस का बना था जो अब नष्ट हो गया। इसे व्हीलर ने अन्नागार बताया है। इसमें ईटों से बने विभिन्न आकार – प्रकार के 27 प्रकोष्ठ मिले हैं। अन्नागार में हवा जाने हेतु स्थान बनाये गये थे। इसके उत्तर में एक

चबूतरा है, जो अन्न रखते व निकालते समय उपयोग में लाया जाता रहा होगा। विद्वानों का ऐसा विचार है कि राजकीय भण्डारागार था, जिसमें जनता के कर के रूप मे वसूल किए अनाज रखे जाते थे। अन्नागार के साक्ष्य हड़प्पा मोहनजोदड़ो तथा लोथल से प्राप्त हुए हैं।

इसी तरह के अन्नागार की प्राप्ति हड़प्पा नामक पुरास्थल से भी होती है जो कि सिन्धु सभ्यता से खोजा गया प्रथम पुरास्थल था। हड़प्पा से प्राप्त अन्नागार में 12 इकाइयां थी। जो छः–छः कमरों के दो प्रकार में सज्जित थी। इसके बीचों–बीच मुख्य गलियारा था। प्रत्येक इकाई का आकार 15.2 x 16.1 मीटर है, ऐसा लगता है कि इसके ऊपर लकड़ी का ढांचा बना था, जिसे जगह–जगह विशाल खम्भों से टिकाया गया था। मोहनजोदड़ो के अन्नभंडार की तरह यहां से भी अनाज का कोई दाना नहीं प्राप्त हुआ है। अन्नभंडार के रूप में इसकी पहचान रोम में पाए गए ऐसे ढांचों के आधार पर किया गया है। इस तरह से देखा जाए तो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा,लोथल एवं सिंधु सभ्यता के अन्य पुरास्थलों से छोटे–बड़े अन्नागार के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

3.3.1.7 पुरोहित आवास

बृहत्स्नानागार के उत्तर पूर्व 70.1 X23.97 मी. के आकार का एक विशाल भवन मिला है जिसमें 10 मी. का वर्गाकार प्रॉगण, तीन बरामदे तथा कई कमरे बने थे। कुछ की फर्श पक्की ईटों की बनाई गई है। संभवतः यहाँ प्रधान पुरोहित अपने सहयोगियों के साथ निवास करते थे। संभव है यहाँ पुरोहितों का विद्यालय स्थित रहा हो । पुरोहित आवास के अवशेष मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुए हैं।

3.3.1.8 सभा भवन

हड़प्पाकालीन नगर मोहनजोदड़ो के दुर्ग के दक्षिण की ओर 22X27 मी. का एक वर्गाकार भवन मिला है. जिसे सभा भवन कहा गया। इसमें ईटों के 20 चौकोर स्तंभों के अवशेष मिले है। इनकी 4 कतारें है, प्रत्येक में 5–5 स्तंभ है। मुख्य प्रवेश द्वार इसका उत्तर की ओर था। संभवतः इन स्तंभों पर भवन की छत टिकी थी। इस प्रकार यह स्तंभों वाला भवन था । भवन के भीतर बैठने हेतु चौकियाँ बनी थी। मैके के विचार में यहाँ कोई बाजार लगती रही होगी। लगता है कि इस भवन का उपयोग सार्वजनिक सभाओं हेतु किया जाता था।

3.3.1.9 सुरक्षा प्राचीर

सैंधवकालीन सभ्यता के कई नगर से सुरक्षा प्राचीर के प्रमाण मिले हैं। ये अपने नगर की रक्षा हेतु इन प्राचीरों का निर्माण करते हैं। हड़प्पा नगर के पश्चिम की ओर एक दुर्ग का निर्माण किया गया था। यह उत्तर से दक्षिण की ओर 415 मी. लम्बा तथा पूर्व से पश्चिम की ओर 195 मी. चौड़ा है, जिस टीले पर यह दुर्ग बना है, उसे व्हीलर ने माउण्ड ए–बी की संज्ञा प्रदान की है। दुर्ग के चारों ओर एक सुरक्षा दीवार बनी है, जो अपने आघार पर 13.5 मी. चौड़ी थी। इसमें स्थान–स्थान पर द्वार तथा उसके समीप रक्षक गृह बने थे। हड़प्पा के अतिरिक्त सुरक्षा प्राचीर के साक्ष्य मोहनजोदड़ो, धौलावीरा, लोथल तथा कालीबंगा से मिले है।

3.3.1.10 लोथल की गोदी/बंदरगाह

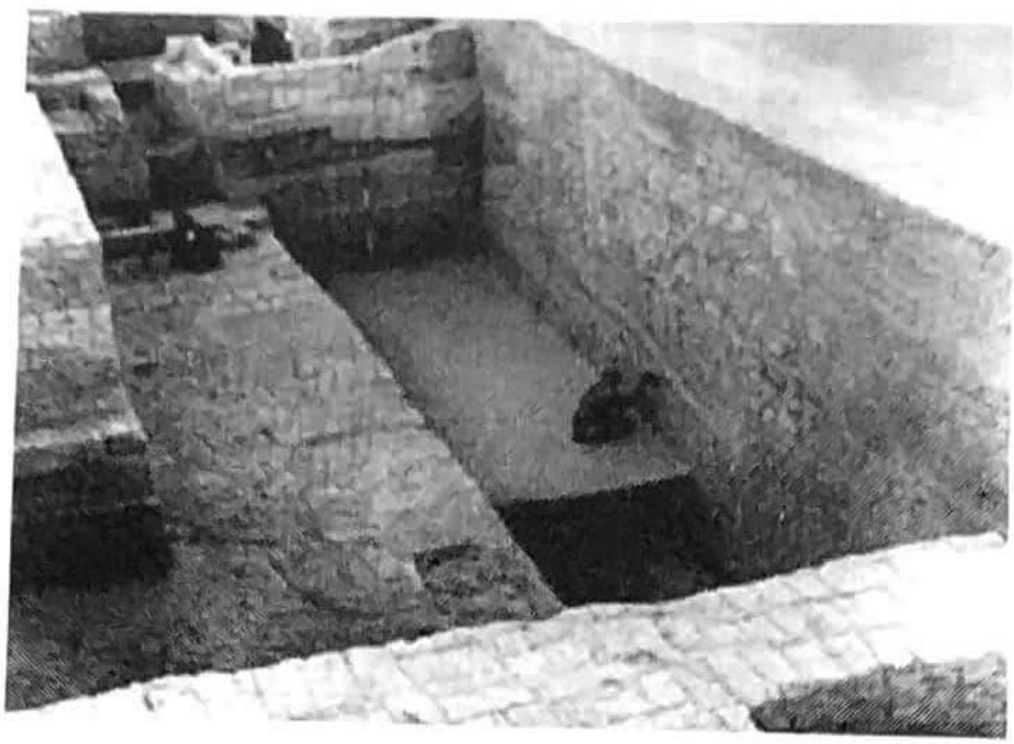

गुजरात के लोथल में एक विशिष्ट संरचना प्राप्त हुई है, जिसे गोदी/बंदरगाह की संज्ञा दी गई है। हड़प्पा सभ्यता का संबंध समकालीन सभ्यताओं के साथ था वहाँ से व्यापार होता था तथा लोथल, हड़प्पा से स्थल मार्गो से तथा समुद्र के किनारे होने से जलमार्ग से जुड़ा था। पश्चिमी एशियाई देशों से भी व्यापार होता था इसके लिए यहाँ एक गोदी बनाई गई थी। इस नगर का विस्तार दो मील के लगभग था।खुदाई से प्राप्त गोदी की आकृति विषमभुज

चतुर्भुज की तरह थी। यह पूर्व से पश्चिम की ओर 710 फीट लम्बी थी, इसकी उत्तरी भुजा का विस्तार 124फीटतथा दक्षिणी का 116फीट था। इसके चारों ओर 14फीट ऊँची दीवार बनी थी। आगे समुद्र की ओर एक स्थान पर नीचे की दीवार बनी थी। ऐसा ज्वार भाटा से सुरक्षा हेतु बनाया गया था।

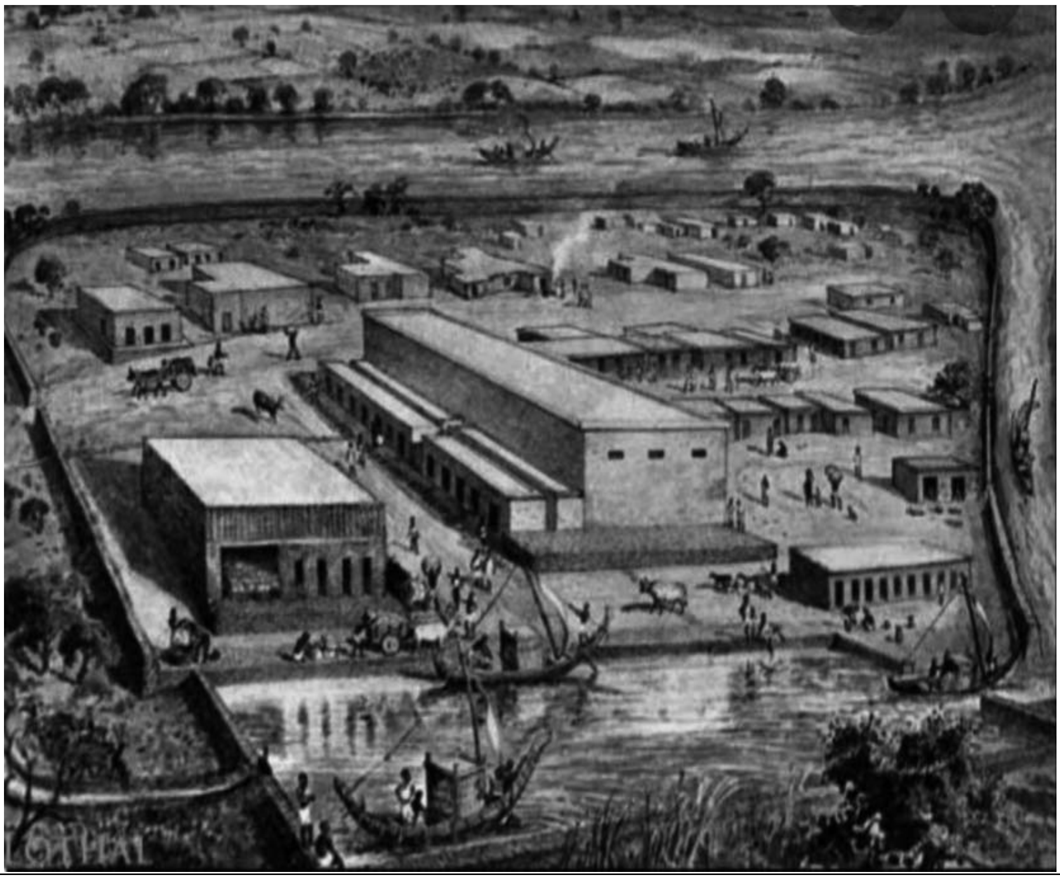

3.3.2 सार्वजनिक महत्व के स्थापत्य

सिन्धु सभ्यता के पुरास्थलों में चाहुन्दडों, कालीबंगा, मोहनजोदड़ो, सुत्कागेंदोर और बनावली, धौलावीरा, राखीगढ़ी, रंगपुर, आलमगीरपुर, सुरकोटड़ा इत्यादि है। इन पूरा स्थलों के उत्खनन से प्राप्त स्थापत्य अवशेषों में सार्वजनिक महत्व के स्थापत्य भी थे, जिनका सिंधु सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान था। यह स्थापत्य प्रायः गढी/ दुर्ग (Citadel) या ऊंचाई वाले क्षेत्र से प्राप्त होते हैं। यह प्रायः नगर के पश्चिम की तरफ स्थित होते थे इन स्थापत्य अवशेषों में महास्नानागार, अन्नागार, सभाभवन, पुरोहित आवास, बंदरगाह, स्टेडियम इत्यादि थे, जिनका विवरण निम्नवत् प्रस्तुत है–

प्राचीन विश्व की सभ्यताओं से प्राप्त स्थापत्य अवशेषों में सिंधु सभ्यता के मोहनजोदड़ो नामक स्थल से प्राप्त महास्नानागार का सर्वाधिक महत्व है। इस तरह की रचना सिंधु सभ्यता के अलावा अन्य किसी समकालीन सभ्यताओं में अभी तक नहीं प्राप्त की गयी हैं। सिन्धु सभ्यता में स्नानागार का सामाजिक एवं धार्मिक महत्व था। मोहनजोदड़ो से प्राप्त यह स्थापत्य पूरी तरह ईंटों से निर्मित है। इस स्नानागार का आकार 14.5 X 7 मीटर (लंबाई तथा चौड़ाई) तथा अधिकतम गहराई 2.4 मीटर है।यह संरचना नगर के उत्तरी हिस्से में स्थित है। इस आयताकार टैंक के उत्तरी और दक्षिणी हिस्सों में बहुत चौड़ी सीढ़ियां बनी हुई है। स्नानागार की फर्श और दीवारों की इटों की सुव्यवस्थित संरचना पर जिप्सम के द्वारा पानी के रिसाव को पूर्ण रूप से रोक देने की व्यवस्था की गई थी। शायद यह विश्व में वाटर प्रोफिंग(Water proofing) का पहला उदाहरण रहा होगा। फर्श का ढलान दक्षिण से पश्चिम की ओर है, जहां से पानी को ईंट से बनी नाली में निकाला जाता था। स्नानागार के पूर्व उत्तर और दक्षिण में ईंटों से बने स्तंभों के अवशेष मिले हैं। इसी प्रकार की श्रृंखला पश्चिम की तरफ अवश्य रही होगी। स्नानागार में प्रवेश के लिए दो बड़े द्वार तथा उत्तर एवं पूर्व में भी एक–एक द्वार मिले हैं। स्नानागर के पूर्वी हिस्से में कक्षों की एक श्रृंखला मिली है, जिनमें से एक में कुआं बना हुआ था। इस स्नानागार से ठीकउत्तर में एक बड़ा भवन है। जिसमें आठ कक्षों वाला एक स्नानागार भी स्थित है।

सिंधु सभ्यता से प्राप्त स्थापत्य अवशेषों में अन्नागार का महत्वपूर्ण स्थान है। यह भी प्रायः नगर के पश्चिमी क्षेत्र दुर्ग या गढ़ी क्षेत्र में ही स्थित था। बहुत से विद्वान अन्नागार को हमाम के रूप में देखे थे। यह मोहनजोदड़ो में स्नानागार के दक्षिण–पश्चिम कोने पर एक भव्य संरचना के रूप में स्थित था। बाद में इसकी उपयोगिता अन्नागार के रूप में देखी जाने लगी, मोहनजोदड़ो से प्राप्त अन्नागार 50X27 मीटर का है। ईट से निर्मित इस ठोस आधार को 27 वर्गाकार एवं आयताकार खण्डों में बांटा गया है। जिसके बीच सकरा गलियारा बना है। दो गलियारे पूरब–पश्चिम और आठ उत्तर–दक्षिण की दिशा में है ऐसा लगता है कि संपूर्ण अन्नागार का बाहरी ढांचा लकड़ी का बना हुआ था। अन्नागार के दक्षिण–पश्चिम हिस्से में और 4–5 मीटर चौड़ी सिढ़ियां बनी थी,सिढ़ियों के नीचे कुआँ बना था तथा सिढ़ियों के ऊपर नहाने के लिए एक चबुतरा बना था इसके उत्तर में झावां ईट से बना चबूतरा मौजूद है जिसकी पहचान मॉटिमर व्हीलर ने लदान प्रक्षेत्र(Loading area) के रूप में किया है चूँकि इसकी खुदाई के दौरान तथाकथित अन्नागार से प्राप्त सामग्रियों का कोई रिकॉर्ड नहीं रखा जा सका। अतः इसकी उपयोगिता के विषय में अधिक भी कुछ निश्चित रूप से कहना उचित

नहीं है। अनाज अथवा अनाजों का संग्रह करने वाले पात्रों के अभाव अन्नागार के रूप में पहचान स्थापित करने के प्रयास पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं।

इसी तरह के अन्नागार की प्राप्ति हड़प्पा नामक पुरास्थल से भी होती है जो कि सिन्धु सभ्यता से खोजा गया प्रथम पुरास्थल था। हड़प्पा से प्राप्त अन्नागार में 12 इकाइयां थी। जो छः–छः कमरों के दो प्रकार में सज्जित थी। इसके बीचों–बीच मुख्य गलियारा था। प्रत्येक इकाई का आकार 15.2 X 16.1 मीटर है, ऐसा लगता है कि इसके ऊपर लकड़ी का ढांचा बना था, जिसे जगह–जगह विशाल खम्भों से टिकाया गया था। मोहनजोदड़ो के अन्नभंडार की तरह यहां से भी अनाज का कोई दाना नहीं प्राप्त हुआ है। अन्नभंडार के रूप में इसकी पहचान रोम में पाए गए ऐसे ढांचों के आधार पर किया गया है। इस तरह से देखा जाए तो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा,लोथल एवं सिंधु सभ्यता के अन्य पुरास्थलों से छोटे बड़े अन्नागार के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

सिंधु सभ्यता के पुरास्थलों में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले 'लोथल' से एक ऐसे संरचना की प्राप्त हुई है जिसे 'बंदरगाह' या डॉकयार्ड के रूप में पहचान की गई है। यह लोथल पुरास्थल के पूर्वी सिरे पर स्थित है, यह लगभग विषम चतुर्भुजी आकार वाला जल संग्रह का क्षेत्र है। पूर्वी दीवार 212 मीटर तथा पश्चिमी दीवार 215 मीटर लंबी है जबकि उत्तर और दक्षिण की दीवार क्रमशः 37 और 35 मीटर चौड़ी है इस डॉकयार्ड में जल की अनवरत आपूर्ति के लिए एक गेट और नहर की विशेष व्यवस्था की गई थी। इस आकृति के पश्चिमी हिस्से में इसकी मिट्टी के ईटों से बने चबूतरे का उपयोग सामानों को उतारने चढ़ाने के लिए किया जाता रहा होगा। इस संरचना के संदर्भ में कुछ विद्वानों की जलाशय होने की वैकल्पिक व्याख्या विश्वसनीय नहीं है।

सिंधु सभ्यता के गुजरात में स्थित एक महत्वपूर्ण स्थल धोलावीरा से एक ऐसे स्थापत्य की प्राप्ति हुई है, जो चारों तरफ से दीवाल से घिरा हुआ है। इस संरचना को कुछ विद्वानों ने स्टेडियम का नाम दिया है। धोलावीरा से बाहरी दीवाल के भीतर तीन विभाजन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, गढ़ी या दुर्ग, पश्चिम में बाहरी प्रांगण अर्थात दुर्गा के पश्चिम का भाग और उत्तर में मध्य नगर तीनों की पृथक–पृथक घेराबंदी की गई थी। मिडिल टाउन के बीच में एक विशाल खुला क्षेत्र स्टेडियम कहा गया है जिसका उपयोग विशिष्ट समारोह के अवसर पर प्रायः किया जाता था।

सिंधु सभ्यता के प्रमुख पुरास्थलों के नगर प्रायः दो भागों में विभाजित थे, एक पश्चिम की तरफ दुर्ग का क्षेत्र और दुसरा पूर्व की तरफ जन–सामान्य का

आवास क्षेत्र या निचला क्षेत्र। मोहनजोदड़ो का नगर विन्यास भी इसी तरह से प्राप्त होता है। मोहनजोदड़ो पुरास्थल के स्नानागार वाली सड़क पर ही 10 वर्ग मीटर आंगन है, जिसमें तीन बरामदे हैं स्नानागार से निकटता और इस भवन की विशालता को देखते हुए ऐसा मान लिया गया है कि यह मोहनजोदड़ो के प्रमुख पुरोहित का निवास स्थान था, जिसको कॉलेज ऑफ पृष्ट या 'पुरोहित का महाविद्यालय' की संज्ञा दी गई है।

सिंधु सभ्यता में प्राय घरों के अंदर निजी कुओं की प्राप्ति तो होती ही है लेकिन घर से बाहर सार्वजनिक कुओं के साक्ष्य भी प्राप्त हुए हैं। जैनसेन(1989) के आकलन के अनुसार मोहनजोदड़ो में 700 से अधिक कुऐं थे अर्थात प्रत्येक तीन मकान के लिए औसतन एक कुआं था। कुओं की गहराई प्रायः 10 से 15 मीटर थी। कुओं के ऊपरी हिस्से पर रस्सी के चिन्ह देखे जा सकते हैं। मोहनजोदड़ो से ज्यादातर मकानों में और कुछ मकानों के पास कम से कम एक निजी कुआं बना हुआ था। कई मोहल्ले में मुख्य सड़क के किनारे सार्वजनिक कुऐं भी बने थे। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि इन कुओं पर लोग जमा होकर पानी भरने के बीच आपस में खबरों का लेनदेन और आपसी बातचीत करते रहे होंगे।

इसके अलावा कुछ और भी स्थापत्य थे जिनका सार्वजनिक रूप से प्रयोग किया जाता था जैसे कब्रगाह या समाधि स्थल एवं कुछ धार्मिक स्थल थे जिसमें कालीबंगा से प्राप्त अग्निकुंड इत्यादि।

3.3.3 मूर्तिकला

जिस तरह से सिन्धु सभ्यता की स्थापत्य कला विश्व प्रसिद्ध है, उसी तरह से मूर्तिकला भी है। विश्व की अन्य कलाओं के समान ही सिन्धु सभ्यता की मूर्तिकला का अद्वितीय स्थान है। भारतीय मूर्तिकला भी अत्यन्त प्राचीन है यद्यपि पाषाण काल में मानव अपने पाषाण उपकरणों को काट–छॅाट कर विशेष आकार देता था, इसी प्रकिया ने आगे चलकर मूर्तिकला को जन्म दिया। मूर्तिकलाका प्राचीनतम साक्ष्य बेलन नदी के लोहन्दा नाले से प्राप्त अस्थि निर्मित मातृदेवी की मूर्ति को माना जाता है, जो उच्च पुरापाषाण काल से सम्बन्धित है। सिन्धु सभ्यता के पुरास्थलों में चाहुन्दडों, कालीबंगा, मोहनजोदड़ो, सुत्कागेंदोर, बनावली, धौलावीरा, राखीगढ़ी, रंगपुर, आलमगीरपुर और सुरकोटड़ा इत्यादि है। इन पुरास्थलों के उत्खनन से मूर्तिकला के साक्ष्य प्राप्त होते है, जिनका सिंधु सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान था। जिनका विवरण निम्नवत् है–

3.3.3.1 पाषाण मूर्ति

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त पाषाण मूर्तियों का पाषाण मूर्तिकला के उद्‌भव एवं विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें मोहनजोदड़ों से लगभग 1 दर्जन पाषाण मूर्तियाँ तथा हड़प्पा से दो पाषाण मूर्तियां प्राप्त हुई है। हड़प्पा से प्राप्त मूर्तियां अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली है, जिनका निर्माण बलुआ प्रस्तर, स्लेटी पत्थर आदि की सहायता से किया गया है। हड़प्पा सभ्यता में पाषाण मूर्ति का निर्माण कलाकारों ने अंग –प्रत्यंग को जोड़कर मूर्ति का निर्माण किया है। जहां पर प्रस्तर मूर्ति का सवाल है तो इसमें अधिकांश पशु–पंक्षी एवं मनुष्यों की ही है। लगभग 15 के करीब जो प्रस्तर मूर्तियां मिली है, उनमें खिलौने एवं मनोरंजन की मूर्तियां बहुत कम है।

पाषाण वर्ग की प्रसिद्ध मूर्तियां निम्नलिखित है–

1. मोहनजोदड़ों से प्राप्त सन्यासी की मूर्ति
2. मोहनजोदड़ों से प्राप्त मानव मस्तक
3. हड़प्पा से प्राप्त नग्न पुरूष धड़
4. हड़प्पा से प्राप्त शेलखड़ी का कुत्ता
5. मोहनजोदड़ों से प्राप्त भेड़–हाथी की सयुंक्त मूर्ति

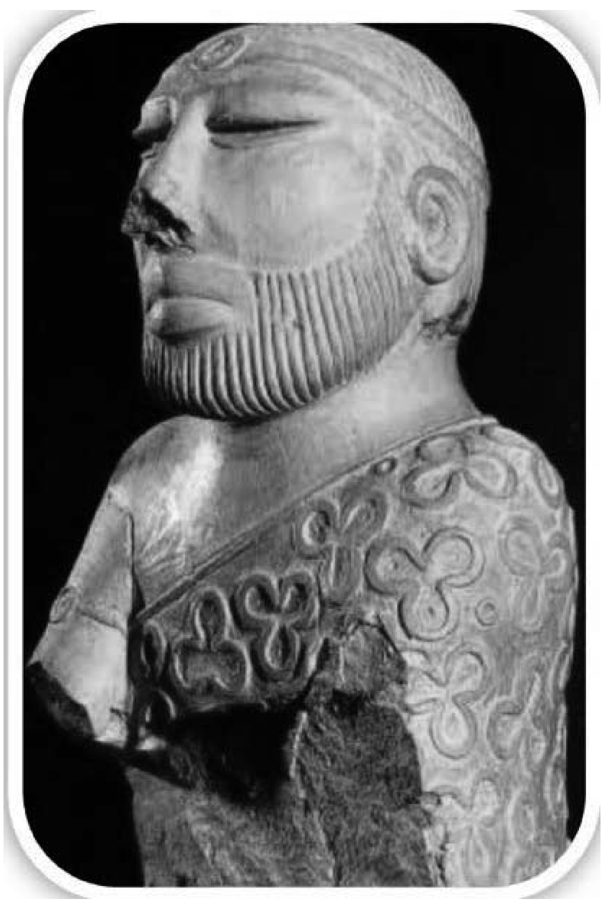

इन प्रस्तर मूर्तियों से यह ज्ञात होता है कि ये अत्यन्त विशिष्ट थी। यूनानी कलाकारों ने गान्धार कला में जो यथार्थता दिखायी उसका पूर्व रूप इन मूर्तियों में देखा जा सकता है। दोनों के तुलनात्मक पद्धतियों के उपारान्त मार्शल ने यह मत व्यक्त किया कि ई.पू. चौथी शदी का कोई भी यूनानी कलाकार ऐसी मूर्तियां तैयार करने में गर्व का अनुभव करता है। इन मूर्तियों से यह धारणा भी निंमूल सिद्ध होती है कि केवल यूनानी कलाकार ही मानव शरीर के यर्थाथ् चित्रण में निपुण

थे। प्राप्त प्रस्तर (पाषाण) मूर्तियाँ, अलबास्टर, चूना पत्थर, सेलखड़ी बलुआ पत्थर और स्लेटी पत्थर से निर्मित हैं।

सभी मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में प्राप्त हुई हैं, किसी का केवल सिर मिला है तो किसी का केवल धड़। कोई भी प्रस्तर मूर्ति ऐसी नहीं, जिसका सिर और धड़ दोनों मिले हों। मैके महोदय का अनुमान है कि इन्हें जान–बूझकर तोड़ा गया है किन्तु किन लोगों ने किन कारणों से इन्हें तोड़ा होगा इसे वे बताने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। कलात्मक मूर्तियाँ अल्प हैं, किन्तु इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि उस काल के कलाकारों में सौंदर्य दृष्टि की पर्याप्त क्षमता थी।

सन्यासी की मूर्ति –

(i) यह प्रस्तर की मूछ विहीन दाढ़ी युक्त मूर्ति हैं। सामने माथे पर एक पट्टिका बंधा हुआ है।

(ii) ज्यामिती पैटर्न पर रेशम का वस्त्र पहना हुआ है।

(iii) अध खुले नेत्र

(iv) मोटे होंठ तथा

(v) उसकी दृष्टि नाक के अग्र भाग पर टिकी हुई है।

ऐसी मूर्तियां मिश्र, मेसोपोटामियां से भी मिली है, जहां उनका सम्बन्ध देवताओं से रहा है। मैके के अनुसार – कलाकार ने इस मूर्ति के माध्यम से विशिष्ट व्यक्ति का यथार्थ रूपान्तरण किया है। वे इसे पुजारी को मूर्ति बताते है। कुछ विद्वान इस मूर्ति को योगी की मूर्ति के नाम से सम्बोधित करते है।इस मूर्ति के केश विन्यास विशेष रूप से आकर्षक है।

अधिकांश पाषाण मूर्तियाँ बैठी (आसन) अथवा खड़ी (स्थानक) मुद्रा में हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त 14 प्रस्तर मूर्तियों में से पाँच गढ़ी वाले टीले के एच0 आर0 क्षेत्र से मिली हैं, जिसमें उस क्षेत्र का विशिष्ट महत्त्व विदित होता है। इनके निर्माण में लाल बलुए पत्थर तथा यंत्र–तंत्र स्लेटी पत्थर का उपयोग किया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त पाषाण मूर्तियों में से चार मानव सिर का, पाँच में बैठी हुई आकृति का तथा शेष दो में पशुओं का मूर्तन किया गया है। सेलखड़ी की 19 सेमी0 लम्बी खण्डित पुरुषमूर्ति, जो तिपतिया छाप वाली शाल ओढ़े हुए है, मिली हैं। इसके हाथ टूटे हुए हैं। इसकी दाढ़ी विशेष रूप से सवारी गयी हैं तथा इसकी मूँछें नहीं हैं। इसके केश पीछे की ओर एक फीते से बंधे हुए हैं। इसके नेत्र अद्धोन्मीलित तथा उभरी हुई हैं, इसके निचले होंठ मोटे हैं तथा उसकी दृष्टि नाक के अग्रभाग पर टिकी हुई हैं। नेत्रों में जड़ाई के काम का स्पष्ट संकेत है। मोहनजोदड़ो की इस मूर्ति को योगी अथवा पुरोहित की मूर्तिमाना जा सकता है।

नग्न पुरुष धड़ –

(i) यह प्रस्तर की गोलाकार पालिशदार, लाल चूना पत्थर से बनी है।

(ii) इसकी स्वाभाविक भंगिमा एवं परिष्कृत बनावट बिलक्षण है।

(iii) नृत्यरत मुद्रा में प्राप्त यह मूर्ति अदिम शिव का रूप लगती है।

(iv) दूसरे नग्न पुरुष धड़ की मांस पेशियां उभरी हुयी है।

(v) दूसरी मूर्ति की समानता मौर्यकालीन लौहानी (पटना) से प्राप्त जैन तीर्थकर से की गयी है।

मोहनजोदड़ो से लगभग 178 सेमी0 लम्बा चूना पत्थर पर निर्मित पुरुष का एक अन्य मस्तक मिला है। यह दाढ़ी युक्त है तथा मूँछें साफ हैं। पीछे की ओर जूड़ा बंधा है, छोटे कटे हुए केश हैं, कान सीपी जैसी है तथा आँखों में पच्चीदार पुतली है किन्तु इसमें पहली मूर्ति की भाँति, की कारीगरी का अभाव है। अलबस्टर

की बनी हुई 29.5 सेमी0 ऊँची बैठी हुई व्यक्ति की जो मूर्ति मिली है, यह नीचे पारदर्शी वस्त्र पहने हुए हैं। तथा ऊपर बायें कन्धे पर शाल जैसा उस्तरीय ओढ़े हुए हैं, इसका मस्तक खण्डित है। इसकी पीठ पर गुथे हुए बालों का जुड़ा है। यह मूर्ति साधारण ढंग से निर्मित की गई लगती है। इसके अतिरिक्त पत्थर की बनी कुछ पशु–मूर्तियां भी मिली हैं। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय श्वेत पाषाण निर्मित लगभग दस इंच ऊँची एक संयुक्त पशुमूर्ति, है, जिसमें शरीर भेड़ तथा मस्तक सूँड़दार हाथी का है। संभवतः इस मूर्ति का कोई धार्मिक महत्त्व रहा होगा। इससे मिलती–जुलती संयुक्त आकृतियां सैंधव मुहरों पर भी प्राप्त होती है।

मोहनजोदड़ो से मिली उपर्युक्त मूर्तियों में शैली तथा सौंदर्य निरूपण की दृष्टि से किंचित भिन्न कोटि की दो प्रतिमाएँ हड़प्पा में उपलब्ध हुई हैं। ये पूर्ण मानवाकृतियाँ न होकर केवल घड़ मात्र हैं। इनमें से एक पुरुष धड़ है तथा दूसरी नारी घड़ है। इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो हड़प्पाकालीन पाषाण मूर्तियों में धड़ तथा शेष शरीरांगों को अलग–अलग बनाने की परम्परा विद्यमान थी। प्रो0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने इनमें से एक सीधे खड़े धड़ को, जिसके हाथ और पैर खण्डित हैं, परन्तु अवशिष्ट शरीरांश नृत्य की मुद्रा में अवगुण्ठित सा दिखता है, को नारी मूर्ति स्वीकारा है।"हड़प्पा से प्राप्त उक्त दोनों मूर्तियाँ नग्न हैं। लाल बलुएँ पत्थर से बनी इन मूर्तियों में सहज गतिशीलता तथा कलात्मक सौंदर्य अद्‌भुत रूप में प्रस्तुत हुआ है। माधोस्वरूप वत्स द्वारा किये गये उत्खनन से प्राप्त लाल बलुआ पत्थर पर बनी हुई 9 सेमी ऊंची पुरुष धड़ की मूर्ति एक नवयुवक की मूर्ति है। यह मूर्ति खड़ी हुई मुद्रा में है। इस नग्न प्रतिमा (पुरुष नर्तक मूर्ति) की पहचान कुछ विद्वान आदि जैन तीर्थंकर से करने का प्रयास करते हैं। परन्तु अभी तक निर्विवादतः इस परिप्रेक्ष्य में कुछ नहीं कहा जा सकता है। हड़प्पा की दूसरी मूर्ति काले रंग के स्लेटी पत्थर पर निर्मित है, जो 10 सेमी0 ऊंची है। विद्वानों ने इसे किसी नर्तक अथवा नर्तकी की मूर्ति बताया है। मार्शल, मैके, व्हीलर प्रभृति विद्वानों ने इसे पुरुष आकृति माना है। मार्शल ने तो इस आकृति को शिव नटराज के पूर्व रूप होने की संभावना व्यक्त की थी। प्रो0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे नवयौवना नारी की आकृति माना है, जो अधिक समीचीन लगता है।

3.3.3.2 धातु की मूर्तियाँ

प्रस्तर मूर्तियों के साथ सिन्धु सभ्यता से धातु मूर्तियां भी प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ों, लोथल में धातुओं की मूर्तियों को ढ़ाला जाता था। इनके निर्माण के मुख्य विषय खिलौने, पशु–पंक्षी एवं नारी है। पुरूषों की धातु मूर्तियां नगण्य है।

> हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त धातु मूर्तियां निम्नवत् है –
>
> (i) कांसे की नर्तकी की मूर्ति (मोहनजोदड़ों)
>
> (ii) कालीबंगा, आदि स्थानों से धातु की मूर्तियां मिली है। धातु मूर्तियों के निर्माण में हड़प्पा सभ्यता में तांबें एवं कांसे का उपयोग किया जाता था। द्रवी मोम विधि से बनी तांबें की मानवाकृति (लोथल से)
>
> (iii) तांबें एवं कांसे की रथनुमा गाड़ी (दायमाबाद)
>
> (iv) कांसे की वृषभ मूर्ति (मोहनजोदड़ों)
>
> (v) तांबें कुत्ता (लोथल)
>
> (vi) कांसे की पहिया युक्त गाड़ी (चहुन्दड़ों)
>
> धातु निर्मित मूर्तियों में मोहनजोदड़ों से प्राप्त कांसे की नर्तकी की मूर्ति सर्वाधिक प्रसिद्व है।

कांसे की नर्तकी की मूर्ति –

1926 ई० में मिली इस मूर्ति की वास्तविक ऊंचाई को लेकर मतभेद विद्यमान है इतिहासकारों के एक वर्ग का मानना है कि यह कांस्य की मूर्ति 10.5 सेमी. तथा दूसरे वर्ग का मानना है कि 14 सेमी. ऊंची थी। इसके शरीर पर वस्त्र नहीं है। इस मूर्ति की विशेषता निम्नवत् है–

(i) दांये हाथ कलाई से कंधे तक चूड़ियों से भरा है तथा नीचे की ओर लटक रहा है।

(ii) बांये हाथ में 3, 4 कंगन है जो कमर पर टिका है।

(iii) उसके घुंघराले बाल पीछे की ओर जूड़े से बंधे है।

(iv) गले में छोटा हार, तथा कमर में मेखला है।

पूरी मूर्ति देखने पर नृत्यरत मूद्रा में लगती है। अपनी मूद्रा की सरलता एवं स्वाभाविकता के कारण यह मूर्ति सबको आश्चर्य चकित करती है। सम्पूर्ण मूर्ति का निर्माण सांचे में ढ़ाल कर एक ही बार में किया गया है। इस प्रक्रिया को **द्रवीमोम विधि** कहा जाता है। आज भी द्रवीमोम विधि से मूर्तियां बनायी जाती है तो सोचा जा सकता है कि लगभग 4500 वर्ष पहले यह सच में क्रांतिकारी विशिष्टता रही होगी। बरहाल मोहनजोदड़ों की नर्तकी की मूर्ति आधुनिक नजारा पेश करती है।

धातु निर्मित कलात्मक मूर्तियों में मोहनजोदड़ो के एच० आर० क्षेत्र से उपलब्ध एक नर्तकी की प्रतिमा जिसकी ऊंचाई 14 सेमी0 है. अत्यन्त मनोहर और विश्वविख्यात है। यह नर्तकी कांस्य मूर्ति निर्वस्त्र है। इस मूर्ति के पैरों में केवल नीचे के खण्डित भाग को छोड़कर शेष भाग पूर्णतः सुरक्षित है। अपने युग में बनी प्रस्तर मूर्ति शिल्प से किंचित पृथक् शैली को अभिव्यंजित करने वाली इस मूर्ति के अंगों में लम्बाई प्रदर्शन का भाव अधिक है। इसकी केशराशि कलात्मक ढंग से संवारने के बाद एक श्रेणी में बांधकर दाहिने कन्धे पर लटकती हुई छोड़ दी गयी है। गले में कण्ठाहार पहने हुए हैं। आभूषणों को छोड़कर मूर्ति बिल्कुल नग्न है। यह मूर्ति अपने कलात्मक सुधार तथा आभूषण सज्जा के लिए विशेष उल्लेखनीय है। इसके किंचित उठे हुए पैरों से नृत्य मुद्रा प्रतिभाषित होती है। नर्तकी के दोनों नेत्र अर्द्धान्मीलित हैं तथा अधरों में किंचित पृथुलता दिखती है। मार्शल के अनुसार इस कांस्य मूर्ति के अंग सौष्ठव को देखने से लगता है कि इसमें किसी आदिवासी युवती के रूपांकन का प्रयास किया गया। है। इसकी शारीरिक गठन की विशेषताओं के आधार पर कुछ ने इसको दक्षिण भारतीय नारी से प्रेरित कला कृति माना है। इसके अतिरिक्त यहाँ कांसे की एक अन्य नर्तकी की मूर्ति भी मिली है, किन्तु यह कलात्मक दृष्टि से उतनी अच्छी नहीं हैं। यहाँ के मूर्तिकार धातुओं के संयोग से मिश्रित धातु बनाने की कला में कुशल थे। मोहनजोदड़ो, चन्हूदड़ो, लोथल, कालीबंगा से कांस्य धातु की मूर्तियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त मूर्तियाँ बन्द साँचे में ढालकर निर्मित की गयी प्रतीत होती है।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य की पशु–मूर्तियों में भैंसा और भेड़ा की मूर्तियाँ, प्राप्त बैलगाड़ी तथा इक्का–गाड़ी उल्लेखनीय हैं। लोथल से प्राप्त ताँबे की बनी हुई बैल, कुत्ता, खरगोश और चिड़ियों की मूर्तियों में से कुत्ते की मूर्ति कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कालीबंगा से प्राप्त ताँबे की वृषभ प्रतिमा अपने–आप में

अद्वितीय और मनोहर है। हड़प्पा कालीन पुरास्थल से ताँबे की कुछ मुहरे प्राप्त हुई हैं, जिन पर वृषभ, गैंडा, गज तथा सिंह, आकृतियाँ उकेरी गयी हैं।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त मोहनजोदड़ों से कुछ अन्य पाषाण निर्मित पशु मूर्तियां मिलती है। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्व श्वेत पाषाण पर निर्मित 10 इंच ऊंची एक संयुक्त पशु मूर्ति है जिसमें शरीर भेड़ का तथा मस्तक सूड़दार हाथी का है सम्भवतः इस मूर्ति का कोई धार्मिक महत्व रहा होगा। सैन्धव मुहरों पर भी इसी प्रकार की संयुक्त पशु आकृतियाँ उत्कीर्ण मिलती है।

3.3.3.3 मृण्मूर्तियॉ

मृण्मूर्तियों का हड़प्पा सभ्यता में महत्वपूर्ण स्थान है। हड़प्पा सभ्यता के अधिकांश पुरास्थलों से मृण्मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें मूलतः पुरुष आकृतियाँ , नारी आकृतियाँ तथा पशु–पक्षियों की आकृतियाँ प्रमुख है। साँचे में डालकर निर्मित की गयी कुछ मूर्तियों के अपवाद को छोड़कर अधिकांश मूर्तियाँ हाथ से निर्मित

हुई है। हड़प्पा की मृण्मूर्तियाँ ठोस है, जबकि पशु–पक्षियों की मूर्तियाँ प्रायः खोखली हैं। यद्यपि पुरुष और नारी दोनों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है, तथापि नारी मूर्तियाँ संख्या में अधिक है। मोहनजोदड़ो के अन्नागार के समीप के उत्खननों में प्राप्त पुरुष मूर्ति महत्वपूर्ण है। इनका शरीर कुछ चपटा है। नासिका लम्बी और उत्तरोत्तर ढालू है। ठुड़ी माँसल है, किन्तु उस पर केश नहीं है। यह धार्मिक आकृति नहीं लगती। परन्तु ”डी” क्षेत्र से प्राप्त सींगवाली आकृति शायद देवता की है।

मोहनजोदड़ी के एच0 आर0 क्षेत्र से प्राप्त पुरुष मृण्मूर्ति को आभूषण पहने दिखाया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि पुरुष भी नारियों की भाँति आभूषण पहनते थे। कालीबंगा से प्राप्त एक मिट्टी का मानव सिर विशेष उल्लेखनीय है। इसमें मादा

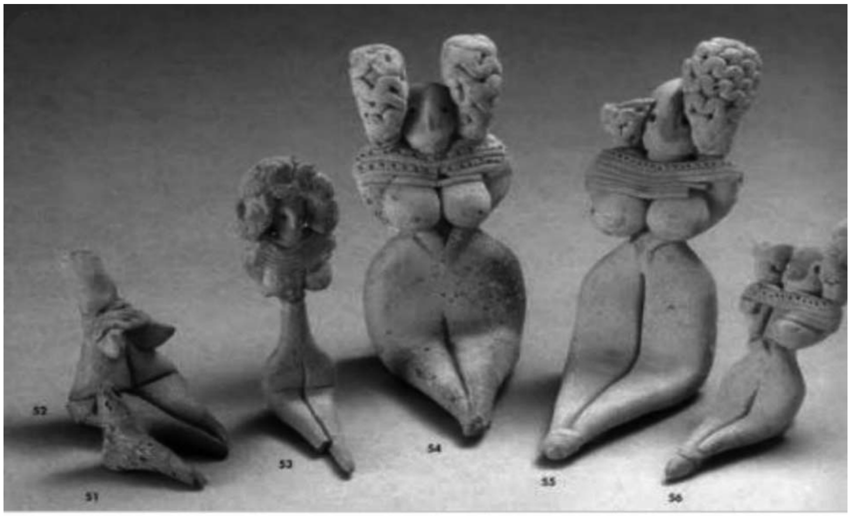

पीछे की ओर ढलुआ, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई तथा ठुड्डी कुछ आगे निकली हुई है। नाक सीधी और नुकीली हैं, नीचे का होठ साधारण से अधिक मोटा है। आँखें बादाम के आकार की है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की मृण्मूर्तियों में दाढ़ी के बाल भी दिखाये गये हैं।

चिपकवां विधि, हड़प्पा सभ्यता में मृण्मूर्ति की निर्माण सामाग्री के रूप में मिट्‌टी का सांचा प्रमुख है। इसके बनाने की विधि है – अंग प्रत्यंग जोड़कर मूर्ति का निर्माण करना, हाथ के अंगूठे यानि चुटकी का इस्तेमाल करके हड़प्पा में मूर्ति का निर्माण होता था। इसे चिपकवां विधि कहते है।

हड़प्पा से प्राप्त विशिष्ट मृण्मूर्तियों के उदाहरण निम्नवत् हैं –

- विवादित गाय मृण्मूर्ति – लोथल से
- विवादित घोड़ा मृण्मूर्ति – लोथल से
- दाढ़ी से यूक्त पुरुष की मृण्मूर्तियाँ – बनावली एवं राखीगढ़ी से

हड़प्पा सभ्यता की मृण्मूर्तियों में पुरूष आकृतियों को श्रृंगयुक्त दिखाया गया है, विभिन्न स्थलों से प्राप्त पुरूष मृण्मूतियाँ साधारण गठन से संचित है। इन्हें गहनों या आभूषण से सजाया गया था। इनके मस्तक पर पंखे के समान फैला हुआ आवरण, कानों में गोलाकार कुण्डल, गले में माला, छाती पर कर्क लड़ियों वाला हार, कमर में मेखला तथा भुजाओं में बाजूबन्द या भुजबन्द प्रदर्शित किए गये है। नारी मृण्मूर्तियों की प्रचुरता से यह अनुमान लगाया गया है कि

सैन्धव लोगों के धार्मिक जीवन में मातृपूजन का विशेष महत्व था। कालान्तर में इसी को भारतीय परम्परा में शक्तिदेवी/मातृदेवी आदि रूपों में मान्यता मिली।

हड़प्पा मोहनजोदड़ो, चन्दहूड़ो, बनावली से मुख्यतः अपरिमित छोटी–छोटी नारी मृण्मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। नारी मूर्तियाँ अपेक्षाकृत सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो नारी आकृतियाँ मिली हैं, उनकी कमर से

घुटनों तक का लम्बा परिधान (स्कर्ट की भाँति) है। तथा निचला भाग नग्न है। हाथ से बनी इन मृण्मूर्तियों के रूप में विविधता मिलती है। इनके अंग–प्रत्यंग आभूषण आदि गीली मिट्टी से हाथ से बनाये गये हैं। चुटकी से दबाकर नाक बनायी गयी है। तृण से चीरकर आँखें तथा मुख बनाये गये हैं। कभी–कभी अलग से मिट्टी चिपकाकर आँखें बनायी गयी हैं। आभूषण ऊपर से मिट्टी चिपकाकर बनाये गये हैं। इन्हें आभूषणों से लादा गया है। आभूषण सज्जा का अनुपम अंश नारी मूर्तियों में की गयी शिरोभूषा है। पंखे के आकार की शिरोभूषा विशेष रूप से दर्शनीय है। पंखानुमा शिरोभूषा के साक्ष्य मेसोपोटामिया से प्राप्त मृण्मूर्ति कला में भी प्राप्य है। बेंजामिन रोलैण्ड प्रभृत विद्वान उक्त भारतीय कला प्रतीकों के अंकन पर मध्य एशियाई प्रभाव स्वीकार करते हैं।

गोद में अथवा दुग्ध पान कराते हुए शिशु का अंकन इन मृण्मूर्तियों में मिलता है, जिससे उनका मातृत्व सूचित होता है। इन मृण्मूर्तियों को बनाने के पश्चात् इन्हें आग में पकाया जाता था। कुछ मृण्मूर्तियों पर लाल रंग के चिह्न मिलते हैं। यह अनुमान लगाया जाना स्वाभाविक है कि इनमें से अनेक मूर्तियाँ

मूलतः लाल रंग से रंगी होंगी। नारियों की इन मृण्मूर्तियों को धर्म अथवा पूजन से सम्बन्धित माना जाता है। संभवतः इतनी अधिक संख्या में निर्मित मूर्तियों के निर्माण के मूल में तत्युगीन मातृदेवी से सम्बन्धित अथवा पूजा महत्ता अन्तर्निहित है। कुछ विद्वान इन्हें महीमाता मातृदेवी की मूर्ति स्वीकारते हैं। कुछ इन्हें संभवतः प्रजनन एवं उर्वरता के अनुष्ठान से सम्बन्धित मातृदेवी की मृण्मूर्तियाँ मानते हैं। मिस्र, मेसोपोटामिया आदि में भी प्राचीनकाल में मातृशक्ति की उपासना काफी लोकप्रिय थी राजस्थान और गुजरात के स्थलों पर नारी मृण्मूर्तियों का अभाव है।

इन पुरूष एवं मातृ देवी की मूर्तियों के आलावा पशुओं की भी मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुयी है इनमें कूबड़दार वृषभ विशेष रूप में पाया गया है अन्य पशुओं में हाथी, गैंडा, बन्दर, बाघ, सुअर, भालू, खरगोश, भेड़, गिलहरी आदि की मृण्मूर्तियाँ मिलती है। हड़प्पा सभ्यता की मिट्टी से निर्मित सामग्री में प्रधानता उन खिलौनों की है, जो पशु–पक्षियों के रूप में उपलब्ध हैं। पशुओं में बैल, भेड़, बकरी, कुत्ता, हाथी, बाघ, सुअर, गैंडा, भालू, बन्दर, खरगोश, आदि की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इनकी संख्या मानव मूर्तियों से कहीं अधिक हैं। इनके लिए प्रयुक्त मिट्टी मानव मूर्तियों के लिये प्रयुक्त मिट्टी की तरह ही है। कॉचली मिट्टी की बनी पशु मूर्तियों की संख्या भी कम नहीं हैं। अल्पसंख्या में पशु–मूर्तियाँ सेलखड़ी, सीप और हड्डी की बनी हैं। डॉ. के.के. थपल्याल का मानना है कि हड़प्पा की पशु मृण्मूर्तियों में, मोहनजोदड़ो की पशु मृण्मूर्तियों से अधिक विविधता मिलती है। मोहनजोदड़ों में छोटे सींग और बिना कूबड़ के वृषभ की मूर्तियाँ सर्वाधिक संख्या में मिली हैं और उसके बाद कूबड़ वाले बैल की वृषभ के बाद मोहनजोदड़ो में मेड़ों की आकृतियाँ सर्वाधिक मिली हैं और फिर गैंडे की गिलहरी, कछुआ, सर्प, घड़ियाल तथा मछली की भी मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। घड़ियाल, कछुआ और मछली की मृणमूर्तियाँ हड़प्पा से मिली हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की मृण्मूर्तियों में गाय की आकृतियाँ नहीं मिलती हैं। एस० आर० राव ने लोथल से दो गाय की मृण्मूर्तियों के मिलने का उल्लेख किया है। रंगपुर और लोथल से घोड़े की मृण्मूर्तियों के मिलने का दावा किया गया है। पक्षियों में मोर, तोता, कबूतर, गौरैया, बत्तख, मुर्गा, चील और उल्लू की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। प्राकृतिक रंगों के अनुरूप चिड़ियों को उपयुक्त रंग में रंगने के भी प्रमाण मिलते हैं।

ठोस पहियों वाली खिलौना गाड़ियाँ, इक्के तथा सीटियाँ भी बनायी जाती थीं, जो बच्चों के खिलौने में आते हैं। हरियाणा के हिसार जनपद में अवस्थित बनावली पुरास्थल से मिट्टी का बना हुआ, हल की आकृति का एक खिलौना प्राप्त हुआ है।

3.3.4 मुहरें

सिंधु सभ्यता में मोहरों का विशिष्ट स्थान है सिंधु सभ्यता के महत्वपूर्ण नगर स्थलों के उत्खनन से मोहरे प्राप्त हुई हैं, इनमें से अधिकांश में चित्र लिपि में लेख, जो साधारणतया तीन से लेकर 8 अक्षरों वाले हैं। साथ ही साथ पशु आकृतियां भी बनी है। कुल प्राप्त मोहरों में 68 मोहरे मोहनजोदड़ो से प्राप्त हुई हैं, 19 हड़प्पा से शेष अन्य स्थलों से कुल मिलाकर 13 मोहरे प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से प्राप्त मोहरों की संख्या लगभग 2000 से अधिक हो गई है। इन मोहरों का निर्माण अधिकतया सेलखड़ी पर किया गया है। इसके अलावा कांचली मिट्टी, गोमेद, चर्ट और मिट्टी की भी बनी मोहरे प्राप्त हुई हैं। लोथल और देशलपुर से तांबे की मुद्राएं भी मिली हैं, जो पीछे छेद होने के कारण ताम्र फलकों से भिन्न है। यह वर्गाकार, चतुर्भुजाकार, बेलनाकार, बटन जैसी, घनाकार और गोल है। मोहनजोदड़ो से कुल पांच बेलनाकार मोहरों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। एक बेलनाकार मुद्रा कालीबंगा से मिली है और एक दैमाबाद से जोर्वे संस्कृति के संदर्भ में मिली है। इस प्रकार की बेलनाकार मुद्राएं सिंधु सभ्यता की समकालीन सभ्यता मेसोपोटामिया में ज्यादा प्रसिद्ध है। बृजवासी लाल का मानना है कि यह मेसोपोटामिया से व्यापार करने वाले सिंधु सभ्यता के व्यापारी की लगती हैं। लोथल से बटन के आकार की गोल मोहर मिली है, जिसके पीछे घुण्डि लगी है। इस तरह की कई मुद्राएं फारस की खाड़ी के समीप के भू–भागों से मिली है और उनकी तिथि सारगोन के कुछ बाद की है।

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा और लोथल से मुद्रां के उदाहरण मिलते हैं। लोथल से 65 मिट्टी की मुद्रा छाप मिला, जिसके पीछे कपड़ा सरकंडे तथा रस्सी के निशान हैं, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह ऐसी मोहर थी, जिनका प्रयोग पत्र/पार्सल इत्यादि वस्तुओं को मोहर बंद करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। यह मुद्रा छाप सिंधु सभ्यता के किसी स्थल से भेजे गए कपड़े में लपेट गथर पर लगाई गई थी। लोथल से एक कपड़े पर एक से अधिक मुद्रा छापे हैं। नूर का मानना है कि ये या तो कई व्यापारियों द्वारा साझा व्यापार करने अथवा माल का निरीक्षण कर एक से अधिक अधिकारियों द्वारा मुद्रा छाप लगाई गई थी।

कालीबंगा की अग्नीबेदिकाओं के संदर्भ में एक ही स्थान पर एक ही तरह के लेख वाली सात मुद्राएं मिली हैं जिनके पीछे ना कपड़ा, ना सरकंडा और ना रस्सी के निशान हैं। इन मुद्राओं के लिए लाल का मानना है कि यह पत्र अथवा पार्सल पर छाप लगाने के लिए नहीं थी बल्कि इनका धार्मिक अनुष्ठान में प्रयोग हुआ था। लाल यह भी मानते हैं कि शिव पशुपतिनाथ के अंकन वाली मुद्रा का भी धार्मिक महत्व ही था। पशुपतिनाथ से संबंध स्थापित की जाने वाली मुद्रा

मोहरों की प्राप्ति मोहनजोदड़ो से हुई है, इस मुद्रा पर एक देवता की आकृति के साथ हाथी, बाघ, गैडा, भैंसा, बैल और हिरण दिखाए गए हैं। इसमें प्रथम चार पशु एक अन्य मुद्रा पर भी अंकित हैं, जिनमें केंद्र में एक बिच्छू भी दिखाया गया है। उर से प्राप्त सिंधु सभ्यता की एक मुद्रा पर भी बिच्छू का अंकन है। एक अन्य मुद्रा में वृक्ष की दो शाखाओं के मध्य एक श्रृंगयुक्त आकृति है। उसके समीप ही एक दूसरी इसी तरह की आकृति इससे प्रार्थना करती हुई प्रतीत होती है, दूसरी आकृति के पीछे एक बकरा और नीचे सात मानव आकृतियां हैं। एक मुद्रा में एक अर्ध मानव और एक अर्द्ध पशु आकृति दो बाघों को अलग–अलग अपने हाथों से गले को पकड़े अंकित है।

कुछ मुद्राओं पर ऐसी भी आकृतियां बनी हैं जिनमें बैल के जैसे सिंग, मनुष्य का चेहरा, गज का सूंड तथा दांत का अग्रभाग, मेष का पृष्ठ भाग, एक श्रृंगी पशु, बकरा तथा छोटे सिंह वाले बैल के सिरों का मिश्रण है। इन मोहरों अथवा मुद्राओं पर सबसे अधिक एक श्रृंगी पशु की आकृति अंकित है। इसके अलावा छोटे सिंह वाले बैल, बैल के आगे नाद, कुबड वाले बैल की, पालतू एवं जंगली भैंसा, व्याघ्र, हाथी, गैडा, खरगोश, हिरण, गरुड़, घड़ियाल तथा सांप इत्यादि का भी अंकन मिलता है। चाहुंदरो से प्राप्त एक मुद्रा पर तीन घड़ियालों का अंकन है तथा दूसरी ओर अभिलेख है। हड़प्पा की एक मुद्रा पर गरुड़ का अंकन उसके फैले पैरों के ऊपर दो सांप दिखाया गया है। सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर पशुओं के चित्रण के अलावा वृक्षों के चित्रण भी मिलते हैं। एक मुद्रा पर पीपल की शाखा के निचले भाग से एक श्रृंगी पशु के दो सिर निकलते दिखाए गए है। मैके कुछ अन्य वृक्षों में बबुल और झांडी के पेड़ की पहचान की है। कुछ मुद्राओं पर प्रतीक चिन्ह के रूप में स्वास्तिक, छोर रहित गांठ अथवा बहू रेखीय क्रास का चिन्ह है। मोहनजोदड़ो की एक मुद्रा पर नाव की आकृति उकेर कर बनाई गई है।

वर्गाकार आकार की मुद्राएं सिंधु सभ्यता के नगरों में ज्यादा लोकप्रिय थी। सेलखड़ी से बनी वर्गाकार मुद्राएं प्राय दो प्रकार की मिलती हैं, छिद्रयुक्त घूंडीदार और बिना घूंडी वाली । घूंडीदार मुद्राओं का आकार 1.27 × 1.27 सेंटीमीटर और 6.86 × 6.86 सेंटीमीटर तक की है। मुद्रा का सबसे प्रचलित आकर 2.8 × 8.8 सेमी है। इस प्रकार की मुद्राओं पर पशु की आकृति के साथ अभिलेख है, जो एक अथवा दो पंक्तियों में लिखा मिलता है। एक मोहर पर तीन सिर वाले पशु को चित्रित किया गया है, जिनमें एक सिर हिरण का, मुख्य शरीर एक श्रृंगी पशु का और तीसरा सिर भेडा का है। यह आकृतियां सिंधु निवासियों की कलात्मक प्रतिभा को रूपांयित करती हैं।

3.4 सारांश

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हड़प्पा सभ्यता की वास्तुकला उच्चकोटि की थी। जब हम इन भवनो की बनावट को समय तथा समकालीन सभ्यताओं के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तथा आर्य सभ्यता से इसकी तुलना करते है

तो वास्तव में यह आश्चर्यजनक ही लगता है कि उस समय जब तकनीकि का इतना विकास नहीं हुआ था तो भी इतनी विकसित व सुव्यवस्थित रूप से नगरों का निर्माण किया जाता था। सिंधु सभ्यता के वास्तु स्थापत्यिक अवशेषों में भवनों के साथ–साथ स्नानागार, अन्नागार, बंदरगाह, स्टेडियम, पुरोहित आवास कुआं इत्यादि प्राप्त हुए हैं, जिनका सार्वजनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान था।

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. अग्रवाल, डी0पी0 .1984. *द आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डिया.* सेलेक्ट बुक सर्विस सिन्डीकेटः नई दिल्ली।
2. थपल्याल, के. के. एवं संकटा प्रसाद शुक्ल. 2011. *सिन्धु सभ्यता.* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ।
3. सदार, श्री. पु. 2018. *सिन्धु घाटी सभ्यता का इतिहास.* सम्यक प्रकाशन।
4. जैन, वी0के0 .2006. *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डियाः एन अप्रेजल.* डी0के0 प्रिन्टवर्ल्डः न्यू दिल्ली।
5. अग्रवाल,वासुदेव शरण **.** 1966**.** *भारतीय कला* **.**वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
6. उपाध्याय, वासुदेव**.** 1972**.***प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर***.** पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
7. उपाध्याय, वासुदेव**.** 1970**.***प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान***.** (प्रथम संस्करण)**.** वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
8. कनिंघम, अलेक्जेंडर**.** 1972**.***ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया***.** दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3**.**
9. गुप्ता, परमेश्वरीलाल**.** 1965**.***पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज***.** पटना।

3.6 बोधप्रश्न

प्रश्न 1 हड़प्पा सभ्यता के नगर विन्यास की चारित्रिक विशेषताओं की विवेचना करें।

प्रश्न 2 सिन्धु सभ्यता की मूर्तिकला पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3 सिंधु सभ्यता के सार्वजनिक महत्व के भवनों या स्थापत्य की विवेचना कीजिए।

प्रश्न –4 सिंधु सभ्यता के प्रशासनिक महत्व के भवन के स्थापत्य की विवेचना कीजिए।

इकाई—4 : मौर्य एवं शुंग कालीन कला—वास्तुकला, लोककला, मूर्तिकला, स्तम्भ एवं स्तूप—भरहुत, साँची एवं अमरावती

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मौर्य एवं शुंग कालीन कला

4.4 लोककला

4.5 वास्तुकला

4.6 मूर्तिकला

4.7 स्तम्भ

4.8 स्तूप

4.8.1 भरहुत

4.8.2 साँची

4.8.3 अमरावती

4.9 सारांश

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.11 बोधप्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय कला में मौर्यकालीन कला का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में लोककला के साथ—साथ वास्तुकला और मूर्तिकला का भी विकास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यदि लोककला की बात करें तो यक्ष—यक्षिणी और नाग—नागिन की मूर्तियाँ बन रही होती है। वास्तुकला के क्षेत्र में कुम्रहार पटना से मौर्यकालीन महल का साक्ष्य प्राप्त हुआ है और इसी क्रम में अशोक के काल तक आते—आते स्तंभों को लगाने की प्रक्रिया के साथ—साथ स्तूपों को बनाने का क्रम भी दिखाई देता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

- वास्तुकला एवं मूर्तिकला के अर्थ को।
- मौर्य एवं शुंग कालीन कला के बारे में।
- मौर्य कालीन लोककला को।
- स्तम्भ एवं स्तूप वास्तु के बारे में।

4.3 मौर्य एवं शुंग कालीन कला

मौर्य कालीन कला की परिपक्वता अर्थात यह कहे कि स्तूप वास्तुकला में परिपक्वता शुंगकालीन कला में दिखाई देती है। शुंग काल में स्तूपों में परिवर्धन का काम महत्वपूर्ण था। शुंग काल का मूर्तिकला और वास्तुकला के क्षेत्र में अग्रणी स्थान था। शुंग काल में मुख्यतः अशोक के द्वारा बनाए गए स्तूपों का परिवर्धन और संवर्धन कराया जाता है। इस क्रम में शुंग कालीन कलाकारों द्वारा स्तूपों को पत्थरों से ढकने का क्रम दिखाई देता है तथा साथ ही साथ जातक कथाओं से संबंधित दृश्यों को भी दर्शाने का कार्य किया जाता है।

4.4 लोक कला

सैन्धव सभ्यता के युग से ही मूर्तिकला जनसाधारण में लोकप्रिय रही है। हड़प्पा की मृण मूर्तियाँ लोक मूर्तिकला के रूप में ही प्रचलित थी। लोक कला के रूप में जनसमुदाय में व्याप्त मूर्तिकला मौर्य काल में पाषाण उपादान से स्थिरता को प्राप्त हुई। इस युग की निर्मित स्त्री–पुरुष की अनेक स्थुलकाय प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं, जिनके सम्बन्ध में प्रारंभ में अनेक भ्रान्तियाँ थी। परखम से एक विशाल पाषाण प्रतिमा प्राप्त हुई थी, जिसे के.पी. जायसवाल ने कुणिक अजातशत्रु की प्रतिमा माना था। पटना से प्राप्त ऐसी ही प्रतिमाओं को उन्होंने उदासिन नन्द तथा नन्दिन की प्रतिमा बताया था। आर.पी. चन्दा ने सर्वप्रथम इन भ्रांतियों का निवारण किया। मथुरा से प्राप्त एक स्थूलकाय स्त्री मूर्ति जो यक्षी लेख से युक्त है 'मनसा देवी' के नाम से पूजित है। परखम से प्राप्त प्रतिमा की पहचान लेख के आधार पर मणिभद्र यक्ष से की गई। पटना की प्रतिमाओं को भी लेख के आधार पर सर्वानन्दी एवं अक्षयनीविक यक्षों की प्रतिमा बताया गया है। आर.पी. चन्दा का मत है कि ये प्रतिमाएं शैशुनागनन्द शासकों की नही वरन् लोक देवी–देवता के रूप में पूज्य यक्ष–यक्षिणियों की है। अधिकांश प्रतिमाएं मौर्य युगीन

हैं तथा इन्हें मौर्य लोक कला की निधि कहा जा सकता है। यक्ष–यक्षिणियों की प्रतिमाएं मथुरा से उड़ीसा तक, वाराणसी से विदिशा तक तथा पाटलिपुत्र से शूरपारक तक लगभग सम्पूर्ण उत्तर मध्य भारत से प्राप्त है। इनमें विशेष उल्लेखनीय है –

1. मथुरा में परखम ग्राम से मणिभद्र यक्ष, बरोदा ग्राम से एक यक्ष की प्रतिमा।
2. भरतपुर में नोह ग्राम से प्राप्त एक यक्ष।
3. बेसनगर से प्राप्त यक्षी जो सम्प्रति कलकता संग्रहालयमें सुरक्षित है तथा तेलिन यक्षी, विदिशा, पकाच्या (म.प्र.),
4. प्रतापगढ़, भीटा, राजघाट से प्राप्त यक्ष प्रतिमाएँ।
5. पलवल, आमीन (हरियाणा)
6. सोपारा, पीतल खोरा (महाराष्ट्र)
7. ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित समीपवर्ती पवाया ग्राम से उपलब्ध यक्ष।
8. पटना में दीदारगंज की चामरधारी यक्षी तथा दो अन्य यक्ष प्रतिमाएँ
9. वाराणसी का त्रिमुख यक्ष
10. उड़ीसा में शिशुपालगढ़ का यक्ष। (दुमदुमा),
11. अमरावती (आन्ध्र प्रदेश)

इन यक्ष प्रतिमाओं के काल निर्धारण में भी मतैक्य नहीं है। पटना की दोनों यक्ष प्रतिमाओं में रूप, आकार, अवधारणा, निरुपण, वेश–भूषा एवं आभूषण में समानता है। इसके कन्धों पर पड़े दुपट्टे पर ब्राह्मी लिपि की पंक्ति उत्तीर्ण है जो लिपिगत विशेषताओं के आधार पर प्रथमईस्वी के लगभग की प्रतीत होती हैं किन्तु पॉलिश के आधार पर इन्हें मौर्ययुगीन माना गया है। निहार रंजन रे ने प्रतिमाओं के भारीपन, ठोसपन, आयतन, एक ओर हस्त, वक्ष एवं उदर का गोलापन, पीठ में तनाव आदि के आधार पर इन्हें मथुरा की बोधिसत्व प्रतिमाओं के समीप माना है। इनके शरीर से चिपके पारदर्शी वस्त्र कुषाण कला की विशिष्टताओं से ओत–प्रोत हैं।

मूर्तिकला की दृष्टि से दीदारगंज की चामरधारी यक्षी मौर्य लोककला का श्रेष्ठतम उदाहरण है। इस परिष्कृत मूर्ति में उस स्त्री–सौन्दर्य का निरूपण किया गया है, जिसमें वह गजगामिनी, पीन पयोधर एवं स्थूल नितम्ब धारिणी

है। यक्षिणी के उर्ध्व भाग में सहज हल्कापन एवं कोमलता है। अपने भारी उन्नत उरोज से वह कुछ आगे झुकी है। दोनों स्तनों के मध्य हार मन्त्रमुग्ध सा स्थिर है। नितम्ब की विशालता से एड़ी दबी है। कदली वृक्ष की भाँति पैर शरीर के अन्य अंगों से शोभायमान हो रहे हैं। शरीर पर रत्नजटित आभूषण कमनीयता में वृद्धि कर रहे हैं। क्षीण कटि से शरीर गतिमान है। उदर, कपोल एवं आँखों के समीप प्रकट मांस संवेदनशील है। वस्त्र एवं निर्माण शैली अन्य यक्षों की ही भाँति है किन्तु सौन्दर्य का जो आदर्श दीदारगंज की यक्षिणी में प्राप्त होता है, वही गुप्त काल में कालिदास ने मेघदूत की यक्षिणी में आरोपित किया है।

दीदारगंज की चामरधारी यक्षी

यद्यपि मौर्य लोक कला के अन्तर्गत यक्ष–यक्षिणी के अतिरिक्त प्रकृति के विभिन्न रूपों को भी स्थान मिला किन्तु प्रधानता यक्ष–यक्षी की ही रही। यक्ष–यक्षी की इन प्रतिमाओं की विशेषताओं पर निम्नवत् प्रकाश डाला जा सकता है –

1. यक्ष–यक्षिणी शक्ति एवं ऐश्वर्य के देवता के रूप में उपास्थ थे, इसीलिए इन्हें महाकाय बनाया गया है, जिनकी मांसपेशियों एवं शारीरिक दृढ़ता से शक्ति का प्रस्फुरण होता है।
2. यद्यपि ये प्रतिमाएँ चर्तुमुखदर्शन के सिद्धान्त पर तराशी गई है किन्तु कलाकार ने सम्मुख दर्शन पर ही अधिक बल दिया है।
3. सिर पर उष्णीशय; कन्धों तथा भुजाओं पर उत्तरीय जो वक्ष पर आबद्ध है, नीचे धोती तथा उदरबन्ध या मेखला विशुद्ध भारतीय वेशभूषा के परिचायक हैं।
4. कर्ण–कुण्डल, गले में हार, वक्ष पर लॉकेट तथा बाहुओं पर बाजूबन्द इत्यादि आभूषण परम्परागत रूप में उत्कीर्णहैं।

5. वस्त्र शरीर से भीगे वस्त्रों की भाँति चिपके हैं। धारियॉ अस्पष्ट हैं किन्तु गाँठ दृश्यमान है।
6. इनका रुप कठोर तथा शैली अपरिपक्व है किन्तु आभूषण एवं वेशभूषा इनमें प्राणों का संचार कर रहे हैं।

यक्ष प्रतिमाओं से सम्बद्ध मुख्य प्रश्न है – इनकी विकासमान सांस्कृतिक अवधारणा, इनकी पहचान, तिथि एवं लक्षण। वैदिक युग में यक्ष एक रहस्यमय प्रथमज, स्वयंभू, सर्वशक्तिमान ब्रह्म शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कालांतर में परिवर्तन की प्रक्रिया में इनकी स्थापना निसर्ग के अनुरागी, अतिमानवीय शक्ति के रूप में हुई। धीरे–धीरे इन्हीं यक्षों की लोक स्वीकृति होने से वेदों में वर्णित महानतम यक्ष कालांतर में राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर आदि शुद्ध देवताओं से कोटि में समाहित हो गए। मनोवांक्षित फल देने में समर्थ, विनाशकारी या कल्याणकारी स्वभाव वाले यक्ष के बलिष्ठ, भयावह तथा अतिमानवीय रूप की तुलना में सौंदर्य शालिनी यक्षिणियाँ अपने रूप लावण्य के आकर्षण सहित जनमानस में मोहिनी लोक देवियों के रूप में स्वीकृत हुई। उर्वरता इनकी विशिष्टता थी। प्राचीन साहित्य इनके विवरणों से परिपूर्ण है किन्तु इनकी प्रतिमाओं के निर्माण का शुभारंभ मौर्य काल में हुआ, जिसने मूर्तिकला के क्षेत्र में परम्परा का रूप ले लिया।

शोध द्वारा यक्ष प्रतिमाओं की प्रस्तावित तिथियों में भी संशोधन हुआ। यक्ष मूर्तियों के विकास का प्रारंभिक युग लगभग तीसरी सदी ई० पू० से दूसरी सदी तक निर्धारित हुआ। पटना संग्रहालय में सुरक्षित दीदारगंज की यक्षिणी संभवतः हारीति है, जिसकी कथा संयुक्तनिकाय में है। कथा के अनुसार राजगृह के गोपालक की 'अभिरति' नामक गर्भवती पत्नी को एक उत्सव में नृत्य करने हेतु विवश होना पड़ा, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। यक्षिणी के रूप में पुनर्जन्म लेकर उसने राजगृह के शिशुओं को मारकर अपना बदला लेना शुरू किया। अंततः बुद्ध ने उसे शांत किया तथा शिशुओं की संरक्षिका देवी के रूप में स्थापित किया। यह कथा बुद्ध द्वारा लोक धर्म के परिष्कार एवं ग्रहण करने का प्रमाण है। मूर्ति में यक्षिणी को चौवरधारी सेविका में प्रस्तुत करना भी इसी विचार को पुष्ट करता है। हाथ में चौरी लिए, सिर पर मणिबंध सहित सुगठित

केशराशि, कान, गर्दन, कलाई, भुजा, कमर और पैरों में अनुकूल आभूषण पहने इस प्रतिमा का सौदर्य कालिदास की यक्षिणी – ''श्रोणीभारादल–सगमना स्तोकनम्रास्तनभ्यां '' को मूर्तिमान करता हुआ प्रतीत होता है। पृष्ठ –भाग की अपेक्षा मूर्ति का सामने का भाग अधिक मोहक है। आभूषणों में ग्रीवा की मणिमाला तथा स्तनहार, कटि मेखला तथा पैरों के कटक प्रभावशाली है। हारीति की इस प्रतिमा के साथ शिशुओं का अंकन नहीं है क्योंकि शिशुओं के साथ हारीति की प्रतिमा का प्रचलन कुषाण काल से प्रारंभ होता है, जबकि यह प्रतिमा इससे काफी पहले की है।

4.5 मौर्यकालीन राजप्रसाद

स्तूप एवं स्तम्भ मौर्य कालीन स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करते है, जिनके निर्माण में सम्राट अशोक का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, ये बौद्ध वास्तुकला के अन्तर्गत आता है। मौर्य कालीन स्थापत्य की राजधानी पाटिलपुत्र में स्थित चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रसाद तथा उसका दुर्गीकरण है। जिसकी चर्चा कौटिल्य के **अर्थशास्त्र एवं मेगस्थनीज की इण्डिका** में

है। पाटिलिपुत्र गंगा एवं सोन नदी एवं संगम तट पर स्थित है। इसके चारो ओर 700 फिट चौड़ी खाँई का उल्लेख मिलता है, इसको लकड़ी की दीवार से घेरा गया था। मेगस्थनीज के अनुसार पाटिलीपुत्र में चन्द्रगुप्त मौर्य का महल समकालीन **'सूसा'** साम्राज्य के प्रासाद को भी मात देता है। मौर्य काल के विशाल नगरो के काष्ठ निर्मित होने का मुख्य कारण गंगा के मैदान के करीब पाषाण का अभाव तथा काष्ठ की अधिकता थी। वर्तमान में 80 स्तम्भयुक्त चन्द्रगुप्त के महल का पूरातात्विक अवशेष पटना के 'कुम्हरार' नामक जगह पर प्राप्त हुआ हैं।

4.6 स्तम्भ

मौर्य काल के सर्वोत्कृष्ट नमूने अशोक के एकास्मक स्तम्भ है, जो उसमें धम्मप्रचार के लिए देश के विभिन्न भागों में स्थापित किए गये थे। ये स्तम्भ चुनार के लाल बलुआ पत्थर से बने है। इन स्तम्भों पर एक खास तरह की

पॉलिश की गयी है जिसे **'ओप'** कहते है। इससे इनकी चमक धातु जैसी हो गयी किन्तु पॉलिश की यह कला समय के साथ लुप्त हो गयी।

स्तम्भ

बृहद स्तम्भ

i. दिल्ली – टोपरा
ii. लौरिया – नन्दनगढ़
iii. लौरिया – अरेराज
iv. रामपुरवा
v. दिल्ली – मेरठ
vi. प्रयाग स्तम्भ

लघु स्तम्भ

i. साँची –रायसेन जिला, म.प्र.
ii. सारनाथ – वाराणसी
iii. कौशाम्बी – इलाहाबाद, उ.प्र.
iv. रूम्मिनदेई – नेपाल की तराई
v. निग्लीवा – नेपाल की निगाली सागर तट पर

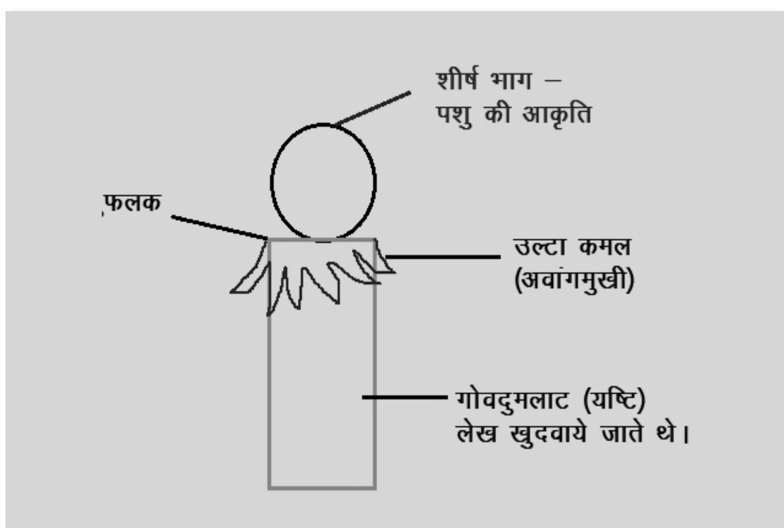

इन स्तम्भों की ऊचाँई 35–50 फुट तक तथा वजन 50 टन तक है। ये एक ही शिला पर रखकर बनाये गये है। जिसमें कोई जोड़ नहीं हैं, ये स्तम्भ आधार की तरफ मोटे तथा ऊपर की तरफ क्रमशः पतले होते गये हैं। स्तम्भ के मुख भाग को 'लाट' कहते है एवं ऊपर हिस्से को शीर्ष कहते हैं। मौर्य कालीन स्तम्भ में लाट के शीर्ष पर इकहरी या दोहरी मेखला होती हैं। मेखला के ऊपर की आकृति उल्टे खिले कमल की तरह बनायी गई थी। उसके ऊपर चौकी नुमा स्वरूप बनाकर उसपर पशुओं की आकृति बनाई जाती थी।

4.7 मौर्य कालीन महत्वपूर्ण स्तम्भ

सारनाथ स्तम्भ

सारनाथ स्तम्भ

सारनाथ स्तम्भ उत्तरप्रदेश के वाराणसी जिले में स्थित है। सारनाथ का अशोक स्तम्भ मौर्य कालीन स्तम्भ कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके मुख पर 4 सिंह है, जो एक–दूसरे की ओर पीठ किए हुए है। इसके नीचे घण्टे के आकार का पद्म के ऊपर चित्र–बल्लरी में एक हाथी, चौकड़ी भरता हुआ एक घोड़ा, एक साँड़ तथा एक सिंह की उभरी हुई आकृतियाँ है। इनके बीच–2 में चक्र बने हुए है। एक ही पत्थर को काटकर बनाए गए। इस सिंह स्तम्भ के ऊपर धर्म चक्र रखा हुआ है। भारत सरकार ने यह चिन्ह 26 जनवरी 1950 को अपनाया इसमें केवल तीन सिंह दिखायी देते है, चौथा दिखाई नहीं देता। पट्टी के मध्य में उभरी हुयी नक्काशी में चक्र है। जिसके दाँयी ओर एक साँड तथा बाँयी ओर एक घोड़ा है। दाएँ व बाएँ कोने पर अन्य चक्रो के किनारे है। आधार का पद्म छोड़ दिया गया है। फलक के नीचे मुण्डकोपनिषद से लिया गया 'सत्यमेव जयते' देवनागिरी लिपि में अंकित है, जिसका अर्थ है सत्य की विजय होती है।

लौरिया नन्दनगढ़ का स्तम्भ :–

यह स्तम्भ बिहार के चम्पारण जिले में स्थित है। अब तक के प्राप्त सभी स्तम्भों में सर्वाधिक सुन्दर स्तम्भ है। इसके शीर्ष पर सिंह की प्रतिमा है। आसन के चारों तरफ हंस की पंक्ति उत्कीर्ण है।

रामपुरवा का स्तम्भ :–

यह स्तम्भ भी बिहार के चम्पारण जिले में स्थित है। लौरिया नन्दनगढ़ के समीप रामपुरवा में भी अशोक शिला स्तम्भ में पशु प्रतिमा व स्तम्भ से संयुक्त शीर्ष भाग उपलब्ध हुए है। अशोक के समय में निर्मित धर्म स्तम्भों पर वृषभ की आकृति उत्कीर्ण है।

दिल्ली–टोपरा स्तम्भ :–

यह स्तम्भ पहले उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के टोपरा नामक स्थान पर स्थित था लेकिन बाद में फिरोजशाह तुगलक द्वारा इसे दिल्ली में स्थापित कराया गया। यह फिरोजशाह की 'लाट' के नाम से प्रसिद्ध है। अब यह दिल्ली दरवाजे पर फिरोजाशाह कोटला नाम से प्रसिद्ध है।

दिल्ली–मेरठ स्तम्भ :–

इसे भी फिरोजगाह तुगलग द्वारा मेरठ से दिल्ली लाया गया। 1713 से 1719 ई. में बादशाह फरूखसियर के बारूद खाने में आग लग जाने के कारण

यह स्तम्भ गिरकर ध्वस्त हो गया था किन्तु बाद में इसी ध्वस्त स्तम्भ को पुनः प्रतिस्थापित किया गया।

लौरिया–अरराज स्तम्भ :–

यह बिहार के चम्पारण जिले में राभिया ग्राम से 2.5 मील दूर दक्षिण–पूर्व में अरराज महादेव के मन्दिर के निकट लौरिया में खड़ा है। इस पर अशोक के लेख उत्कीर्ण है।

प्रयाग स्तम्भ :–

यह स्तम्भ इलाहाबाद के कौशाम्बी में स्थित था। बाद में इसे अकबर द्वारा गंगा–यमुना नदी के संगम पर बने किले में स्थापित कराया गया। इसपर अशोक के दो लेख उत्कीर्ण है तथा समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति भी इस पर लिखी हुई है।

रूम्मिनदेई स्तम्भ :–

नेपाल के रूम्मिनदेई नामक स्थान पर अशोक का एक प्राचीन स्तम्भ मिला है। यहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, ऐसा लिखा हुआ है। इस प्रकार बुद्ध के जन्म स्थान के निर्णय में यह अभिलेख काफी महत्वपूर्ण है। रूम्भिनदेई स्तम्भ के उत्तर–पश्चिम में 13 मील दूर निग्लिवा झील के समीप नीग्लिवा ग्राम में यह स्तम्भ खड़ा है। इस पर उत्कीर्ण लेख में अशोक द्वारा कनकमुनी बुद्ध के स्तूप की मरम्मत कराने का संकेत मिलता हैं।

4.8 अन्तर

सर जॉन मार्शल, पर्शीब्राउन जैसे विद्वान इसे ईरानी स्तम्भों की प्रतिकृति मानते है।

अशोक के स्तम्भ	**अक्खामनी साम्राज्य के स्तम्भ (ईरानी / फारसी)**
1. अशोक के स्तम्भ एकास्मक अर्थात् एक ही पत्थर को तराशकर बनाये गये है।	1. ईरानी स्तम्भों को कई मण्डलाकार टुकड़ों से जोड़कर बनाया गया है।
2. अशोक के स्तम्भ स्वतन्त्र जगहों पर लगाए गये है।	2. ईरानी स्तम्भ शासकीय भवनों में ही लगाये गये है।

3. अशोक के स्तम्भों के शीर्ष पर पशुओं की आकृतियां बनी है।	3. ईरानी स्तम्भों पर मानव आकृतियां बनी है।
4. अशोक के स्तम्भ नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः पतले होते गये है।	4. ईरानी स्तम्भों की चौड़ाई नीचे से ऊपर तक एक जैसी ही है।
5. अशोक के स्तम्भ बिना चौकी या आधार के भूमि पर टिकाया गया है।	5. ईरानी स्तम्भों कों चौकी पर टिकाया गया है।
6. अशोक के स्तम्भों के शीर्ष पर लगी पशुओं की मूर्तियों का एक विशेष प्रतिकात्मक अर्थ हैं, जिसकी समूचित व्याख्या भारतीय सम्बन्ध से ही सम्भव है।	6. ईरानी स्तम्भ के शीर्ष में कोई प्रतिकात्मकता नहीं है।
7. अशोक के स्तम्भ सपाट है।	7. ईरानी के स्तम्भ गड़ारीदार है

इस प्रकार अशोक स्तम्भों को ईरानी स्तम्भों की नकल नहीं कह सकते उल्लेखनीय है कि हमारे देश में अशोक के समय से पूर्व ही स्तम्भ निर्माण की कला विद्यमान थी।

दूसरा विचारणीय प्रश्न चमकदार पॉलिश ओप को लेकर है। स्पूनर का विचार है कि यह भी ईरान से ही भारतीयों ने सीखा था। इस सन्दर्भ में वासुदेवशरण अग्रवाल ने अनेक तर्क दिए है जो ओप को भारतीय कला की विशेषता बताते है जैसे –

- वासुदेवशरण अग्रवाल ने ऑपस्तम्भ सूत्र में मृदभाण्डों को चमकीला बनाने की विधि के लिए 'शलक्षणीकरण शब्द' खोजा है जो ओपदार पॉलिश की प्राचीनता का सूचक है।
- पिपरहवां बौद्ध स्तूप, पटना की यक्ष प्रतिमायें, लौहानीपुर से प्राप्त जैन तीर्थकरों के धड़ आदि सभी में चमकीली पॉलिश लगवायी गयी है। यह पॉलिश राजगीर के समीप स्थित, सोनभुदा गुफा में दिखायी देती है, जो मौर्य काल से पहले की है। इन साक्ष्यों के आधार पर यह साबित होता है कि पत्थरों को चमकाने का ज्ञान ईरानियों से लेने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। अतः मौर्यकालीन

पॉलिश पूर्णतयाः भारतीय है किन्तु इसकी निरन्तरता आगे नही रह सकी यह दुःखद है।

4.9 शुंग युगीन मूर्तिकला

प्राचीन भारतीय स्थापत्य व कला का विधिवत अन्वेषण 19वीं शताब्दी में शुरू हुआ, जिसमें कला मर्मज्ञ आनंद कुमार स्वामी तथा स्टेला क्रैमरिश जैसे विद्वानों ने भारतीय कला के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया।

मौर्य कला में कला संबंधी गतिविधियों का संचालन राज्य द्वारा किया जाता था, इसलिए मौर्य कला को राजकीय कला कहा जाता है। मौर्योत्तर काल में कला इस अवधारणा को नकारती है क्योंकि इस काल में कला को समाज के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त था। मौर्योत्तर काल में धार्मिक गतिविधियों के बढ़ते संस्थानीकरण तथा उसे समाज के विभिन्न तत्वों द्वारा प्राप्त संरक्षण के आधार पर इस काल की कला दरबारी पृष्ठ पोषण पर आश्रित ना रहकर लौकिक जीवन यात्रा से संबंधित हो गई। शुंग कला समकालीन भारतीय जीवन तथा जीवन के प्रति दृ ष्टिकोण के विवेचन में पूर्ण सक्षम है। यह आदर्शवाद नहीं वरन यथार्थवाद पर आधारित है। अशोक ने जिस उत्सव एवं समाज का विवेचन किया था, जिसे उसने कर्मकांड पूर्ण कहकर उसके स्थान पर धम्म उत्सव का प्रचार किया था। वह उत्सव एवं सम्मेलन आगे चलकर शुंग कला का एक अभिन्न अंग बना। इस कला में नृत्य गीत एवं मादक उन्मत्त आह्लाद का सजीव चित्रण हुआ। इस प्रकार के चित्रण का शुभारंभ महात्मा बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनाओं से शुरू हुआ, जिसकी परिणति पौराणिक कथाओं में प्राप्त होती है। बौद्ध एवं ब्राह्मण ग्रंथों में स्वर्गीय अप्सरा द्वारा मुनियों के ध्यान को भंग करने के विवरण प्राप्त होते हैं, जिसका शुंग काल के कलाकारों द्वारा सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया। इस काल में भव्य तथा स्थाई धार्मिक संरचना के निर्माण की प्रथा का सूत्रपात हुआ। स्थापत्य तथा कलात्मक अभिव्यक्तियों का स्वरूप मुख्यतया धार्मिक था। शुंगकालीन कला में लौकिक जीवन से संबंधित धार्मिक स्थापत्य में भी ब्राह्मणी मंदिरों के संपूर्ण उदाहरण कम ही मिलते हैं। इस काल में अधिकांश उदाहरण स्तूप, चैत्य तथा विहार के हैं, जो प्रधानता बौद्ध धर्म से संबंधित है हालांकि स्तूपो के साथ जैन धर्म का भी संबंध रहा है। मौर्योत्तर काल को बौद्ध स्थापत्य विस्तारीकरण का काल कहा जा सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

4.10 शुंग कालीन मूर्तिकला में प्रतीक

समकालीन मूर्तियों में प्रतीकात्मकता इस काल की प्रमुख विशेषता रही है। बौद्ध धर्म का भारत के विभिन्न भागों में तेजी से प्रसार हो रहा था, जिसमें जातक कथाओं का मूर्तिकला के रूप में प्रदर्शन अत्यधिक सहायक हुआ। इसीलिए संभवत बौद्ध मूर्तियों को इस कला में स्थान दिया गया। जातक कथाओं में भगवान बुद्ध का नाम बार–बार आता है परंतु मूर्तिकला में जातक कथाओं का निर्माण एवं उसमें भगवान बुद्ध का प्रदर्शन समकालीन कलाकारों के समक्ष एक विशेष समस्या थी क्योंकि भगवान बुद्ध को उस समय हीनयान प्रथा में इतना पवित्र माना जाता था कि उनको मानव रूप में दिखाना अनुचित था इसलिए तत्कालीन कला में भगवान बुद्ध को विभिन्न प्रतीकों की सहायता से दिखाया गया, जिसमें उनके संपर्क में आने वाली वस्तु मुख्य अतिथि जैसे बोधि वृक्ष, चरण पादुका, पद्मासन इत्यादि प्रतीक को शुंग कालीन मूर्तिकला में प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त वैदिक यज्ञ में प्रयुक्त प्रतीकों उपनिषदों के प्रतीक जैसे श्री लक्ष्मी, धर्म चक्र, त्रिरत्न, कल्पवृक्ष, मकर कच्छप, यक्ष–यक्षिणी, नाग–नागिन, वृक्ष तथा विभिन्न पशु इत्यादि के साथ–साथ देव प्रसाद, पुष्प मालाएं, कल्पलता, सरोवर रत्न मालाएं आदि अभिप्राय भी शुंग कालीन मूर्तियों में उकेरे गए, जो उस काल की धार्मिक मान्यताओं के सूचक हैं। पशु आकृतियों का भी शुंग कला में धार्मिक प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है, जिसमें सिंह, गज, मृग, अश्व, गौ इत्यादि के साथ पशुपति भी है।

4.11 शुंग कालीन मूर्तियों की तकनीक एवं लक्षण

शुंग कालीन कलाकारों ने मूर्ति निर्माण के दृष्टिकोण से मौर्यों से पृथक तकनीकि का अनुगमन किया। इस युग की मूर्तियां सम्मुख दर्शन में सफल होने के कारण अपनी पूर्ववर्ती मौर्य कला की चतुर दर्शन अथवा त्रिदिशात्मक दर्शन से स्पष्टतः भिन्न हैं। भित्ति पर यह मूर्तियां इतना कम उभरी है कि जैसे पाषाण खंड पर छेनी या छुरी से रेखाएं खींची गई हो, जिन्हें दर्शक सूक्ष्मता से ही देख सकता है। कला में प्राकृतिक सहजता है, दृश्यों के अंकन में आडंबर का अभाव है। स्त्री–पुरुष मूर्तियों में आदिवासियों की सरलता प्राप्त होती है, जो प्रकृति से ओतप्रोत है। वृक्ष, पशु एवं पक्षी भी स्वाभाविक मुद्राओं में चित्रित हैं। यह स्वयं कोई भाव व्यक्त ना करते हुए भी दर्शक को भाव विभोर होने के लिए प्रेरित करते हैं। संपूर्ण शुंग कला बौद्ध धर्म से संबंधित तथ्यों से अंकित है किंतु कहीं भी इसमें महात्मा बुद्ध की मूर्ति नहीं है। इसके स्थान पर उनसे संबंधित प्रतीकों का इस्तेमाल किया गया है जैसे वज्रासन चरण चिन्ह, चक्र, स्तूप, बोधि वृक्ष, गज इत्यादि। चंद्र सुदर्शना यक्षिणी की मूर्तियों के अंकन में एक दिव्य शांति, अनासक्त भाव, नैसर्गिक

पवित्रता, गंभीरता प्राप्त होती है, जिससे मूर्तिकला में एक सहज आकर्षण उत्पन्न होता है। समकालीन मूर्तियां जनजीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं जैसे लोगों की घर देवताओं की मूर्तियां, साधुओं के आश्रम, परिवहन के साधन, वेशभूषा, शस्त्र,आभूषण इत्यादि। डॉ कुमारस्वामी की अवधारणा है कि इन चित्रों का प्रधान केंद्र बिंदु ना तो आध्यात्मिक है और ना ही आचारवादी बल्कि यह संपूर्ण मानव जीवन से संबंधित हैं।

4.12 स्तूप

शुंग नरेशों का शासन काल, कला व स्थापत्य की उन्नति के लिए विख्यात है शुंग कला धर्म के बजाय लौकिक जीवन में अधिक संबंधित है इसका प्रधान विषय आध्यात्मिक है। यह नैतिक ना होकर पूर्णतया मानव जीवन से संबंधित है। इस कला के उत्कृष्ट नमूने भरहुत, सांची मथुरा, बेसनगर तथा बोधगया से प्राप्त होते हैं। शुंग कला के सर्वोत्तम स्मारक स्तूप है।

स्तूप की संरचना

वस्तूतः स्तूप का अर्थ किसी वस्तु का ढेर अंबार अथवा मिट्टी का चबूतरा या एक के ऊपर एक संचित पत्थरों का टीला है। स्तूप का विकास संभवत मिट्टी के ऐसे चबूतरे से हुआ, जिसका निर्माण मृतक की चीता के ऊपर अथवा मृतक के चुने हुए अस्थियों के रखने के लिए किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि गौतम बुद्ध की मृत्यु के पूर्व भी इनका निर्माण विशिष्ट व्यक्तियों और राजाओं की समाधियों के ऊपर किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण नामक उत्तर वैदिक काल के एक ग्रंथ के अंतः साक्ष्य से इंगित होता है कि शव जलाने के बाद बचे हुए अस्थियों को चुनकर बर्तन में रखकर भूमि में दफनाने की परंपरा थी। विनय पिटक के महापरिनिर्वाण सूत्र में जो परंपरा सुरक्षित है, उसके अनुसार आनंद ने जब बुद्ध से पूछा कि उनकी मृत्यु के पश्चात किस प्रकार का स्मारक बनवाया जाए तो उत्तर में भगवान बुद्ध ने कहा कि शव को जलाने के बाद बचे हुए अस्थि

अवशेषों पर चौराहों में उसी प्रकार के स्तूप बनवाए जाएं जिस प्रकार के स्तूप चक्रवर्ती सम्राटों के बनते हैं। इस प्रकार यह विदित होता है की महात्मा बुद्ध के पहले से ही स्तूप निर्माण की प्रथा भारत में विद्यमान थी।

स्तूप चार प्रकार के होते हैं–

1 शारीरिक स्तूप

2 पारिभोमिक स्तूप

3 उद्देशिक स्तूप

4 चैत्य स्तूप

शारीरिक स्तूप सबसे प्रधान है, जिनमें गौतम बुद्ध के शरीर, धातु के दंत, मोदग्लायन एवं आनंद आदि प्रमुख आचार्यों के शारीरिक अवशेषों के ऊपर जो स्तूप बने उन्हें इस श्रेणी में रख सकते हैं। भारत के विभिन्न भागों में स्थित स्तूपों के ध्वंसावशेषों के उत्खनन करने पर अस्थि अवशेष और भस्म आदि अस्थि कलश में भरे हुए मिले हैं। इनमें पिपरहवा तथा सांची स्तूप प्रमुख है।

भगवान बुद्ध द्वारा उपयोग की गई वस्तुओं को रखने के लिए जो स्तूप बनाए गए पारिभोगीक स्तूप कहलाए, इसमें बुद्ध के भिक्षा पात्र, चीवर, संघाटी तथा पादुकोण की गणना इन वस्तुओं में की जाती है। ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री ने भी इस प्रकार के स्तूपों का वर्णन किया है।

उद्देशिका स्तूप गौतम बुद्ध के जीवन से संबंधित घटनाओं से जुड़े स्थानों पर स्मारक के रूप में बनाए गए थे। इनमें प्रमुख रूप से लुंबिनी, बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर इत्यादि स्थानों पर बनाए गए स्तूप प्रमुख हैं। चैत्य का स्तूप के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है वस्तुतः पूजार्थक स्तूप को ही चैत्य कहा जाता है।

4.13 साँची का स्तूप

एक ब्रिटिश अधिकारी जनरल टेलर ने सन 1818 ई0 में सांची के स्तूप का अस्तित्व उद्घाटित किया। उसके बाद सन् 1818 से ही जीर्णोद्धार कार्य आरम्भ हुआ। जॉन मार्शल की देखरेख में 1912 से 1919 के बीच, ढांचे को वर्तमान स्थिति में लाया गया। आज लगभग पचास स्मारक स्थल सांची के टीले पर ज्ञात हैं, जिनमें तीन स्तूप और कई मंदिर भी हैं। यह स्मारक 1989 में यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर स्थल घोषित हुआ है। साँची, भारत के मध्य प्रदेश राज्य के रायसेन जिले में साँची नगर के पास एक पहाड़ी पर स्थित एक छोटा सा गांव है। यह बेतवा नदी के किनारे, भोपाल से 46 कि०मी० पूर्वोत्तर में, तथा बेसनगर और

विदिशा से 10 कि०मी० की दूरी पर मध्य प्रदेश के मध्य भाग में स्थित है। यहाँ कई बौद्ध स्मारक हैं, जो तीसरी शताब्दी ई.पू. से बारहवीं शताब्दी के बीच के काल के हैं। सांची रायसेन जिले की एक नगर पंचायत है। रायसेन जिले में एक अन्य विश्व प्रसिद्ध स्थल, भीमबेटका भी है। विदिशा से नजदीक होने के कारण लोगों में यह भ्रम होता है कि यह विदिशा जिला में है। यहाँ छोटे–बड़े अनेकों स्तूप हैं, जिनमें स्तूप संख्या 2 सबसे बड़ा है। इस स्तूप को घेरे हुए कई तोरण भी बने हैं। स्तूप संख्या एक के पास कई लघु स्तूप भी हैं, उन्ही के समीप एक गुप्त कालीन पाषाण स्तंभ भी है। सांची का मुख्य स्तूप, मूलतः सम्राट अशोक ने तीसरी शती, ई.पू. में बनवाया था। बाद में इस सांची के स्तूप को सम्राट अग्निमित्र (शुंग शासक) द्वारा जीर्णोद्धार करके बड़ा और विशाल बना दिया गया। इसके केन्द्र में एक अर्धगोलाकार औधे कटोरे कि भॉति ईंट निर्मित ढांचा था, जिसे अण्डभाग कहा जाता है, जिसमें भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष रखे गये थे, ऐसा माना जाता है इसके उपरी भाग पर हर्मिका और एक छत्रावली लगी थी।

सामान्य विवरण
वास्तुकला शैली –बौद्ध
स्थान–साँची, मध्य प्रदेश, भारत, एशिया
निर्माणकार्य शुरू–तीसरी शताब्दी ईसापूर्व
ऊँचाई 16.46 मी० (54.0 फीट)
व्यास 36.6 मी० (120 फीट)

स्तूपों को दूसरी शताब्दी ई.पू. में तोड़फोड़ करने की बात कही जाती है। यह घटना शुंग सम्राट पुष्यमित्र शुंग के उत्थान से जोड़कर देखी जाती है। यह माना जाता है कि पुष्यमित्र ने इस स्तूप का ध्वंस किया होगा और बाद में, उसके पुत्र अग्निमित्र ने इसे पुनर्निर्मित करवाया होगा। शुंग वंश के अंतिम वर्षों में, स्तूप के मूल रूप का लगभग दुगुना विस्तार पाषाण शिलाओं से किया गया था। इसके गुम्बद को ऊपर से चपटा करके, इसके ऊपर तीन छतरियां, एक के ऊपर दूसरी करके बनवायीं गयीं थीं। ये छतरियां एक वर्गाकार मुंडेर के भीतर बनीं थीं। अपने कई मंजिलों सहित, इसके शिखर पर धर्म का प्रतीक,

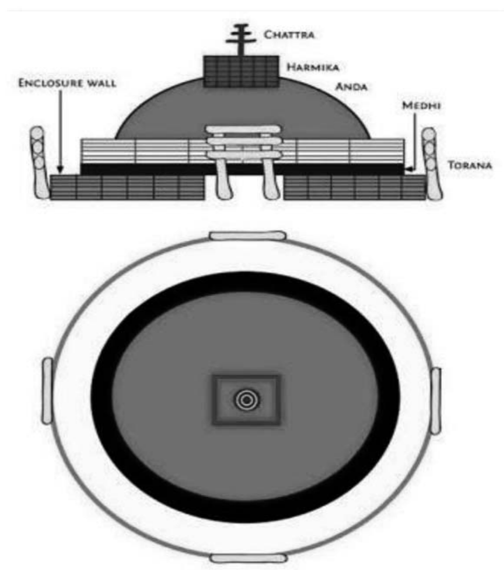

सांची का स्तूप

विधि का चक्र लगा था। यह गुम्बद एक ऊंचे गोलाकार ढोल रूपी निर्माण के ऊपर लगता था। इसके ऊपर एक दो–मंजिला सीढी से पहुंचा जा सकता था।

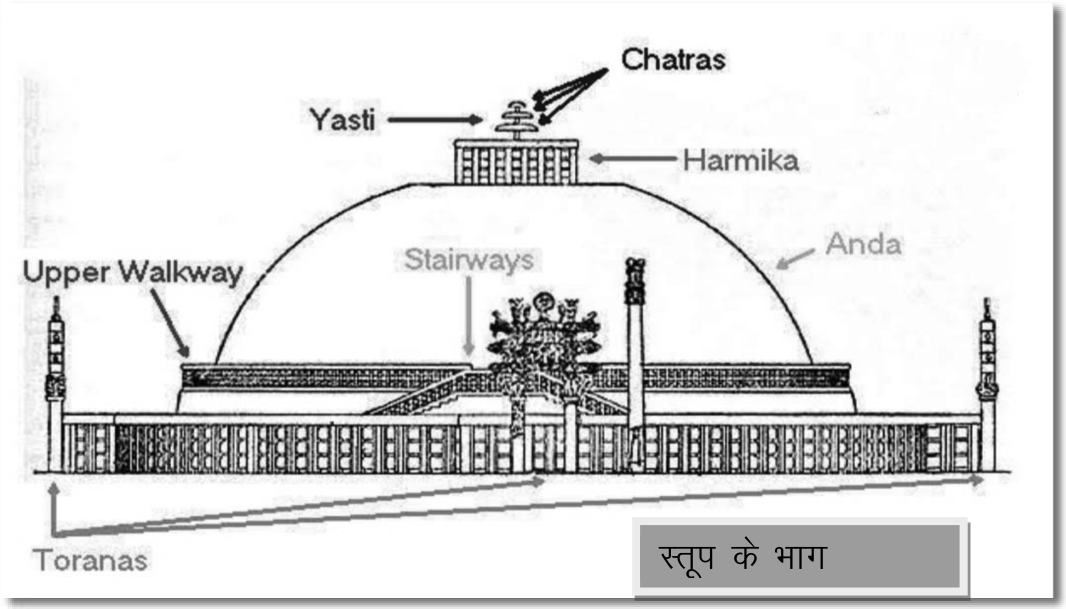

स्तूप के भाग

भूमि स्तर पर बना दूसरी पाषाण परिक्रमा, एक घेरे से घिरी थी, जिसे वेदिका कहा जाता है। इसके बीच कई तोरण द्वार बने थे। द्वितीय और तृतीय स्तूप की इमारतें शुंग काल में निर्मित प्रतीत होतीं हैं, परन्तु वहां मिले शिलालेख अनुसार उच्च स्तर के अलंकृत तोरण शुंग काल के नहीं थे, इन्हें बाद के सातवाहन वंश द्वारा बनवाया गया था। इसके साथ ही भूमि स्तर की पाषाण वेदिका और महान स्तूप की पाषाण आधारशिला भी उसी काल का निर्माण हैं।

सातवाहन काल में प्रमुख बौद्ध चिह्न श्रीवत्स, त्रिरत्न् के साथ, दोनों एक चक्र के ऊपर मण्डित हैं व चक्र एक तोरण के ऊपर बना है। तोरण द्वार एवं वेदिका 70 ई.पू. के पश्चात बने थे और यह सातवाहन वंश द्वारा निर्मित प्रतीत होते हैं। एक शिलालेख के अनुसार दक्षिण के तोरण की सर्वोच्च चौखट सातवाहन राजा सतकर्णी की ओर से उपहार स्वरूप मिली थी ''यह आनंद, वासिथि पुत्र की ओर से उपहार है, जो राजन सतकर्णी के कारीगरों का प्रमुख है। स्तूप यद्यपि पाषाण निर्मित हैं, किंतु काष्ठ की शैली में गढ़े हुए तोरण,

तोरण द्वार

वर्णात्मक शिल्पों से परिपूर्ण हैं। इनमें बुद्ध के जीवन की घटनाएं, दैनिक जीवन शैली से जोड़कर दिखाई गईं हैं। इस प्रकार देखने वालों को बुद्ध का जीवन और उनकी वाणी भली प्रकार से समझ में आता है। सांची और अधिकांश अन्य स्तूपों को संवारने हेतु स्थानीय लोगों द्वारा भी दान दिये गये थे, जिससे उन लोगों को अध्यात्म की प्राप्ति हो सके। कोई सीधा राजसी आश्रय नहीं उपलब्ध था। दानकर्ता, चाहे स्त्री हो या पुरुष हों, बुद्ध के जीवन से संबंधित कोई भी घटना चुन लेते थे और अपना नाम वहां खुदवा देते थे। कई खास घटनाओं के दोहराने का, यही कारण था। इन पाषाण नक्काशियों में, बुद्ध को कभी भी मानव आकृति में नहीं दर्शाया गया है। बल्कि कारीगरों ने उन्हें कहीं घोड़ा, जिसपर वे अपने पिता के घर का त्याग कर के गये थे, तो कहीं उनके पदचिन्ह, कहीं बोधि वृक्ष के नीचे का चबूतरा, जहां उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति हुई थी, के रूप में दर्शाया है। बुद्ध के लिये मानव शरीर अति तुच्छ माना गया था। सांची की दीवारों के भाग पर बने चित्रों में यूनानी पहनावा भी दर्शनीय है। इसमें यूनानी वस्त्र, मुद्रा और वाद्य हैं जो कि स्तूप के अलंकरण रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

आगे चलकर स्तूप स्थापत्य के बाद मंदिर बनने लगते है। सांची का मंदिर सं.17, संभवतः प्राचीनतम बौद्ध मंदिर है, क्योंकि यह आरम्भिक गुप्त काल का लगता है। इसमें एक वर्गाकार गर्भगृह के ऊपर चपटी छत, द्वार, मंडप और चार स्तंभ हैं। आगे का भाग और स्तंभ विशेष अलंकृत और नक्काशीकृत है, जिनसे मंदिर को एक परंपरागत छवि मिलती है, किंतु अंदर से और शेष तीनों ओर से समतल है और अनलंकृत है। भारत में बौद्ध धर्म के पतन के साथ ही, सांची का स्तूप उपेक्षित हो गया और खंडित अवस्था में पहुंच गया।

4.14 भरहुत

भरहुत नामक गाँव भारत के मध्य प्रदेश राज्य के सतना जिले में स्थित है जो अपने प्राचीन बौद्ध स्तूप, कलाकृतियों एवं अन्य पुरातात्विक वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ एक बौद्ध स्तूप के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं, जिसका निर्माण सम्राट अशोक के काल में हुआ था। अलेक्जेंडर कनिंघम ने सर्वप्रथम 1873 ई. में इस स्थल का पता लगाया था। यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक महत्व की कुछ वस्तुओं को कोलकाता के भारतीय संग्रहालय में तथा कुछ अन्य को प्रयागराज के संग्रहालय में रखा गया है। भरहुत के लाल पहाड़ के ऊपरी चोटी से बलालदेव का 14वीं

शदी का प्रारंभिक देवनागरी में लेख मिला है जिससे यह सिद्ध होता है कि इसका महत्त्व इस समय तक था।भरहुत का स्तूप अपने समय के समाज का दर्पण कहा जा सकता है। वर्तमान में भरहुत उजड़ चुका है।

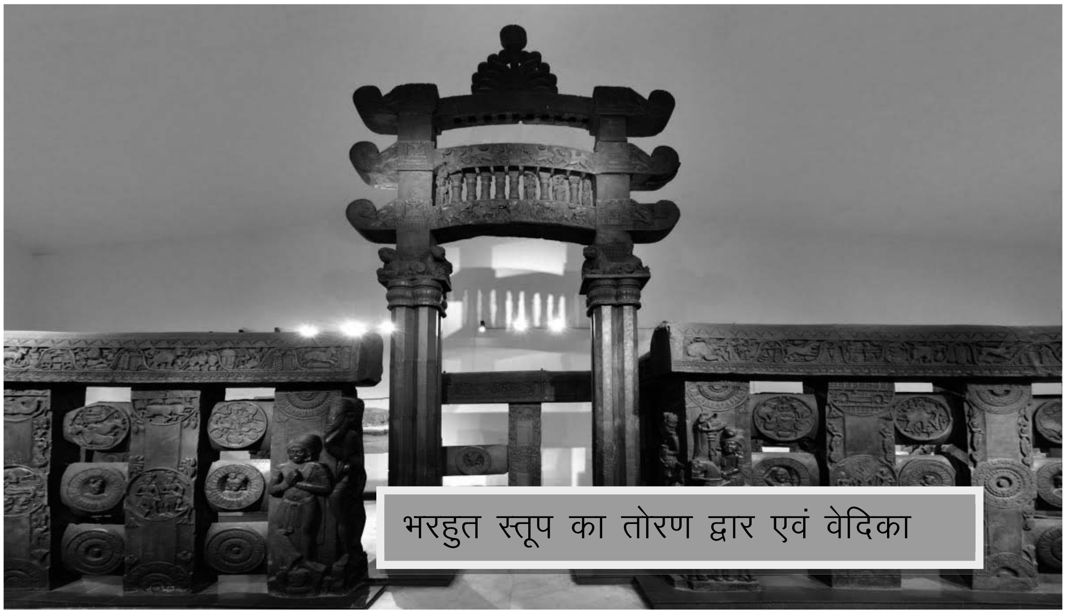

भरहुत स्तूप का तोरण द्वार एवं वेदिका

भरहुत स्तूप मगध साम्राज्य के मध्य प्रांत के एक छोर पर स्थित है। इतिहासकारों और पुरातत्वविदों का मानना है कि जिस स्थान पर ये स्तूप स्थित है, वह उस युग के प्रमुख राजमार्ग का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। उज्जैन से विदिशा

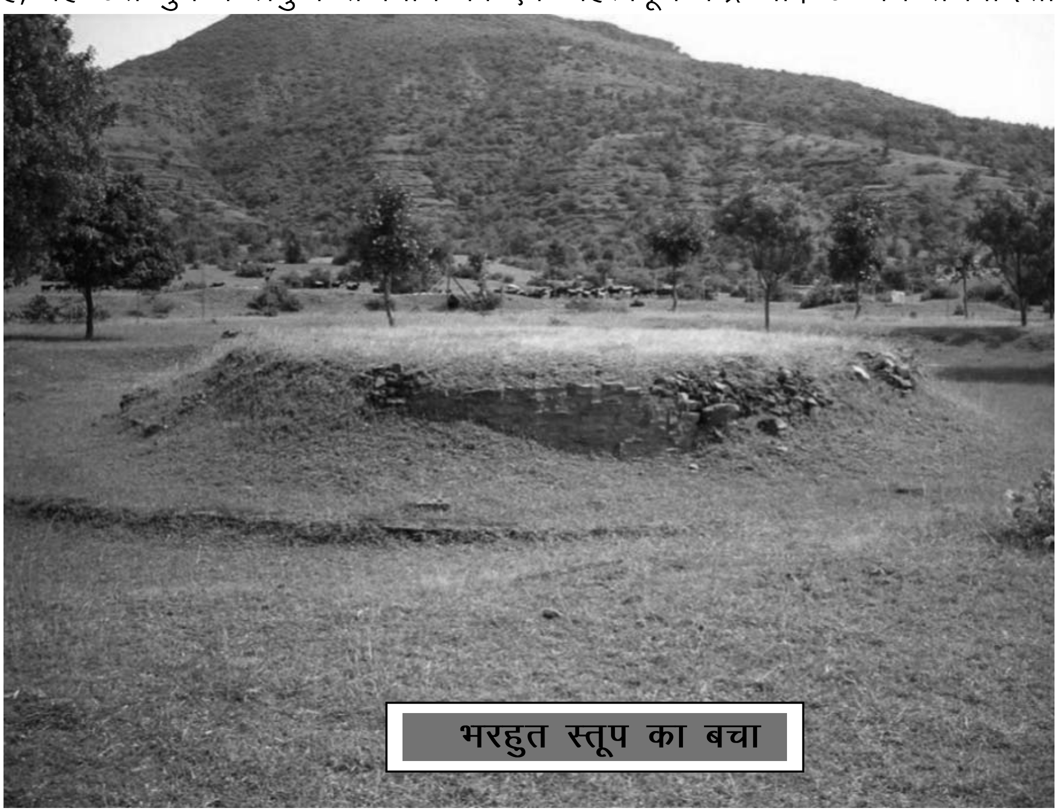

भरहुत स्तूप का बचा

होते हुए, एक रास्ता पाटलिपुत्र को जाता है। वहां से यह रास्ता उत्तर की तरफ मुड़ता है और मैहर नदी घाटी पार कर कौशाम्बी और श्रावस्ती पहुंचता है। अपनी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के साथ यहां एक बौद्ध स्थल भरहुत है जो शायद, भारत में महान बौद्ध स्थलों में से एक है। हालंकि ये स्तूप अलग तरह का है लेकिन फिर भी सांची और उसके अन्य स्मारकों से ये काफी मिलता जुलता है, जो इसे विश्व स्तरीय बनाता है। भरहुत गांव मध्य प्रदेश के सतना जिले में है। ये स्थान ई.पू. दूसरी सदी की बौद्ध कला के जटिल उदाहरणों में से एक है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि भरहुत में मूल स्तूप अशोक मौर्य ने तीसरी ई.पू. में बनवाया था और दूसरी ई.पू. शताब्दी में इसे बड़ा रूप दिया गया।

भरहुत स्तूप के प्रमुख तत्व–

- अशोक द्वारा ईटों से बनवाया गया स्तूप था।
- मध्यप्रदेश के सतना जिले में भरहुत गांव के समीप स्थित है।
- सर्वप्रथम 1873/1874 ईस्वी में कनिंघम और उन के सहयोगी जे. डी. बेगलर ने खोजा था।
- इसके अवशेष भारतीय संग्रहालय, कोलकाता, प्रयाग संग्रहालय इलाहाबाद, प्रिंस आप वेल्स संग्रहालय मुंबई, भारत कला भवन वाराणसी तथा सतना संग्रहालय के रामवन संग्रहालय में रखे गए हैं।
- शुंग–आंध्र युग बौद्ध कला के लिए रचनात्मक अवधि का काल था। शुंग शासक ब्राह्मण धर्म के अनुयाई थे, कालांतर में मौर्य तथा मौर्योत्तर काल की प्रभावाधीन होने के कारण यहां बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। यह मध्यप्रदेश के सतना नगर के दक्षिण में स्थित है। अशोक के काल में निर्माण तथा शुंग काल में इसका विकास किया गया।
- इसमें पॉलिशदार लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग किया गया है।
- स्तूप में रेलिंग के डिजाइन मुख्य आकर्षण का केंद्र हैं, पत्थरों पर जटिल डिजाइन बनाई गई है।
- रेलिंग पलकों में कमल का अलंकरण कहीं–कहीं पर यक्ष प्रतिमाएं, गांव का जीवन, स्नान करता हुआ हाथी, हिरण, मोर इत्यादि का अलंकरण किया गया है।

- स्तूप शादी ईटों का बना हुआ है। नींव में बड़ी–बड़ी सिला खंडों का प्रयोग किया गया है स्तूप के चारों ओर वेदिका निर्मित है, जिसके चारों तरफ एक–एक तोरण द्वार बने हैं।
- स्तूप तथा वेदिका के बीच प्रदक्षिणा पथ है। वेदिका में कुल 80 स्तंभ लगे हैं।

जब सन्1873 में इसकी खोज की थी तब ये भरहुत स्तूप लगभग बरबाद हो चुका था और यहां के कटघरे और प्रवेश द्वार आसपास के कई गांव में भवनों की शोभा बढ़ा रहे थे। वहां वेदिका (स्तूप के आसपास पत्थरों से बनी मंडेर और कटघरे) के सिर्फ तीन खंबे बचे थे। साथ ही पूर्वी तोरण का एक खंबा भी बचा था। इन खंबों पर अभिलेख देखकर कनिंघम दंग रह गए और उन्होंने फौरन

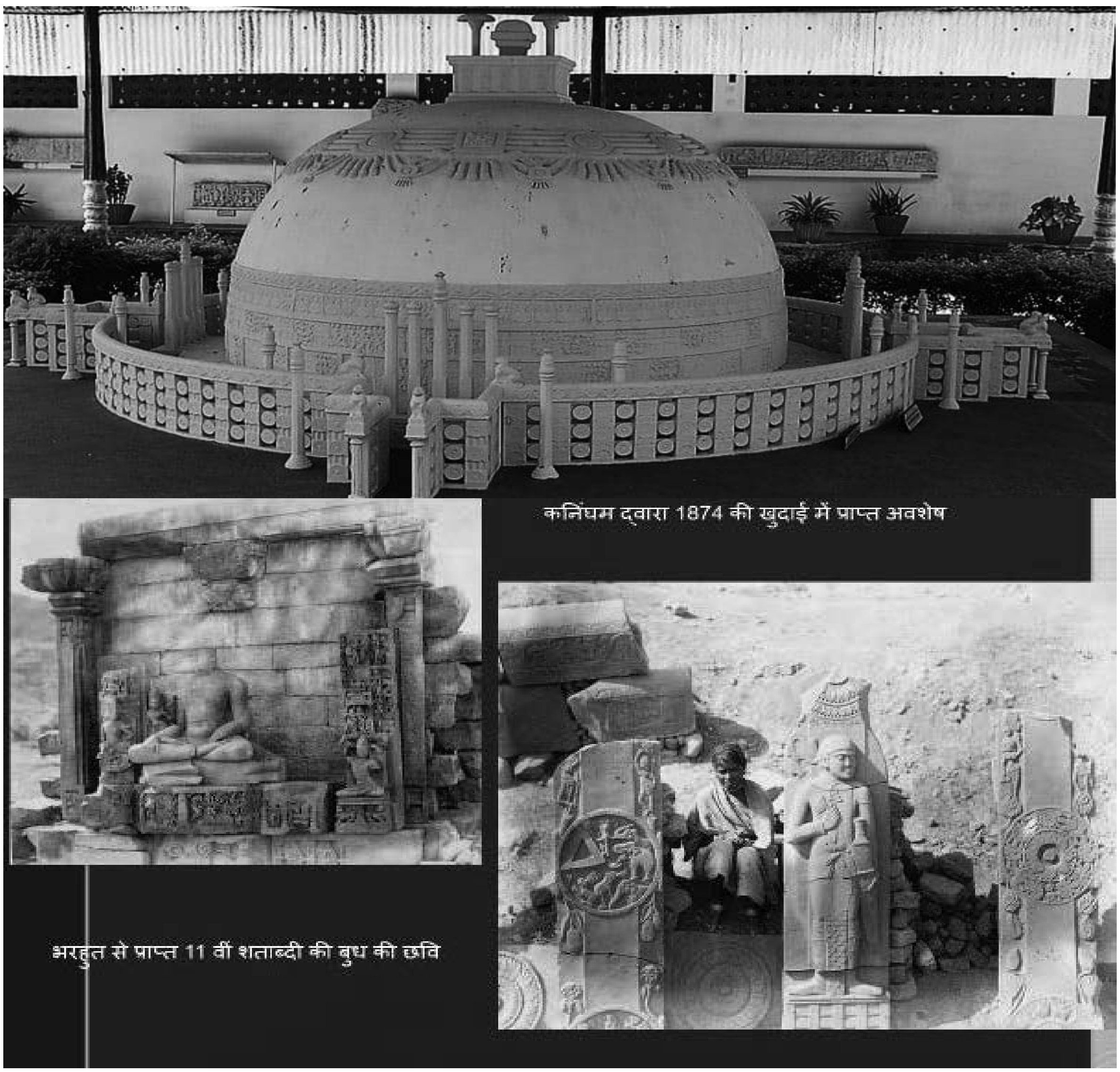

अपने सहायक जोसेफ बेगलर को इस जगह की खुदाई करने करने का आदेश दिया। खुदाई होती देख गांव वालों को शक हुआ कि ये लोग जमीन में दबा

सोना निकालने के लिए खुदाई कर रहे हैं लेकिन उन्हें ये नहीं पता था कि कनिंघम सोने से भी कहीं ज्यादा बेशकीमती खजाने के लिए खुदाई कर रहे थे। खुदाई में अचानक लाल पत्थर के बने नक्काशीदार तोरण (प्रवेश द्वार) और वेदिका (कटघरे) के बिखरे हुए टुकड़े मिले। इनमें से ज़्यादातर टुकड़ों पर आरंभिक ब्रह्मी लिपि में लिखित अभिलेख अंकित थे। सतह पर एक और जो ढांचा दिखाई दिया वो एक बौद्ध मंदिर था, जो शायद गुप्त काल का था। मंदिर के अंदर 12वीं सदी की पाल शैली में बनी बुद्ध की छवि थी। ये खोज इस मायने में दिलचस्प थी

क्योंकि इससे पता चला कि इस क्षेत्र में,12वीं सदी तक बौद्ध धर्म जिंदा था। यहां एक बड़ा आयताकार स्लैब भी मिला था, जिस पर संस्कृत बौद्ध अभिलेख अंकित था लेकिन इसके बाद यहां कुछ नहीं मिला। भरहुत में एक अन्य अभिलेख पर भी राजा धनाभूति का उल्लेख है। ये शायद वही धनाभूति है जिसने मथुरा में बौद्ध संघ को एक प्रवेश द्वार और कटघरा दान किया था। हालंकि भरहुत पत्र अशोक ब्रह्मी (ई.पू. तृतीय सदी) में हैं और मथुरा से मिले पत्र पहली सदी के लगते हैं। पुरातत्त्वविद और कला इतिहासकार अजीत कुमार स्तूप के निर्माण का समय पहली सदी को मानते हैं जबकि कनिंघम को पूरा विश्वास था कि इसका निर्माण दूसरी–तीसरी शताब्दी ई.पू. में हुआ था। सच्चाई शायद इन दोनों शताब्दियों के बीच कहीं है।

बहरहाल, इतना तो कहा ही जा सकता है कि भरहुत हालंकि सांची और बोधगया के स्तूपों से काफी मिलते जुलते हैं लेकिन इसकी नक्काशी की शैली बहुत अच्छी नहीं है।

4.15 अमरावती स्तूप

आंध्र प्रदेश में अमराराम पिया अमरेश्वर का प्रसिद्ध शिव तीर्थ ही अमरावती नाम से प्रसिद्ध है। अमरावती का एक अन्य नाम धान्यकटक या धारणी कोट मिलता है। अमरावती के मूल स्तूप का निर्माण सम्राट अशोक ने करवाया था। यहां से अशोक स्तंभ का एक खंड में मिलता है। सातवाहन काल में यहां महास्तूप का निर्माण हुआ, जिसे महाचैत्य कहा गया। वशिष्ठी पुत्र पुलुमावि के समय इसका जीर्णोद्धार व तथा इसके चारों तरफ पाषाण वेदिका निर्मित हुई और इसे कलाकृ तियों द्वारा सजाया गया। इसमें बुध को प्रतिको व मूर्तियों दोनों प्रकारों से व्यक्त किया गया है। अतः यह भरहुत, सांची, मथुरा एवं गांधार कला का संक्रांति काल

माना जाता है। बुद्ध जन्म के प्रतीक हाथी को जिस तरह यहां उकेरा गया है वैसा अन्यत्र अज्ञात है। एक ही सिलापट्ट के एक भाग में बोधिसत्व से अवतरित होने की प्रार्थना की जा रही है, मध्य भाग में वाद्य सहित एक रथ पर सवार हाथी

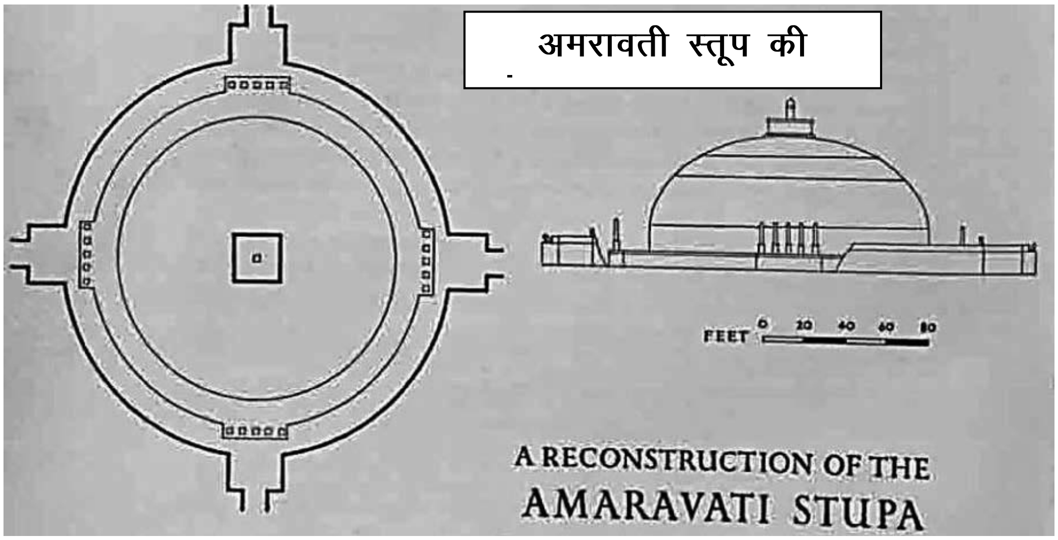

को ले जा रहा है तथा तीसरे भाग में माया देवी का स्वप्न उत्कीर्ण है। इस स्तूप का निर्माण मुख्यता 200 ईसा पूर्व से 250 ईस्वी के मध्य 4 चरणों में हुआ। द्वितीय चरण (100 ईसा पूर्व से 100 ईस्वी) में यहां बुद्ध का अंकन प्रतीक तथा मूर्ति दोनों रूपों में हुआ। तृतीय चरण 150 ईस्वी से 200 ईस्वी तक सातवाहन काल का था, जिसमें वास्तु तथा शिल्प की दृष्टि से स्तूप का अधिकतम संवर्धन किया गया, जो सातवाहन कला के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है।

पुलुमावि के अतिरिक्त यज्ञ श्रीशातकर्णी तथा श्रीशातकर्णी के नाम लेख पर अंकित हैं। इनमें से यज्ञ श्रीशातकर्णी का काल इस महास्तूप का चरमोंत्कर्ष काल था। चतुर्थ चरण 200 से 250 ईस्वी में इच्छवाकु वंशी राजाओं द्वारा इसका परीक्षण किया गया। एक अभिलेख में पांचवी शताब्दी के वाकाटक वंश का उल्लेख है। तत्पश्चात् लम्बे अंतराल के पश्चात 1182 व 1234 ईसी के लेख अमृतसर मंदिर में अंकित हैं, जिनमें महास्तूप हेतु दान का अंकन है अर्थात 13वीं शताब्दी तक यह सुरक्षित अवस्था में था। अमरावती शिलापट्टों की नक्काशी में तत्कालीन जनजीवन की सर्वांगीण झांकी प्रदर्शित हुई है। निर्धन व्यक्ति की कुटिया से लेकर भिक्षु के दो मंजिलें बिहार तथा राजमहल सभी उत्कीर्ण किए गए हैं। के0डी0

वाजपेई के अनुसार यह महास्तूप भारतीय वास्तु कला की उज्जवलतम कृति है। कुमार स्वामी इस शिल्पकला को अत्यंत विलासी तथास्तु कुमार पुष्प कहते हैं। अमरावती के शिलापट्टों में सांची की भांति अनेक दान सूचक लेख है। इन दानदाताओं में पाटलिपुत्र, राजगिरि, तमिल देश आदि के गहपति उपासक हैरणयिक पानी घर के अधिकारी भद्र निगम के श्रेष्ठ अत्यादि है।

प्रमुख स्तूप की न केवल वेदिका, प्रदक्षिणापथ अपितु गुंबद भी संगमरमर की पत्तियों से जड़ा गया था। इसका केंद्रीय हिस्सा 4 सीटो से निर्मित अंडे के शीर्ष भाग पर एक मंजूषा थी, जिसके ऊपर लोहे का छत्र लगा था। आयाक स्तंभ इस स्तूप का विशिष्ट लक्षण है। आयाक स्तंभ के शिलापट्टों की पंक्ति में चक्र पट, स्तूप पट, बुद्ध पट, पूर्ण घट पट, स्वास्तिक पट प्रमुख है। स्तुप की महावेदिका जिसके निर्माण की प्रेरणा आचार्य नागार्जुन से प्राप्त हुई है, जो इस स्तूप का प्रमुख अंग है। बौद्ध प्रतीकों में बुध के पद चिन्ह को भी दिखाया गया हैं। ऐतिहासिक मूर्ति शिल्प में बुद्ध द्वारा नीलगिरी हाथी को वश में करना, अंगुलिमाल डाकू का हृदय परिवर्तन, बुद्ध का अग्नि प्रतिहार हाथियों द्वारा बोधि वृक्ष की पूजा, बुद्ध के भिक्षा पात्र का समारोह सहित देवलोक को परिगमन, माया देवी का सपना, मार विजय, नागो द्वारा रक्षित रामग्राम स्तूप, अजातशत्रु द्वारा बुद्ध के दर्शन, सम्राट उदयन द्वारा अपने भयभीत अंतापुर के ऊपर बाण वृष्टि के दृश्य प्रमुख हैं। क्षेमेंद्र की अवदानकल्पलता में वर्णित है कि छंद जातक, विदुर पंडित जातक, हंस जातक, शिवी जातक, चंपे जातक, पद्माकमार आदि के दृश्यों की प्रथम प्रस्तुति अमरावती में हुई है। अमरावती का स्तूप अत्यंत विशाल है। इसके अंड का भूमि पर व्यास 160 फुट तथा ऊंचाई 90 से 100 फुट के आसपास थी। इसमें तोरण द्वार के स्थान पर भारी–भारी 2 खंभे थे, जिनके ऊपर सिंह आकृतियां थी। अमरावती स्तूप की एक अन्य विशेषता यह थी कि इसमें स्तूप को ही अलंकृत किया गया है। बहुपुट चैत्य तथा चापाल चैत्य इसी स्तूप के अंग हैं। स्तूप के तक्षण का कार्य कुशल कारीगरों द्वारा किया गया है।

2.16 सारांश

इस प्रकार मौर्य युगीन लोककला, राजकीय कला के साथ ही जनसाधारण में विकसित हो रही थी। राजकीय कला की धारा तो राजत्त्व के साथ समाप्त हो गई किन्तु लोक कला की धारा जन साधारण के साथ अबाध रूप से प्रवाहित होती रही, जिसका पूर्ण परिपक्व रूप शुंगयुगीन मूर्तिकला में द्रष्टव्य है। मौर्य कालीन कला का विकसित रूप शुंग–सातवाहन मूर्तिकला, टेरोकोटा की कला और स्तूपों के परिवर्धन में दिखाई पड़ती है। इस काल से अशोक के समय बने स्तूपों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ, जिसमें स्तूपों के चारों तरफ वेदिका बनाए जाने का प्रारंभ हुआ, इसी के साथ जातक कथाओं में वर्णित दृश्यों को भी उकेरने का प्रयास किया गया एवं मूर्तिकला के ऊपर भी महत्वपूर्ण कार्य सातवाहन काल में किए गए। शुंग–सातवाहन कालीन स्तूपों में अमरावती स्तूप का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें बुद्ध के प्रतीकों के साथ अजातशत्रु द्वारा बुद्ध के दर्शन, सम्राट उदयन द्वारा अपने भयभीत अंतापुर के ऊपर बाण वृष्टि का दृश्य प्रमुख है।

4.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।

- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

4.17 बोधप्रश्न

प्रश्न : लोक–मूर्तिकला के अंतर्गत दीदारगंज की यक्षी प्रतिमा पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न : मौर्य कालीन स्तम्भों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न : सांची के स्तूप की वास्तुगत विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

इकाई–5 : शैलोत्खनित स्थापत्य–चैत्यगृह एवं विहार–कार्ले, भाजा एवं अजन्ता

इकाई की रुपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 चैत्यगृह के अंग

5.4 कार्ले

5.5 विहार

5.6 अजन्ता

5.7 भाजा

5.8 सारांश

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.10 बोधप्रश्न

5.1 प्रस्तावना

शैलोत्खनित स्थापत्य का प्रारम्भ मौर्य काल से ही प्रचलन में था, ये गुफाएँ प्रारम्भ में सभी धर्मो के अनुयायियों में प्रचलित थी किन्तु शुंग सातवाहन काल में बौद्धो ने जब इस बात को आत्मसात किया तो गुफा वास्तु कला की अनिवार्य परम्परा बन गयी, जिस समय साँची, भरहुत बौद्ध बिहार, सारनाथ आदि के स्तूपों का निर्माण हो रहा था, उसी समय बौद्ध जगत में गुफा वास्तु का सृजन हुआ, जिसकी परम्परा 8वीं शताब्दी तक चलती रही।

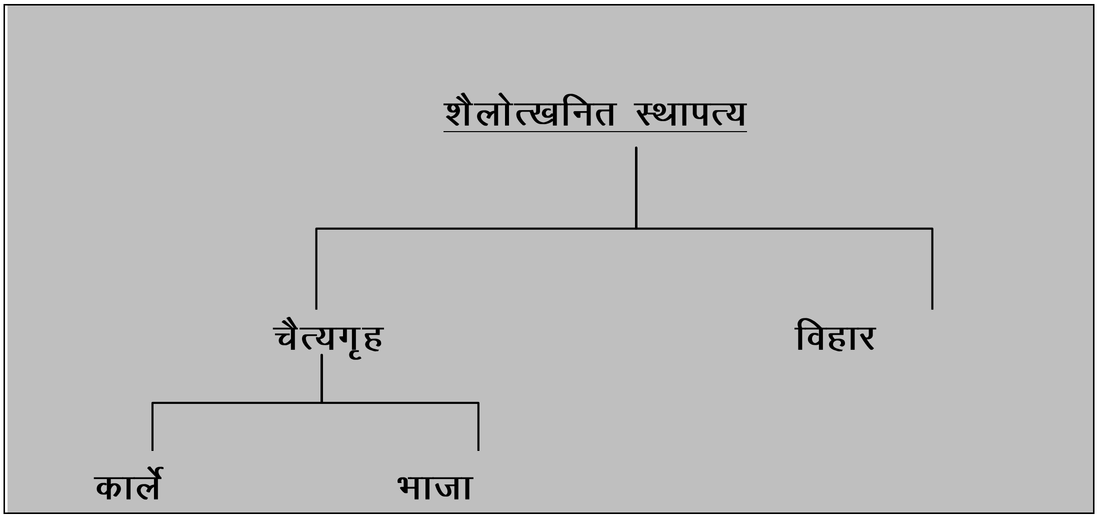

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

शैलोत्खनित स्थापत्य के अर्थ को।

चैत्यगृह और विहार के बारे में।

अजन्ता के चैत्यगृह और विहार को।

कार्ले और भाजा के चैत्यगृह और विहार बारे में

5.3 चैत्यगृह के अंग

1. **प्रदक्षिणापथ**
2. **द्वार**
3. **स्तूप**
4. **स्तम्भ**
5. **मण्डप**
6. **गजपृष्ठाकार छत**

बौद्ध धर्म में स्तूप बुद्ध के प्रतीक के रूप में पूज्य है और स्तूप को ही चैत्य के नाम से सम्बोधित किया गया है अतः चैत्य की पूजा के लिए जिन गुफाओ का निर्माण किया गया उन्हें चैत्य गृह कहा गया। चैत्यगृह समान्यतः आयताकार होते थे, जिसकी लम्बाई अधिक व इसका सिरा अर्ध चन्द्राकार होता था, जिसमे स्तूप की स्थापना की जाती थी, स्तूप के समक्ष मण्डप होता था। महायान मण्डप के समक्ष बुद्ध की मूर्तिका निमार्ण किया जाता था। मण्डप के किनारे–किनारे स्तम्भ

होते थे। स्तम्भ और पत्थर की दीवार के बीच के भाग से प्रदक्षिणापथ का निमार्ण होता था, जिससे चैत्य की परिक्रमा की जाती थी।

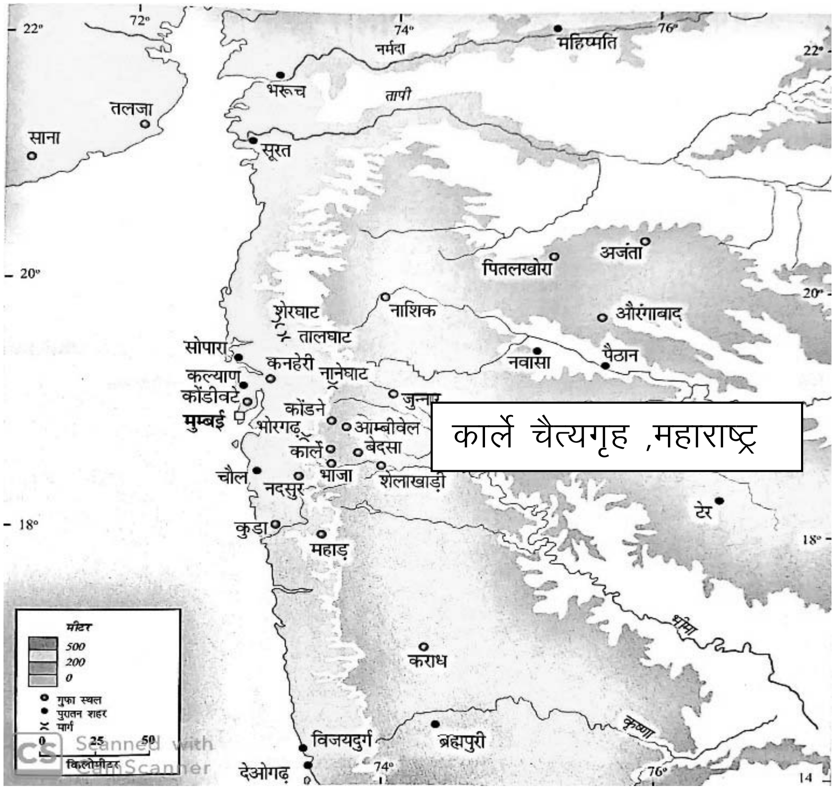

कार्ले चैत्यगृह ,महाराष्ट्र

वास्तव में एक ही पत्थर को काटकर बनाए गये चैत्यगृह में स्तम्भों की कोई उपयोगिता न थी, परन्तु कलाकारों द्वारा काष्ठ निर्मित भवन की शैली इन चैत्यों में प्रयोग की गयी, यहां तक चैत्यगृहों के छतों का निमार्ण भी काष्ठ के चैत्यगृहों के समान ही किया गया था। जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक कालीन काष्ठ कला का प्रभाव उन पर बहुत पड़ा था। काष्ठ कला से पत्थर की कला का विकासक्रम भाजा, अजन्ता गुफा संख्या 2, विदिशा, नासिक व कार्ले के चैत्य गृहों में देखा जा सकता है। महायान युगीन चैत्यगृहों में अजन्ता ऐलोरा व औरंगाबाद के चैत्यगृह उल्लेखनीय है।

5.4 कार्ले

कार्ले महाराष्ट्र के नासिक जिले में स्थित है, यहाँ से हीनयान चैत्यगृह की पूर्ण परिणति कार्ले चैत्यगृह में दिखाई देती है। वास्तुकार इस समय तक गुहावस्तु में पूर्णतया दक्ष हो गया था। वास्तुगत दृष्टिकोण से यह विशिष्ट चैत्यगृह है। इसके सामने की तरफ से दो स्तम्भ बनाये गये जो 16 कोणीय है। डा० वाशुदेव शरण अग्रवाल ने कार्ले के स्तम्भों का भारतीय परम्परा का माना है जबकि पर्सी ब्राउन ने उन्हे पर्से पोलिस के स्तम्भों का अनुकरण कहा है। इसके ऊपरी भाग पर 4 सिंह बने होते है। इसके पीछे अन्तराल है जो द्वार मण्डप की ओर जाता है। यहाँ 3 प्रवेश द्वार बने है बीच का मुख्य द्वार चैत्य मण्डप में, किनारे का दोनों प्रवेश द्वार प्रदक्षिणा पथ में खुलते है। नीचे का भाग अष्ट कोणीय स्तम्भों पर

टिका है। ऊपर के भाग में एक ही प्रवेश द्वार है। दोनों ही खण्डों के मुख्य भाग में अनेक सुराग है, जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ काष्ठ निर्मित संगीत शाला रही होगी। मुख्य चैत्य मण्डप 129 फिट लम्बा, $46\frac{1}{2}$ फिट चौड़ा व 45 फिट ऊँचा है। इसमें किनारे–किनारे पर 37 स्तम्भ उत्कीर्ण है। स्तम्भों एवं दीवार के बीच 10 फिट चौड़ा प्रदक्षिणा पथ है। मण्डप का पृष्ठ भाग अर्द्ध वृत्ताकार है जिसमें स्तूप को तरासा गया है। यह स्तूप दोहरी मेधिका है, जिसके बीच में अस्थि रही होगी व उसपर छत स्थापित की गयी होगी जो अब नहीं है। कार्ले हीनयान वस्तु का श्रेष्ठतम उदारण है।

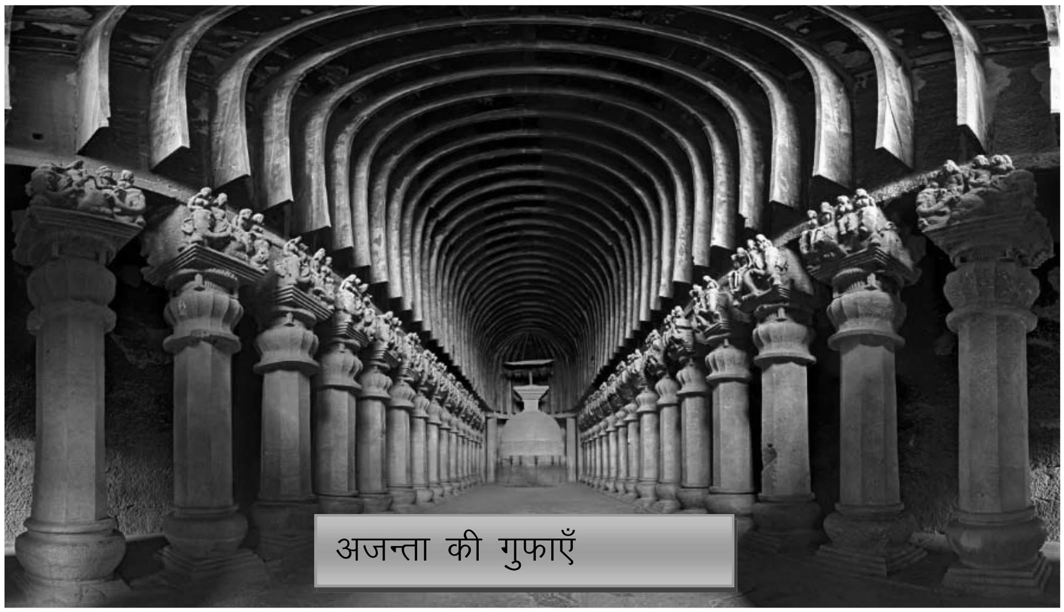
अजन्ता की गुफाएँ

5.5 विहार

विहार बौद्ध संघाराम को कहते है, जो प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षुओं के अस्थायी आश्रम के रूप में काम आते थे। परन्तु कालान्तर में उनका स्वरूप 1 संस्था के रूप में विकसित हुआ भिक्षुओं के निवास के लिए चैत्यगृह के समक्ष गुफा बनायी जाती थी उसे विहार कहा गया। इस गुफा के बीच में एक सभागार होता था व किनारे–किनारे पर छोटे–छोटे कमरे होते थे, ये वास्तुगत दृष्टि से बहुत ही अच्छे प्रकार के बनाए जाते थे।

5.6 अजन्ता

अजन्ता की गुफाएँ भारत के महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में स्थित है। यहॉ की 29 गुफाओं को काटकर बौद्ध स्मारक बनाये गये है, जो द्वितीय शताब्दी ई०पू० के हैं। गुफाओं में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रण एवं शिल्पकारी के उत्कृष्ट नमूने

मिलते हैं। यह गुफाएँ अजन्ता नामक गाँव के सन्निकट ही स्थित है, जो कि महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में है। अजन्ता की गुफाएँ सन् 1983 से युनेस्को की विश्व धरोहर स्थल घोषित की गयी। गुफा का आकार घोड़े की नाल जैसा है।

अजन्ता की गुफाः चैत्यगृह की संरचना

अजंता की गुफाएँ एक घने जंगल से घिरी, अश्व नाल आकार की घाटी में अजंता गाँव से 3 कि०मी० दूर बनी है। यह गाँव महाराष्ट्र के संभाजीनगर शहर से 106 कि०मी० दूर बसा है। इसका निकटतम कस्बा जलगाँव है, जो 60 कि०मी० दूर है, भुसावल 70 कि०मी० दूर है। इस घाटी की तलहटी में पहाड़ी नदी वाघूर बहती है। यहाँ कुल 29 गुफाएँ (भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग द्वारा आधिकारिक गणनानुसार) हैं, जो कि नदी द्वारा निर्मित एक प्रपात के दक्षिण में स्थित है। इनकी नदी से ऊँचाई 35 से 110 फीट तक की है।

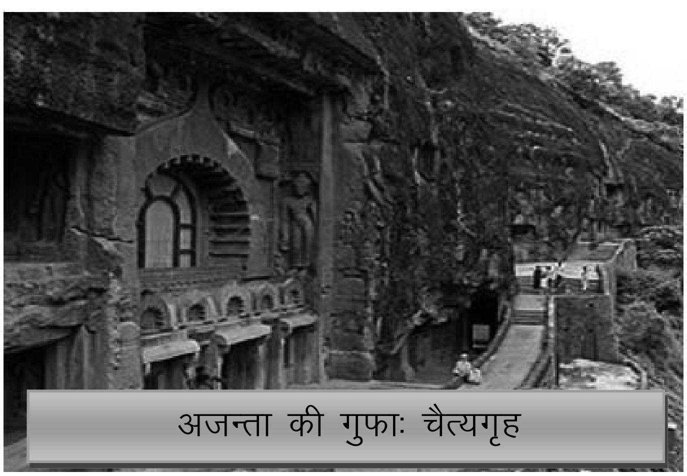

अजन्ता की गुफाः चैत्यगृह

अजंता गुफाओं का समूह है, जिसमें कई विहार (आवासीय मठ) एवं चैत्य गृह हैं (स्तूप, पुजा स्थल), जो कि दो चरणों में बने हैं। प्रथम चरण को प्रायः हीनयान चरण कहा गया है, जो कि बौद्ध धर्म के हीनयान मत से सम्बन्धित है। वस्तुतः हीनयान स्थविरवाद के लिए एक शब्द है, जिसमें बुद्ध की मूर्त रूप से कोई निषेध नहीं है। अजंता की गुफा संख्या 9, 10, 12, 13 15ए को इस चरण

में खोजा गया था। इन खुदाइयों में बुद्ध को स्तूप या मठ रूप में दर्शित किया गया है।

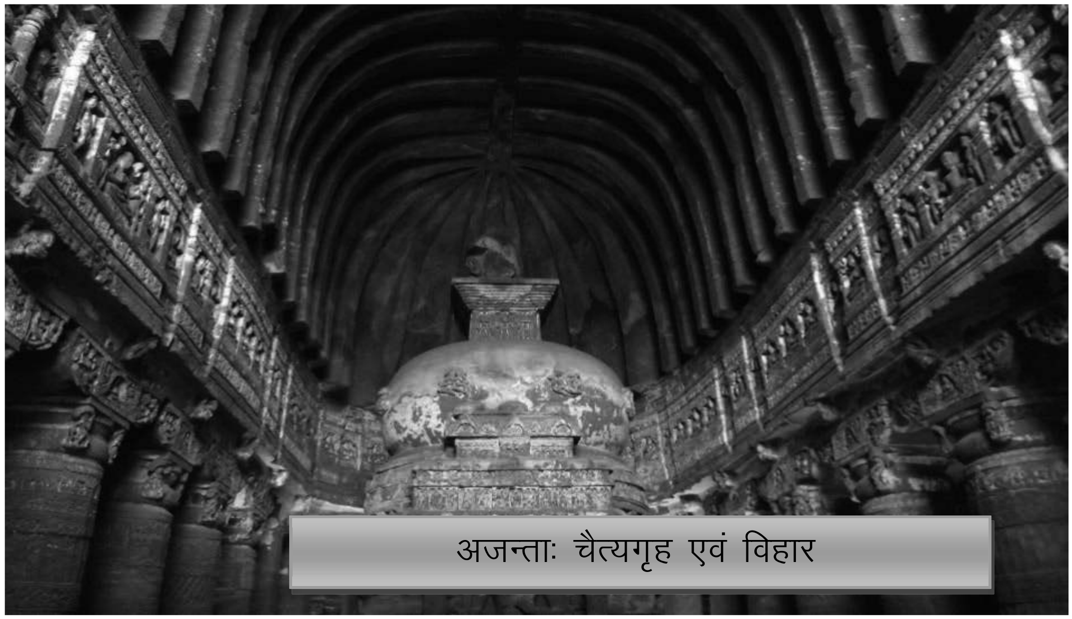

अजन्ताः चैत्यगृह एवं विहार

दूसरे चरण की गुफाओं की खुदाइयाँ लगभग तीन शताब्दियों के बाद की गयीं। इस चरण को प्रायः महायान चरण के रूप में जाना जाता है। जो बौद्ध धर्म का दूसरा बड़ा भाग है, जो बदलाव को स्वीकार करता है एवं बुद्ध को सीधे मानव आदि रूप में चित्रों या शिल्पों में दर्शित करने की अनुमति देता है। कई लोग इस चरण को वाकाटक चरण कहते हैं। इस द्वितीय चरण की निर्माण तिथि कई शिक्षाविदों में विवादित है। बहुसंख्यक विद्वान इसे पाँचवीं शताब्दी का मानते हैं। वॉल्टर एम० स्पिंक, एक अजंता गुफा विशेषज्ञ के अनुसार महायन गुफाएँ 462–480 ई० के बीच निर्मित हुई थी। महायन चरण की गुफाएँ 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8,

11, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, एवं 29 है।

गुफा संख्या 8 को लम्बे समय तक हीनयान चरण की गुफा समझा गया, किन्तु वर्तमान में तथ्यों के आधार पर इसे महायन घोषित किया गया है।

हीनयान चरण में दो चैत्यगृह मिले थे, जो गुफा संख्या 9 व 10 में थे। इस चरण की गुफा संख्या 12, 13, 15 विहार हैं। महायान चरण में तीन चैत्य गृह थे, जो संख्या 19, 26, 29 में थे। अन्य सभी गुफाएँ 1–3, 5–8, 11, 14–18, 20–25, व 27–28 विहार हैं। खुदाई में मिले विहार कई नापों के हैं, जिनमें सबसे बड़ा 52 फीट का है, प्रायः सभी वर्गाकार हैं। इनके रूप में भी भिन्नता है। कई साधारण हैं, तो कई अलंकृत हैं, कुछ में द्वार मण्डप बने हैं, तो कई के नहीं बने हैं। सभी विहारों में एक आवश्यक घटक है, एक वृहत हॉल या मण्डप। वाकाटक चरण के कई विहारों में पवित्र स्थान नहीं बने हैं, क्योंकि वे केवल धार्मिक सभाओं एवम् आवास मात्र हेतु बने थे बाद में उनमें पवित्र स्थान जोड़े गये। फिर तो यह एक मानक बन गया। इस पवित्र स्थान में एक केन्द्रीय कक्ष में बुद्ध की मूर्ति प्रायः धर्म–चक्र–प्रवर्तन मुद्रा में बैठे हुए होती थी। जिन गुफाओं में नवीनतम विशेषताएँ हैं, वहाँ किनारे की दीवारों, द्वार मण्डपों पर और प्रांगण में गौण पवित्र स्थल भी बने दिखते हैं। कई विहारों के दीवारों के फलक नक्काशी से अलंकृत हैं। दीवारों और छतों पर भित्ति चित्रण किया हुआ है।

प्रथम शताब्दी में हुए बौद्ध विचारों में अन्तर से, बुद्ध को देवता का दर्जा दिया जाने लगा और उनकी पूजा होने लगी। परिणामतः बुद्ध को पूजा–अर्चना का केन्द्र बनाया गया, जिससे महायान की उत्पत्ति हुई। पूर्व में, शिक्षाविदों ने गुफाओं को तीन समूहों में बाँटा था, किन्तु साक्ष्यों को देखते हुए और शोधों के चलते उसे नकार दिया गया। उस सिद्धान्त के अनुसार 200 ई० पूर्व से 200 ई० तक एक समूह, द्वितीय समूह छठी शताब्दी का और तृतीय समूह सातवीं शताब्दी का माना जाता था।

अजंता एक प्रकार का महाविद्यालय मठ था। हेनत्सांग बताता है कि दिन्नाग, एक प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक, तत्वज्ञ, जो कि तर्कशास्त्र पर कई ग्रन्थों के लेखक थे, यहाँ रहते थे। यह अभी अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित होना शेष है। अपने चरम पर विहार सैकड़ों लोगों को समायोजित करने की सामर्थ्य रखते थे। यहाँ शिक्षक और छात्र एक साथ रहते थे। यह अति दुःखद है कि कोई भी वाकाटक चरण की गुफा पूर्ण नहीं है। यह इस कारण हुआ कि वाकाटक वंश के शासक एकाएक शक्तिविहीन हो गया, जिससे उसकी प्रजा भी संकट में आ गयी। इसी कारण सभी गतिविधियाँ बाधित होकर एकाएक रूक गयीं। यह समय अजंता का अंतिम काल रहा।

अश्वनाल आकार की ढाल पर पूर्व की ओर प्रथम गुफा है। स्पिंक के अनुसार इस स्थल पर बनी अंतिम गुफाओं में से एक है और वाकाटक चरण के

समाप्ति की है। हालाँकि कोई शिलालेखित साक्ष्य उपस्थित नहीं हैं फिर भी यह माना जाता है कि वाकाटक राजा हरिसेन इस उत्तम संरक्षित गुफा के संरक्षक रहे हों। इसका प्रबल कारण यह है कि हरिसेन आरम्भ में अजंता के संरक्षण में सम्मिलित नहीं था, किन्तु लम्बे समय तक इनसे अलग नहीं रह सका, क्योंकि यह स्थल उसके शासन काल में गतिविधियों से भरा रहा।

इस गुफा में अत्यंत विस्तृत नक्काशी का कार्य किया गया है, जिसमें कई अति उभरे हुए शिल्प भी हैं। यहाँ बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कई घटनाएँ अंकित हैं, साथ ही अनेक अलंकरण नमूने भी हैं। इसका द्वि–स्तंभी द्वार–मण्डप, जो उन्नीसवीं शताब्दी तक दृश्य था (तब के चित्रानुसार), वह अब लुप्त हो चुका है। इस गुफा के आगे एक खुला स्थान था, जिसके दोनों ओर खम्भेदार गलियारे थे।

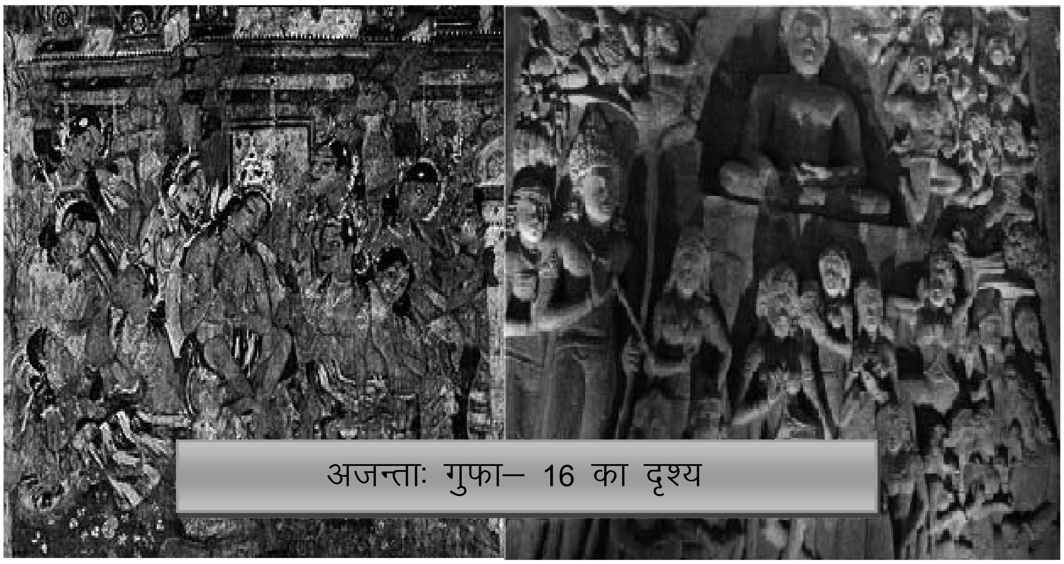

अजन्ताः गुफा– 16 का दृश्य

इसका स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा था। इसके द्वार मण्डप के दोनों ओर कोठियाँ हैं। इसके अन्त में खम्भेदार प्रकोष्ठों की अनुपस्थिति बताती है कि यह मण्डप अजंता के अन्तिम चरण के साथ नहीं बना था, जब कि खम्भेदार प्रकोष्ठ एक नियमित अंग बन चुके थे। पोर्च का अधिकांश क्षेत्र कभी मुराल से भरा रहा होगा, जिसके कई अवशेष अभी भी शेष हैं। यहाँ तीन द्वार पथ हैं, एक केन्द्रीय व दो किनारे के। इन द्वारपथों के बीच दो वर्गाकार खिड़कियाँ तराशी हुई है, जिनसे अंन्दर का भाग उज्ज्वलित होता था।

महाकक्ष (हॉल) की प्रत्येक दीवार लगभग 40 फीट लम्बी और 20 फीट ऊँची है। बारह स्तम्भ अन्दर एक वर्गाकार कॉलोनेड बनाते हैं, जो छत को सहारा देते हैं, साथ ही दीवारों के साथ–साथ एक गलियारा–सा बनाते हैं। पीछे की दीवार पर एक गर्भगृहनुमा छवि तराशी गयी है, जिसमें बुद्ध अपनी धर्म–चक्र–प्रवर्तन मुद्रा में बैठे दर्शित हैं। पीछे, बायीं एवं दायीं दीवार में चार–चार

कमरे बने हैं। यह दीवारें चित्रकारी से भरी हैं, जो कि संरक्षण की उत्तम अवस्था में हैं। दर्शित दृश्य अधिकतर उपदेशों, धार्मिक एवम् अलंकरण के हैं। इनके विषय जातक कथाओं, गौतम बुद्ध के जीवन, आदि से सम्बन्धित हैं।गुफा संख्या 1 से

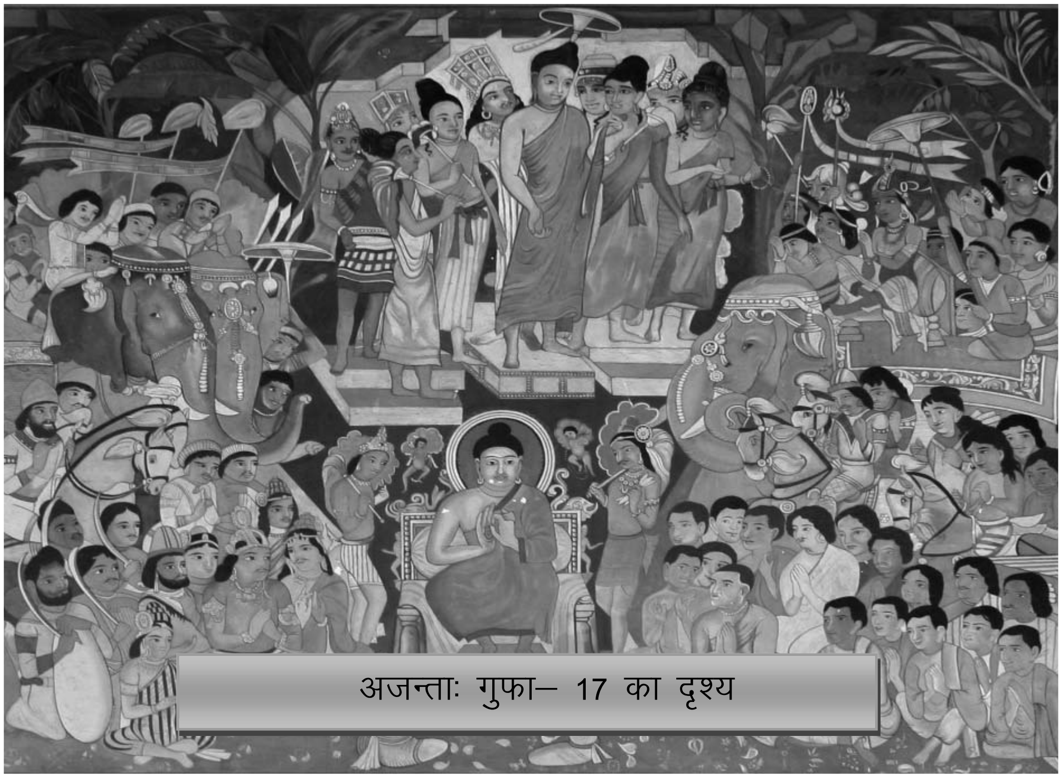

अजन्ताः गुफा– 17 का दृश्य

लगी गुफा सं० 2, दीवारों, छतों एवं स्तम्भों पर अंकित अपनी चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध है। यह अत्यन्त ही सुन्दर दिखती है एवम् गुफा संख्या एक के लगभग समान ही दिखती है, किन्तु संरक्षण बेहतर स्थिति में है। इस गुफा में दो द्वार–मण्डप हैं, जो कि संख्या 1 से बहुत अलग है। बल्कि फलकों की नक्काशी भी उससे अलग दिखती है। इस गुफा को सहारा दिये दो अच्छे खासे मोटे स्तम्भ हैं, जो कि भारी नक्काशी से अलंकृत हैं। हाँ, आकार, नाप एवम् भूमि योजना में अवश्य यह पहली गुफा से काफी मिलती है।सामने का पोर्च दोनों ओर स्तम्भों से युक्त प्रकोष्ठों से युक्त है। पूर्व में रिक्त छोड़े स्थानों पर बने कमरे आवश्यक होने पर बाद में स्थान की आवश्यकता होने पर बने, क्योंकि बाद में आवास की अधिक आवश्यकता बढ़ी। सभी बाद की वाकाटक निर्माणों में, पोर्च के अन्त में प्रकोष्ठ आवश्यक अंग बन गये। इसकी छतों और दीवारों पर बने भित्ति चित्रों का पर्याप्त मात्रा में प्रकाशन हुआ है। इनमें बुद्ध के जन्म से पूर्व बोधिसत्व रूप के अन्य जन्मों की कथाएँ हैं। पोर्च की पीछे की दीवार के बीच एक द्वार–पथ है, जिससे महाकक्ष (हॉल) में प्रवेश होता है। द्वार के दोनों ओर वर्गाकार चौड़ी खिड़कियाँ हैं,जो प्रचुर

प्रकाश उपलब्ध कराती हैं। ''नेशनल ज्यॉग्राफिक '' के अनुसारः आस्था का बहाव ऐसा था कि प्रतीत होता है, जैसे शताब्दियों तक अजन्ता समेत, लगभग सभी बौद्ध मन्दिर, उस समय के बौद्ध मत के शासन और आश्रय के अधीन बनवाये गये हों।

5.7 भाजा

भाजा की गुफाएं (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की गुफाएं) भारत के पुणे शहर के पास मुंबई–पुणे एक्सप्रेस वे पर स्थित हैं। जो भाजा गाँव से 400 फीट ऊपर हैं। यह एक महत्वपूर्ण प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर (अरब सागर के पूर्व की ओर दक्कन पठार) स्थित है। ये गुफाएं लकड़ी की वास्तुकला की प्रतिकृति लगती है। गुफा (विहार– गुफा 12) के सामने एक स्तंभों वाला बरामदा है और यह अद्वितीय नक्काशी से सुसज्जित है। घोड़े की नाल वाली मेहराबदार छत के साथ, लकड़ी की वास्तुकला के प्रारंभिक विकास का एक अच्छा उदाहरण है। चैत्यगृहयहॉ की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है।

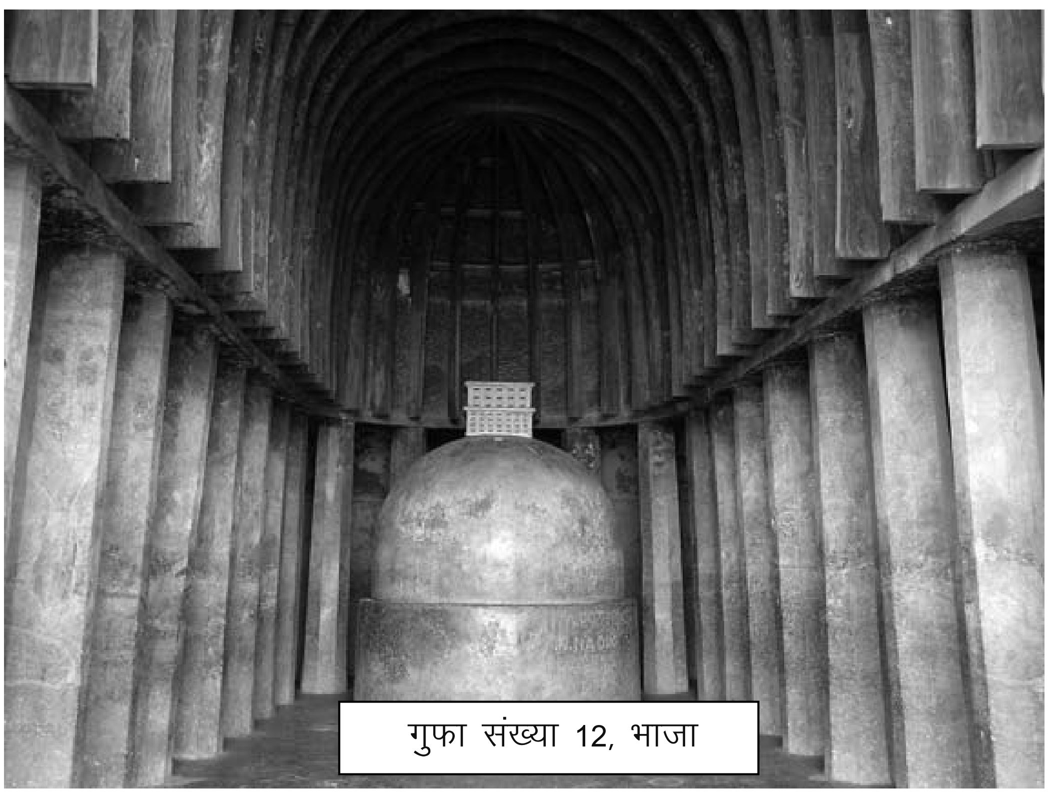

गुफा संख्या 12, भाजा

भाजा की गुफाएं, कार्ले गुफाओं के वास्तुशिल्प की बनावट के समान हैं। सबसे प्रभावशाली स्मारक चौत्यगृह / चैत्यगृह है, जो एक खुले, घोड़े की नाल के समान बने धनुषाकार प्रवेश द्वार के साथ प्राप्त हुआ है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के

अनुसार भाजा का चैत्यगृह सबसे प्रमुख है। अन्य गुफाओं में एक गुफा और गलियारा है, एक गुफा में एक ठोस स्तूप है और गलियारा गुफा के चारों ओर चक्कर लगाता है, जो परिक्रमा पथ का काम करता है।

चैत्यगृह में कुछ बुद्ध की छवियाँ हैं। एक कुंड शिलालेख दूसरी शताब्दी ईस्वी के एक दाता, महारथी कोसिकिपुता विह्नुदता का नाम दर्शाता है। एक लकड़ी के बीम पर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के दो और शिलालेख दर्ज हैं, जो इंगित करता है कि गुफाएँ कम से कम 2200 वर्षों से मौजूद हैं। आठ शिलालेख गुफाओं में पाए गए है जो कुछ दानदाताओं के नाम दे रहे हैं।

मूर्तियों में विस्तृत सिराभूषण, मालाएं और आभूषण शामिल हैं या हो सकता है कि उन्हें मूल रूप से चमकीले रंगों से रंगा गया हो लेकिन बाद में प्लास्टर से ढक दिया गया हो। प्रारंभिक बौद्ध धर्म की विशेषता, शुरुआत में गुफाओं में प्रतीकात्मक बुद्ध प्रतिक था, चौथी ई.पू. के बाद बुद्ध को भौतिक रूप में भी चित्रित किया गया। आखिरी गुफा के पास एक झरना है, जो मानसून के मौसम में नीचे एक छोटे से तालाब में बहता है।

गुफा संख्या 14 यह अनियमित विहार है, 14 फीट वर्गाकार, इसमें प्रत्येक तरफ दो कक्ष और पीछे की ओर तीन कक्ष हैं। कक्ष के सभी दरवाजों पर चैत्य खिड़की सजावटी है।गुफा संख्या–9 में आभूषण, टूटे हुए जानवरों की आकृतियाँ एवं बरामदा सामने की तरफ है। यह पांडवलेनी गुफाओं पर आठवीं गुफा के समान है

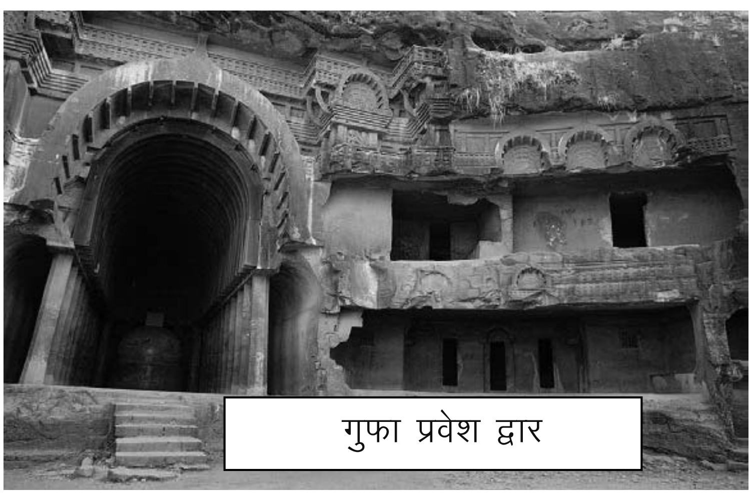
गुफा प्रवेश द्वार

गुफा संख्या–12 में भाजा गुफाओं का चैत्य शायद सबसे पुराना जीवित चैत्य हॉल है, जिसका निर्माण दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में किया गया था। इसमें स्तूप के साथ एक अर्धवृत्ताकार हॉल शामिल है। स्तंभ लकड़ी के स्तंभों की नकल में अंदर की ओर झुके हुए हैं, जो छत को ऊपर रखने के लिए संरचनात्मक रूप से आवश्यक होंगे। दीवारों को मौर्य शैली में पॉलिश किया गया है। इसके सामने

एक बड़ा लकड़ी का मुखौटा था, जो अब पूरी तरह से नष्ट हो चुका है। एक बड़ी घोड़े की नाल के आकार की खिड़की, चैत्य–खिड़की, मेहराबदार द्वार के ऊपर स्थापित की गई थी और पूरे पोर्टिको–क्षेत्र को बालकनियों और खिड़कियों के साथ एक बहुमंजिला इमारत की नकल करने के लिए उकेरा गया था और नीचे के दृश्य को देखने वाले पुरुषों और महिलाओं की मूर्तियां थीं। इससे एक प्राचीन भारतीय हवेली का आभास हुआ। चैत्य 26 फीट 8 इंच चौड़ा और 59 फीट लंबा है, जिसके पीछे अर्ध–गोलाकार भाग है और 3 फीट 5 इंच चौड़ा गलियारा है, जो नाभि से 27 अष्टकोणीय स्तम्भों द्वारा अलग किया गया है। ये स्तम्भ 11 फीट 4 इंच ऊंचे हैं। यह कोंडानें की गुफाओं से मिलता जुलता है। स्तंभ में बुद्ध के 7 अलग–अलग प्रतीक हैं जो पुष्प, रूप, कलियाँ, पत्तियाँ, पंखे इत्यादि में दर्शाए गए हैं।

गुफा संख्या 13 को देखने से ऐसा लगता है कि यह नष्ट हो गया है। प्राचीन काल में इसका निर्माण लकड़ी का रहा होगा। यह 30 फीट लंबा और 14.5 फीट गहरा है। यह एक रेल पैटर्न में है, जिसमें पीछे कुछ कोठारऔर एक बड़ा दरवाजा लगा है। गुफा संख्या 14 उत्तर दिशा की ओर 6 फीट 8 इंच चौड़ी और 25.5 फीट गहरी है, जिसमें 7 कक्ष हैं। पत्थर की बेंचें, चौकोर खिड़कियाँ, पत्थर के बिस्तरकृत कोठरियाँ है।

गुफा संख्या 15, गुफा संख्या 14 के दक्षिण में है, जिसमें सीढ़ियों से पहुंचा जा सकता है। यह 12–15 फीट चौड़ा और 10 फीट गहरा एक छोटा विहार है। इसमें दो अर्धवृत्ताकार आले और दाहिनी ओर एक बेंच है। गुफा संख्या 16 के अग्रभाग में 3चैत्य, मेहराब रेल पैटर्न पर बने है। गुफा संख्या 17, 18.5 फीट लंबा और 12.5 फीट गहरा एक छोटा विहार है, जिसमें 5 कक्ष हैं, एक कक्ष में एक चौकी है। इसमें दो शिलालेख हैं, जिनमें से एक क्षतिग्रस्त है। गुफा संख्या 18 एक बरामदे वाला मठ है। दरवाजे के दोनों ओर संरक्षक की आकृतियाँ हैं। इस गुफा में सूर्य और इंद्र हाथी पर सवार हैं।

5.8 सारांश

शैलोत्खनित स्थापत्य की शुरुआत तत्कालीन शासकों द्वारा भिक्षुओं को आश्रय देने के प्रक्रम में खुदाई जानी प्रारंभ हुई, जिसकी झलक अशोक के शासन काल में दशरथ द्वारा बराबर की पहाड़ी पर आजीवक संप्रदाय के अनुयायियों के लिए खुदवाई गई गुफाओं में दिखाई पड़ती हैं। इसी क्रम में दक्कन भारत के क्षेत्र

में बहुत सी गुफाएं बौद्ध भिक्षुओं के लिए खुदाई जाती है, जिनमें चैत्यगृह और विहार प्रमुख थे। इन चैत्यगृह और विहार से संबंधित स्थापत्य अजंता, कार्ले और भाजा से प्राप्त हुए है। जिसमे कार्ले से सबसे बड़े चैत्यगृह की प्राप्ति होती है। जो शैलोत्खनित स्थापत्य के विकास क्रम का चरमोत्कर्ष था ।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- फर्गुसन. "हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इस्टर्न आर्किटेक्चर"
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

5.10 बोधप्रश्न

1. शैलोत्खनित स्थापत्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए चैत्यगृह और विहार की वास्तुगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. अजन्ता के चैत्यगृह और विहार की विवेचना कीजिए।
3. कार्ले और भाजा के चैत्यगृह और विहार का वर्णन कीजिए।

इकाई–6 : शुंग–सातवाहन मूर्तिकला–लोक और शाही परंपराएं, टेराकोटा और स्तूप मूर्तियां, अमरावती

इकाई की रुपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 शुंगयुगीन मूर्ति कला

6.4 शुंगकालीन मूर्तिकला में प्रतीक

6.5 शुंगकालीन मूर्तियों की तकनीक एवं लक्षण

6.6 सातवाहन युगीन मूर्तिकला

6.7 अमरावती शैली

6.8 अमरावती स्तूप

6.9 सारांश

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.11 बोधप्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मौर्यों के बाद उत्तर भारत में (184 ईसा पूर्व) मुख्यतः सत्ता में शुंग रहे। सातवाहनों के पास दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र था। इन दोनों के शासनकाल में कला रचनात्मक गतिविधि के चरण में पहुंची, जिसने बौद्ध धर्म के सहारे और उसको मुख्य स्त्रोत बनाते हुए घरेलू कलात्मक आंदोलन का एक साथ प्रतिनिधित्व किया। इस युग को प्रारंभिक कला के रूप में कला के इतिहास का दौर कहा जाता है। शुंग–सातवाहन युग की कला का प्रभाव उत्तर भारत के बोधगया, सांची और भरहुत में बौद्ध आश्रमों के प्रवेश द्वार और रेलिंग में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है, जिन्हें स्तूप कहा जाता है, तो पश्चिमी भारत में पीतलखोरा, कोण्डाने और भाजा में पत्थर निर्मित गुफा–आश्रयों के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित हैं।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

शुंग–सातवाहन मूर्तिकला को।

शुंग कालीन कला के बारे में।

अमरावती शैली को।

अमरावती स्तूपवास्तु के बारे में।

6.3 शुंगयुगीन मूर्तिकला

प्राचीन भारतीय स्थापत्य व कला का विधिवत अन्वेषण 19वीं शताब्दी में शुरू हुआ, जिसमें कला मर्मज्ञ आनंद कुमार स्वामी तथा स्टेला क्रेमरिश जैसे विद्वानों ने भारतीय कला के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया। मौर्य काल में कला संबंधी गतिविधियों का संचालन राज्य द्वारा किया जाता था, इसलिए मौर्य कला को राजकीय कला कहा जाता है। मौर्योत्तर काल में कला इस अवधारणा को नकारती है क्योंकि इस काल में कला को समाज के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त था। मौर्योत्तर काल में धार्मिक गतिविधियों के बढ़ते संस्थानीकरण तथा उसे समाज के विभिन्न तत्वों द्वारा प्राप्त संरक्षण के आधार पर इस काल की कला दरबारी पृष्ठ पोषण पर आश्रित ना रहकर लौकिक जीवन यात्रा से संबंधित हो गई। शुंग कला समकालीन भारतीय जीवन तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण के विवेचन में पूर्ण सक्षम है यह आदर्शवाद नहीं वरन यथार्थवाद पर आधारित है। अशोक ने जिस उत्सव एवं समाज का विवेचन किया था, जिसे उसने कर्मकांड पूर्ण कहकर उसके स्थान पर धम्म उत्सव का प्रचार किया था। वह उत्सव एवं सम्मेलन आगे चलकर शुंग कला का एक अभिन्न अंग बना। इस कला में नृत्य गीत एवं मादक उन्मत्त आह्लाद का सजीव चित्रण हुआ। इस प्रकार के चित्रण का शुभारंभ महात्मा बुद्धके जीवन की विभिन्न घटनाओं से शुरू हुआ, जिसकी परिणति पौराणिक कथाओं में प्राप्त होती है। बौद्ध एवं ब्राह्मण ग्रंथों में स्वर्गीय अप्सरा द्वारा मुनियों के ध्यान को भंग करने का विवरण प्राप्त होते हैं, जिसका शुंग काल के कलाकारों द्वारा सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया। इस काल में भव्य तथा स्थाई धार्मिक संरचना के निर्माण की प्रथा का सूत्रपात हुआ स्थापत्य तथा कलात्मक अभिव्यक्तियों का स्वरूप मुख्यता धार्मिक था। शुंगकालीन कला में लौकिक जीवन से संबंधित धार्मिक स्थापत्य के संपूर्ण उदाहरण कम ही मिलते हैं। इस काल में अधिकांश उदाहरण स्तूप, चैत्य तथा बिहार के हैं, जो प्रधानता बौद्ध धर्म से संबंधित है

हालांकि स्तूपो के साथ जैन धर्म का भी संबंध रहा है। मौर्योत्तर काल को बौद्ध स्थापत्य विस्तारीकरण का काल कहा जा सकता है इसमें कोई संदेह नहीं ।

6.4 शुंगकालीन मूर्तिकला में प्रतीक

समकालीन मूर्तियों में प्रतीकात्मकता इस काल की प्रमुख विशेषता रही है। बौद्ध धर्म का भारत के विभिन्न भागों में तेजी से प्रसार हो रहा था, जिसमें जातक कथाओं का मूर्तिकला के रूप में प्रदर्शन अत्यधिक सहायक हुआ इसीलिए संभवतः बुद्ध मूर्तियों को इस कला में स्थान दिया गया। जातक कथाओं में भगवान बुद्ध का नाम बार–बार आता है परंतु मूर्तिकला में जातक कथाओं का निर्माण एवं उसमें भगवान बुद्ध का प्रदर्शन समकालीन कलाकारों के समक्ष एक विशेष समस्या थी क्योंकि भगवान बुद्ध को उस समय हीनयान प्रथा में इतना पवित्र माना जाता था कि उनको मानव रूप में दिखाना अनुचित था। इसलिए तत्कालीन कला में भगवान बुद्ध को विभिन्न प्रतीकों की सहायता से दिखाया गया, जिसमें उनके संपर्क में आने वाली मुख्य वस्तु जैसे बोधिवृक्ष, चरण पादुका, पद्मासन इत्यादि प्रतीक को शुंग कालीन मूर्तिकला में प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त वैदिक यज्ञ में प्रयुक्त प्रतीकों उपनिषदों के प्रतीक जैसे श्री लक्ष्मी, धर्म चक्र, त्रिरत्न, कल्पवृक्ष, मकर, कच्छप, यक्ष–यक्षिणी, नाग–नागिन, वृक्ष तथा विभिन्न पशु इत्यादि के साथ–साथ देवप्रसाद, पुष्प मालाएं, कल्पलता, सरोवर, रत्न मालाएं आदि का अभिप्राय भी शुंग कालीन मूर्तियों में किये गए, जो उस काल की धार्मिक मान्यताओं के सूचक हैं। पशु आकृतियों को भी शुंग कला में धार्मिक प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है, जिसमें सिंह, गज, मृग, अश्व, गौ इत्यादि के साथ पशुपति का भी है।

6.5 शुंगकालीन मूर्तियों की तकनीक एवं लक्षण

शुंग कालीन कलाकारों ने मूर्ति निर्माण के दृष्टिकोण से मौर्यों से पृथक तकनीक का अनुगमन किया। इस युग की मूर्तियां सम्मुख दर्शन में सफल होने के कारण अपनी पूर्ववर्ती मौर्य कला की चतुर दर्शन अथवा त्रिदिशात्मक दर्शन से स्पष्टता भिन्न हैं।भित्ति पर यह मूर्तियां इतना कम उभरी है कि जैसे पाषाण खंड पर छेनी या छुरी से रेखाएं खींची गई है, जिन्हें दर्शक सूक्ष्मता से ही देख सकता है। कला में प्राकृतिक सहजता है। दृश्यों के अंकन में आडंबर का अभाव है। स्त्री–पुरुष मूर्तियों में आदिवासियों की सरलता प्राप्त होती है जो प्रकृति से ओत प्रोत है। वृक्ष, पशु एवं पक्षी भी स्वाभाविक मुद्राओं में चित्रित हैं। यह स्वयं कोई भाव व्यक्त ना करते हुए भी दर्शक को भाव–विभोर होने के लिए प्रेरित करते हैं। संपूर्ण शुंग कला बौद्ध धर्म से संबंधित तथ्यों से अंकित है किंतु कहीं भी इसमें

महात्मा बुद्ध की मूर्ति नहीं है। इसके स्थान पर उनसे संबंधित प्रतीकों का इस्तेमाल किया गया है जैसे वज्रासन चरण चिन्ह, चक्र, स्तूप बोधिवृक्ष, गज इत्यादि। चंद्रसुदर्शना यक्षिणी की मूर्तियों के अंकन में एक दिव्य शांति अनासक्त भाव, नैसर्गिक पवित्रता, गंभीरता प्राप्त होती है, जिससे मूर्तिकला में एक सहज आकर्षण उत्पन्न होता है। समकालीन मूर्तियां जनजीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं जैसे लोगों का घर, देवताओं की मूर्तियां, साधुओं के आश्रम, परिवहन के साधन वेशभूषा, वस्त्र–आभूषण इत्यादि। डॉ. कुमार स्वामी की अवधारणा है कि इन चित्रों का प्रधान केंद्र बिंदु ना तो आध्यात्मिक है और ना ही आचारवादी बल्कि यह संपूर्ण मानव जीवन से संबंधित हैं।

6.6 सातवाहन युगीन मूर्तिकला

भारतीय मूर्तिकला के विकास में सातवाहन युग का विशिष्ट योगदान रहा है। सातवाहन काल में मूर्तिकला को अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला था, जिसके परिणाम स्वरूप दक्षिण–पूर्वी भारत में अनेक स्तूप और चैत्य का निर्माण हुआ। दक्षिण भारत की आर्थिक संपन्नता और विदेशी व्यापारिक संबंध के फलस्वरूप कला के विकास में समाज के विभिन्न वर्गों का योगदान था। नासिक, कार्ले, अमरावती आदि स्थानों पर मिले अभिलेखों से समाज के लोगों द्वारा कला के विकास हेतु दान देने का उल्लेख मिलता है। यह कैसा युग था, जिसमें उत्तर पथ में शुंग काल ने विकास की गति को तीव्र किया तथा दक्षिण में सातवाहनों ने एक वैभवशाली आंदोलन एवं नवीन मूर्ति शिल्प का उदय किया। इस काल में अनेक श्रेष्ठ टीमों एवं व्यापारियों ने आर्थिक जीवन में प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह किया। उसका प्रत्यक्ष अवलोकन अमरावती स्तूप की मूर्ति कला में परिलक्षित होता है। इस युग में मूर्तिकला की सामग्री गोदावरी और कृष्णा नदियों के मध्य भूभाग से प्राप्त होती हैं। अमरावती नगर के कुछ पूरावशेष द्वितीय सती ईसा पूर्व के काल के हैं। जग्गप्यपेट, भट्टिप्रोलु एवं नागार्जुनी कोंडा आदि प्राचीन नगर जो सभी एक दूसरे के समीप स्थित है। तृतीय सती ईसा पूर्व से लेकर पांचवी सदी ईसवी तक बौद्ध धर्म की कला की महत्वपूर्ण केंद्र थे क्योंकि अमरावती और नागार्जुनकोंडा की कला इस युग की सर्वाधिक विशिष्ट उदाहरण है।

6.7 अमरावती शैली

बौद्ध धर्म तथा बुद्ध की जीवनी पर आश्रित आख्यान से अनुप्राणित कला शैली जो दक्षिण भारत में विकसित हुई, अमरावती शैली कहलायी। उत्तर भारत के गांधार तथा मथुरा कला के समान अमरावती मूर्ति शिल्प में चित्रार्ध की प्रधान उपस्थिति मिलती है। गांधार तथा मथुरा घराने के समान अमरावती मूर्ति शिल्प में

भी ऊंचे रिलीफ कार्य में अर्थात पटभूमि से दृश्यावली को बहुत ऊंचा रखने में विशेष कुशलता दृष्टिगोचर होती है। विभिन्न प्रकार के चरित्रों का समावेश करके दृश्यवल्ली को पूरी तरह भर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति शिल्प कसा हुआ है। नर–नारियों की मूर्तियों में कोमलता, मृदुलता, धूप तथा छाया की व्यंजना नत तथा उन्नत का विभाजन निश्चित रूप से मिलता है। शरीर को लंबा करके दिखाने की प्रवृत्ति ने अमरावती शैली को विशिष्टता प्रदान किया है। मूर्तिकला के रेखिक आरोह–अवरोह के प्रति जितना आकर्षण अमरावती की मूर्ति शिल्पी ने किया, वैसा गांधार तथा मथुरा कला में देखने को नहीं मिलता। भट्टिप्रोलू, अमरावती, नागार्जुनकोंडा स्तूप में बुद्ध का अंकन प्रतीक स्वरूप के साथ–साथ मानव मूर्ति के रूप में भी हुआ है जबकि सांची, भरहुत में ऐसा नहीं था।

6.8 अमरावती स्तूप

आंध्र प्रदेश में अमराराम पिया अमरेश्वर का प्रसिद्ध शिव तीर्थ ही अमरावती नाम से प्रसिद्ध है। अमरावती के मूल स्तूप का निर्माण सम्राट अशोक ने करवाया था। यहां से अशोक स्तंभ का एक खंड मिलता है। सातवाहन काल में यहां महास्तूप का निर्माण हुआ, जिसे महाचैत्य कहा गया। वशिष्ठी पुत्र पुलुमावि के समय इसका जीर्णोद्धार हुआ तथा इसके चारों तरफ पाषाण वेदिका निर्मित हुई और इसे कलाकृतियों द्वारा सजाया गया। इसमें बुद्ध के प्रतिकों एवं मूर्तियों दोनों प्रकारों से व्यक्त किया गया है।अतः यह भरहुत, सांची, मथुरा एवं गांधार कला का संक्रांति काल माना जाता है। बुद्ध जन्म के प्रतीक हाथी को जिस तरह यहां उकेरा गया है वैसा अन्यत्र अज्ञात है। एक ही सिलापट्ट के एक भाग में बोधिसत्व से अवतरित होने की प्रार्थना की जा रही है, मध्य भाग में वाद्य सहित एक रथ पर सवार हाथी को ले जा रहा है तथा तीसरे भाग में माया देवी का स्वप्न उत्कीर्ण है। इस स्तूप का निर्माण मुख्यता 200 ईसा पूर्व से 250 ईस्वी के मध्य 4 चरणों में हुआ। द्वितीय चरण (100 ईसा पूर्व से 100 ईस्वी) में यहां बुद्ध का अंकन प्रतीक तथा मूर्ति दोनों रूपों में हुआ। तृतीय चरण 150 ईस्वी से 200 ईस्वी तक सातवाहन काल का था, जिसमें वास्तु तथा शिल्प की दृष्टि से स्तूप का अधिकतम संवर्धन किया गया, जो सातवाहन कला के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है।

पुलुमावि के अतिरिक्त यज्ञ श्रीशतकर्णी तथा श्रीशतकर्णी के नाम लेख पर अंकित हैं। इनमें से यज्ञ श्रीशतकर्णी का काल इस महास्तूप का चरमोत्कर्ष काल था। चतुर्थ चरण 200 से 250 ईस्वी में इच्छवाकु वंशी राजाओं द्वारा इसका परीक्षण किया गया। एक अभिलेख में पांचवी शताब्दी के वाकाटक वंश का उल्लेख है। तत्पश्चात लम्बे अंतराल के पश्चात 1182 व 1234 ईसी के लेख अमृतसर

मंदिर में अंकित हैं, जिनमें महास्तूप हेतु दान का अंकन है अर्थात 13वीं शताब्दी तक यह सुरक्षित अवस्था में था। अमरावती शिलापट्टों की नक्काशी में तत्कालीन जनजीवन की सर्वांगीण झांकी प्रदर्शित हुई है। निर्धन व्यक्ति की कुटिया से लेकर भिक्षु के दो मंजिलें बिहार तथा राजमहल सभी उत्कीर्ण किए गए हैं। के0डी0 वाजपेई के अनुसार यह महास्तूप भारतीय वास्तु कला की उज्जवलतम कृति है। कुमार स्वामी इस शिल्पकला को अत्यंत विलासी तथास्तु कुमार पुष्प कहते हैं। अमरावती के शिलापट्टों में सांची की भांति अनेक दान सूचक लेख है। इन दानदाताओं में पाटलिपुत्र, राजगिर, तमिल देश आदि के गहपति उपासक हैरणयिक पानी घर के अधिकारी भद्र निगम के श्रेष्ठ अत्यादि है।

प्रमुख स्तूप की न केवल वेदिका, प्रदक्षिणापथ अपितु गुंबद भी संगमरमर की पत्तियों से जड़ा गया था। इसका केंद्रीय हिस्सा 4 सीटों से निर्मित अंडे के शीर्ष भाग पर एक मंजूषा थी, जिसके ऊपर लोहे का छत्र लगा था। आयाक स्तंभ इस स्तूप का विशिष्ट लक्षण है। आयाक स्तंभ के शिलापट्टों की पंक्ति में चक्र पट, स्तूप पट, बुद्ध पट, पूर्ण घट पट, स्वास्तिक पट प्रमुख है। स्तुप की महावेदिका जिसके निर्माण की प्रेरणा आचार्य नागार्जुन से प्राप्त हुई है, जो इस स्तूप का प्रमुख अंग है। बौद्ध प्रतीकों में बुध के पद चिन्ह को भी दिखाया गया हैं। ऐतिहासिक मूर्ति शिल्प में बुद्ध द्वारा नीलगिरी हाथी को वश में करना, अंगुलिमाल डाकू का हृदय परिवर्तन, बुद्ध का अग्नि प्रतिहार हाथियों द्वारा बोधि वृक्ष की पूजा, बुद्ध के भिक्षा पात्र का समारोह सहित देवलोक को परिगमन, माया देवी का सपना, मार विजय, नागो द्वारा रक्षित रामग्राम स्तूप, अजातशत्रु द्वारा बुद्ध के दर्शन, सम्राट उदयन द्वारा अपने भयभीत अंतापुर के ऊपर बाण वृष्टि के दृश्य प्रमुख हैं। क्षेमेंद्र की अवदानकल्पलता में वर्णित है कि छंद जातक, विदुर पंडित जातक, हंस जातक, शिवी जातक, चंपे जातक, पद्माकमार आदि के दृश्यों की प्रथम प्रस्तुति अमरावती में हुई है। अमरावती का स्तूप अत्यंत विशाल है। इसके अंड का भूमि पर व्यास 160 फुट तथा ऊंचाई 90 से 100 फुट के आसपास थी। इसमें तोरण द्वार के स्थान पर भारी–भारी 2 खंभे थे, जिनके ऊपर सिंह आकृतियां थी। अमरावती स्तूप की एक अन्य विशेषता यह थी कि इसमें स्तूप को ही अलंकृत किया गया है। बहुपुट चैत्य तथा चापाल चैत्य इसी स्तूप के अंग हैं।स्तूप के तक्षण का कार्य कुशल कारीगरों की देखरेख में किया गया है।

6.9 सारांश

मौर्य काल के बाद शुंग–सातवाहन काल में कला और स्थापत्य के क्षेत्र में अत्यधिक विकास दिखाई देता है। इसमें वास्तु स्थापत्य के साथ–साथ मूर्तिकला

के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। शुंग काल में जातक कथाओं में वर्णित दृश्यों को उत्कीर्ण करने का साक्ष्य दिखाई देता है, साथ ही साथ बौद्ध धर्म के प्रतीक चिन्ह जैसे बोधिवृक्ष, चरणपादुका, पद्मासन इत्यादि का शुंग कालीन मूर्ति कला में प्रयोग किया गया। सातवाहन युगीन कला के केंद्र के रूप में अमरावती और नागार्जुनीकोंडा दिखाई पड़ते हैं। सातवाहन काल की महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में देखा जाये तो अमरावती स्तूप का स्थान है। अमरावती स्तूप की स्थापत्य कला में अमरावती शिलापट्टों की नक्काशी तत्कालीन जन जीवन की सर्वांगीण झांकी प्रदर्शित करती है, जो अमरावती की शिल्पकला को चिरस्थायी बनाती है

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- फर्गुसन. "हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इस्टर्न आर्किटेक्चर"
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

6.11 बोधप्रश्न

1. शुंग–सातवाहन मूर्तिकलाका वर्णन कीजिए।
2. शुंग कालीन कला पर प्रकाश डालिए।
3. अमरावती स्तूपवास्तु की विवेचना कीजिए।

इकाई–7 : कुषाण कालीन कला : महायान बौद्ध धर्म और कला, मथुरा एवं गांधार कला

इकाई की रुपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मथुरा शैली

7.3.1 बुद्ध प्रतिमा

7.3.2 जैन प्रतिमा

7.3.3 ब्राह्मण प्रतिमाएं

7.4 गान्धार शैली

7.4.1 बुद्ध की मूर्तियाँ

7.4.2 बोधिसत्व की प्रतिमाएँ

7.4.3 बुद्ध के जीवन व जातक कथाओं के दृश्य

7.5 सारांश

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.7 बोधप्रश्न

7.1 प्रस्तावना

कुषाण साम्राज्य में निर्मित मूर्तियाँ, मूर्तिकला का अद्भुत उदाहरण है। साम्राज्यवादी कुषाण युग, इतिहास का एक महानतम आंदोलन रहा है, यह उत्तर–पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान (वर्तमान अफगानिस्तान) तक फैला था। ईसवीं की पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच कुषाण एक राजनीतिक सत्ता के रूप में विकसित हुए और उन्होंने इस दौरान अपने राज्य में कला का बहुमुखी विकास किया। भारतीय कला जगत् का परिपक्व युग यहीं से प्रारंभ होता है। इस काल में मूर्तिकला की दो शैली का विकास हुआ, जिसमें गांधार और मथुरा मूर्तिकला शैली है।

भारतीय मूर्तिकला के रूप में मथुरा, कला शैली का विशेष महत्व है, यह मौर्योत्तर काल में विकसित हुयी। इस शैली के मूर्तिकारो ने विभिन्न देशी परम्पराओं से इस कला शैली को जन्म दिया। मथुरा उत्तर भारत के सबसे उत्कृष्ट नगरों में

एक था। यह कुषाणों की द्वितीय राजधानी थी। मथुरा व्यापार केन्द्र तथा विविध शिल्पो के केन्द्र के रूप में भी जाना जाता था मथुरा धार्मिक केन्द्र व उत्कृष्ट कलात्मक गतिविधियों के लिए प्रसिद्ध था।

गांधार मूर्तिकला की सबसे उत्कृष्ट मूर्ति वह है– जिसमें बुद्ध को एक योगी के रूप में बैठे हुए दिखाया गया था। एक संन्यासी के वस्त्र पहने उनका मस्तक इस तरह से दिखायी दे रहा है जैसे उसमें आध्यात्मिक शक्ति बिखर रही हो, बड़ी–बड़ी आँखे, ललाट पर तीसरा नेत्र और सिर पर उभार। ये तीनों संकेत यह दिखाते हैं कि वह सब सुन रहे हैं, सब देख रहे हैं और सब कुछ समझ रहे हैं। यद्यपि बुद्ध के ये तीनों रूप विदेशी कला द्वारा भी प्रभावित हैं। बहरहाल शुद्ध रूप से भारतीय प्रतीत होती यह मूर्ति यह दर्शाती है कि कला घरेलू और विदेशी तत्वों का मिलाजुला रूप है। गांधार क्षेत्र की कला के जो महत्त्वपूर्ण तत्व हैं और उनकी जो शक्ति है– वह उत्तर–पश्चिमी भारत की बौद्ध कला में देखी जा सकती है और यह प्राचीन देवताओं का प्रतिनिधित्व एवं उनके रूप दिखाती हैं। इसी तरह का प्रभाव खुदाई से निकले पत्थरों में भी देखा जा सकता है। यह पत्थर चाहे अपनी कलात्मक शैली या अपने दैवीय रूप को दिखाते हों लेकिन उनका रोमन वास्तुकला में साम्राज्यवादी समय से ही गहरा संबंध रहा है। मूर्ति की स्थिति, शरीर का आकार और उसका वास्तु ढांचा स्पष्टतः रोमन मॉडल पर ही आधारित है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

कुषाण काल में महायान बौद्ध धर्म और कला के विकास को।

मथुरा एवं गांधार कला कला के बारे में।

बुद्ध और बोधिसत्व की प्रतिमा लक्षणों को।

बुद्ध के जीवन व जातक कथाओं के दृश्यों के बारे में।

7.3 मथुरा शैली

मथुरा कला शैली भारतीय मूर्तिकला का प्रतिनिधित्व करती है। ईसा काल की प्रथम तीन शताब्दियाँ मथुरा शैली मूर्तिकला का स्वर्णिक काल हैं। महायान बौद्ध धर्म के नये आदर्शों ने तत्कालीन मूर्ति शिल्पकारों को प्रेरित किया था। भारतीय पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, बुद्ध मूर्तियों का निर्माण इस शैली के कलाकारों का महान् योगदान है। इन मूर्तियों में प्रयुक्त पत्थर सफेद–लाल था,

जो शताब्दियों तक अपनी उत्कृष्ट कलात्मक गुणवत्ता के रूप में विद्यमान रहा। जैन शैली द्वारा प्रभावित एक स्तूप की रेलिंग में चित्रित एक आकर्षक महिला की आकृतियां, जो अत्यधिक आभूषणों से युक्त हैं। प्राचीन भारतीय कला की यादगार और उल्लेखनीय कलाकृति सन्यास और धर्मपरायणता के सन्दर्भ में मथुरा की इन मूर्तियों में कहीं भी अश्लीलता और कामोत्तेंजना की भावभंगिमा नहीं दिखायी देती है।

मथुरा शैली में शिल्पकारों के द्वारा सीकरी (मध्य काली़न फतेहपुर सीकरी) के लाल चित्तीदार पत्थर या श्वेत चित्तीदार पत्थर का प्रयोग किया गया था। उत्तर–पश्चिम में विकसित प्रतिमा शास्त्र से यहां की कला प्रभावित तो थी किन्तु इसकी अपनी शैलीगत विशेषताएं थी। बल्कि यह कहा जा सकता है कि मथुरा का पर कोई भी विदेशी प्रभाव नही था। **वेसनगर** सांची व भरहूत में विकसित हो रही कलात्मक पराम्पराओं का इसे और भी परिष्कृत स्तर के रूप में देखा जा सकता है। यक्ष– यक्षीय, नाग–नागीन बुद्ध व बोधिसत्व, जैन तीर्थकर, हिन्दू देवी–देवता जैसी विविध प्रकार की मूर्ति का रूप यहां दिखायी पड़ता है।

7.3.1 बुद्ध प्रतिमा

मथुरा शैली में बनी बैठे हुंए बुद्ध की प्रतिमाएं प्रसिद्ध है, सामान्य रूप में इसमें सिहांसन पर बैठे हुए बुद्ध को अभय मुद्रा में दिखाया गया है। तो केश विहीन या घुंघराले बाल वाले बुद्ध के केश उष्णीष युक्त है। उष्णीष शंख नुमा दिखलायी पड़ता है। उनके पारदर्शी धोती का एक छोर उनके वच्छ को लपेटता है तथा बायें कधें के ऊपर रखा हुआ है। उनके पीछे नखाकार प्रभामण्डल को भी देखा जा सकता है। प्रतिमा के शीर्ष पर पीपल का एक वृक्ष भी बनाया जाता था। इनके दोनों ओर दो बोधिसत्वों की लघु प्रतिमायें या

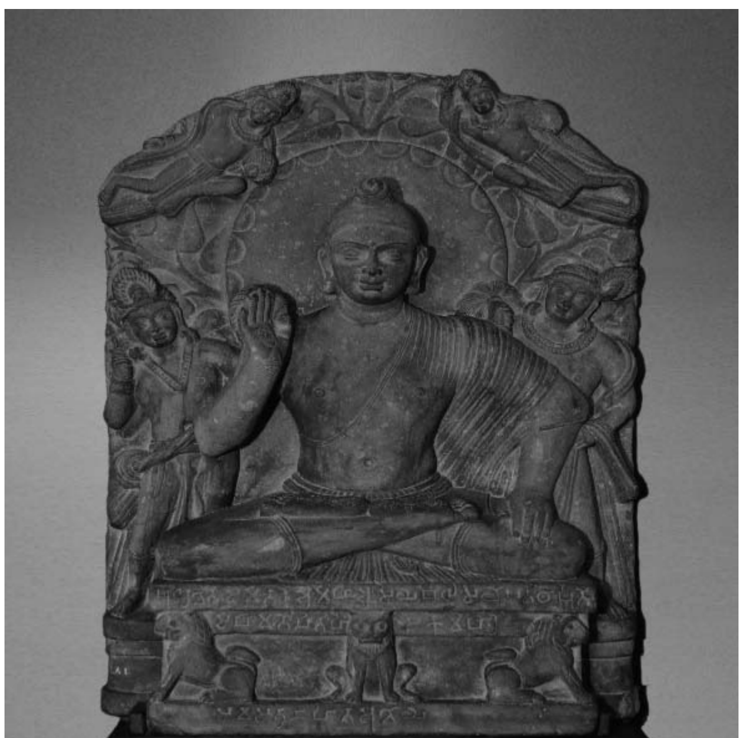

बुद्ध प्रतिमा: मथुरा शैली

इन्द्र व ब्रह्मा की प्रतिमायें होती थी। बोधिसत्वों की स्वतंत्र प्रतिमायें भी बनायी गयी है, जिसमें विशेष रूप से मैत्रेय, वज्रपाणि व अवलोकितेश्वर की प्रतिमायें उल्लेखनीय है। मथुरा के शिल्पकारों ने बुद्ध के जीवन को पत्थरों की नक्काशी में उतारा है। बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा जो सारनाथ में पायी गयी है, वह मूख्य रूप से मथुरा शैली का प्रतिनिधित्व करती है। मथुरा कला में बुद्ध की समस्त प्रसिद्ध मुद्राओं का अंकन किया गया है, जिसमें वरद्हस्त मुद्रा, अभय मुद्रा, धर्मचक्रपर्वतन मुद्रा व भूमिस्पर्श मुद्रा इत्यादि है।

बुद्ध और बोधिसत्व

- सिंहासन पर बैठे भी बुद्ध की प्रतिमाएं
- अभय मुद्रा में
- केस विहीन या घुंघराले बाल उषनिष् युक्त
- पारदर्शी धोती
- प्रभामंडल से युक्त
- वरद हस्त मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा

मथुरा मूर्तिकला शैली

विशेषताएं-:

- भारतीय मूर्तिकला केंद्र
- मौर्य काल में विकसित हुई शैली
- देशी परंपराओं से विकसित कला शैली
- प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र एवं धार्मिक कला केंद्र
- लाल चित्तीदार पत्थर एवं श्वेत चित्तीदार पत्थर का प्रयोग
- वेसनगर सांची और भरहुत में विकसित कला परंपराओं का परिष्कृत रूप
- यक्ष- यक्षीय, नाग-नागिन, बुद्ध- बोधिसत्व , जैन तीर्थंकर और हिंदू देवी देवताओं इत्यादि की मूर्तियां

- The Art of Mathura refers to a particular school of Indian art, almost entirely surviving in the form of sculpture, starting in the 2nd century BCE, which centered on the city of Mathura, in central northern India, during a period in which Buddhism, Jainism together with Hinduism flourished in India.

मथुरा (उत्तर भारत का प्रसिद्ध नगर)

कुषाणों की II राजधानी
उत्कृष्ट व्यापारिक केंद्र
धार्मिक कला केंद्र
मूर्ति कला का उत्कृष्ट स्थल

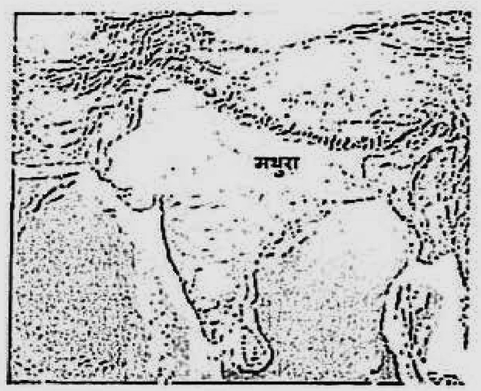

MATHURA STYLE OF ART

- Mathura sculpture is distinguished by several qualitative features of art, culture and religious history. The geographical position of the city on the highway leading from the Madhyadesa towards Madra-Gandhara contributed in a large measure to the eclectic nature of its culture. Mathura became the meeting ground of the traditions of the early Indian art of Bharhut and Sanchi together with strong influences of the Iranian and the Indo-Bactrian or the Gandhara art from the North-West. The Persepolitan capitals with human-headed animal figures and volutes as well as the presence of the battlement motif as a decorative element point to Iranian affinities. These influences came partly as a result of the general saturation of foreign motifs in early Indian sculpture as found in the Stupas of Bharhut and Sanchi also."

Sr. Vasudeva Shrarana Agrowala, Masterpieces of Mathura sculpture

7.3.2 जैन प्रतिमा

मथुरा के कंकाली टीला से बड़ी संख्या में जैन प्रतिमायें प्राप्त हुयी है, इनमें से एक स्तम्भ का टूटा हुआ अवशेष भी मिला है, जिस पर लम्बी भुजाओं वाले चार तीर्थकरों की खड़ी मुद्रा प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गयी है। एक बैठी हुयी

प्रतिमा भी प्राप्त हुयी है, जिसका सिर टूटा हुआ है। दरअसल तीर्थकर की प्रतिमाओं व बुद्ध की प्रतिमाओं में बहुत सी समानता है। बुद्ध की प्रतिमाओं की तरह तीर्थकरों की प्रतिमाओं में भी बड़े–बड़े कान बनाए गये है तथा दोनों की भौहों के केन्द्र पर उर्ष्ण की संज्ञा से जाने वाले मंगलकारी चिन्ह को देखा जा सकता है। इनके बीच का अन्तर केवल इनकी नग्नता तथा वक्ष पर बने भिन्न–भिन्न प्रतीकों के आधार पर की जा सकती है।

जैन प्रतिमाएं

1. मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त जैन प्रतिमाएं

खड़ी प्रतिमा	बैठी प्रतिमा
एक टूटे हुए स्तम्भ पर चार तीर्थकरों प्रतिमायें जिनकी भूजायें लम्बी है।	इस प्रतिमा को आसनस्थ मुद्रा या बैठी हुई अवस्था में बनाया गया है, जिसका सिर टूटा हुआ है।

जैन प्रतिमा की विशेशतायें

- बुद्ध प्रतिमाओं के समान
- बड़े–बड़े कान
- उर्णा/उर्ण का मंगलकारी चिन्ह
- वक्ष पर बने प्रतिक – "श्रीवत्स"
- आयाग – पट्ट

7.3.3 ब्राह्मण प्रतिमाएं

सामान्य संवत् की प्रारंम्भिक शताब्दियों में कई हिन्दू प्रतिमाओं से जुड़े प्रतिमा शास्त्र का पूर्ण विकास हो चुका था। मथुरा क्षेत्र में शिव, दुर्गा व लक्ष्मी की प्रतिमायें बनायी जाती थी। कंकाली टीला से प्राप्त किए गये सूर्य की प्रतिमा की

मूंछ, पैरो के बूट व सिर के मुकुट को देखने से पश्चिमी शैली के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। शिव की प्रतिमायें मानवाकृत व लिंग रूप दोनों तरह की बन रही थी। शिव के लिए मुख्य लिंगों व विग्रह लिंगों का भी निमार्ण किया जा रहा था व मथुरा के निकट भूतेश्वर में स्थित स्थापत्य स्थलों की पहले चर्चा की गयी है जिसमें वृक्ष के नीचे स्थापित एक शिव लिंग का दृश्य है इसे बेदिकाओं के द्वारा घिरा दिखाया गया है तथा कुछ पंख वाले पशुओं को उपासना करते हुए दिखाया गया है। इस प्रकार शैव प्रतिमाओं के विग्रह की मजबूत आधार शिला तैयार हो चुकी थी। इसके अलावा अर्द्धनारीश्वर तथा हरिहर की प्रतिमाएं भी बनायी जा रही थी।

इन प्रारंम्भिक शताब्दियों में मथूरा क्षेत्र में वैष्णव प्रतिमाओं की बाढ़ सी आ गयी थी डेरिस एम. जी. श्रीनिवासन (1989) ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि मथुरा इस समय वैष्णव शैली के विसरण का एक केन्द्र बन गया था। वासुदेव कृष्ण उनके भाई बलदेव तथा उनकी बहन एकनाश की संयुक्त प्रतिमाएं बनायी जा रही थी।

गरूण पर बैठे हुए विष्णु की प्रतिमा और वाराह रूप की प्रतिमाएं बनायी जाती थी। यह स्पष्ट है कि अवतारवाद की अवधारणा अभी अपने अवधारणिक चरण में थी किन्तु कुषाण काल के अन्त तक चतुर्व्युह विष्णु के चार रूपों की आवधारणा स्पष्ट हो चुकी थी। मथुरा से प्राप्त नारायाण की विशाल प्रतिमा भी उल्लेखनीय है। मथुरा में मातृ देवियों व यक्षियों की प्रतिमायें तो लोकप्रिय थी किन्तु लक्ष्मी व दुर्गा के एक अत्यंत सुन्दर प्रतिमा को श्री लक्ष्मी की प्रतिमा माना जाता है, इसमें देवी को कमल की दो पंखुड़ियों पर खड़े हुए देखा जाता है जो एक पूर्ण घट् से प्रकट हो रही है। लक्ष्मी की प्रतिमा से अधिक यह कही मातृ देवी की प्रतिमा दिखलायी पड़ती है। उत्तर भारत की कला शैलियों का मथुरा उद्‌भव केन्द्र प्रतीत होता है व यहां बनायी जा रही मूर्तियां सारनाथ व कुरू में महास्थान तक भेजी जाती थी। मथुरा कला शैली में सामाजिक सरोकार की मूर्तियां भी दिखायी देती है। मथुरा कला में नग्नता श्रृंगार, नृत्य, संगीत तथा मद ्पान सभी भावों का चित्रण किया गया है।

7.4 गान्धार शैली

यूनानी कला के प्रभाव से देश के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में कला की जिस नवीन शैली का उदय हुआ उसे गान्धार कहा जाता है। यह विशिष्ट रूप से बौद्ध धर्म से सम्बन्धित धार्मिक पाषाण मूर्ति कला शैली है। इसका उदय कनिष्क प्रथम के समय हुआ तक्षशिला, कपिशा, पुष्कलावती, वामियान आदि इसके प्रमुख केन्द्र है। गान्धार शैली प्रथम–5वीं शताब्दी के बीच पल्लवित पुष्पित हुई तथा कश्मीर वफअफगानिस्तान के कुछ हिस्सो में यह शैली 7वीं शताब्दी ई. तक लोकप्रिय बनी रही वैसे तो इस शैली का विकास इण्डो–यूरोपियन काल में ही हो चुका था। किन्तु गान्धार कला का परिपक्व रूप ई. सन् की प्रांराम्भिक दो शताब्दियों में देखा गया। गान्धार शैली की अधिकांश मूर्तियाँ प्रारंभिक दौर में शिल्पकारो ने नीले शिष्ट व हरे पाइलाइट पत्थरो के द्वारा बनायी गयी।

7.4.1 बुद्ध की मूर्तियाँ

गान्धार शैली कुषाण सिक्को की तरह शिल्पगत समन्वय के सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है किन्तु शैली ग्रीका रोमन थी। बुद्ध एवं बोधिसत्व की प्रतिमाओं की लोकप्रियता के कारण कभी–कभी गान्धार शैली को ग्रीको–बौद्ध कलाभी कहते है। चेहरे की भाव भंगिमा घुँघराले बाल, मांसल शरीर तथा परिधानों के गहरे मोड़ दार निरुपण ग्रीको रोमन प्रभाव का प्रतिनिधित्व करते है। स्थानक बुद्ध प्रतिभाओं की प्रमुखविशेषता इस प्रकार है–

बुद्ध नंगे पैर दिखलायी देते है व एक पैर हल्का मुड़ा हुआ दिखायी पड़ता हैं। उनके दोनों कन्धे को भारी परिधान से ढंका हुआ दिखलाया गया है। अपने बायें हाथ से वस्त्र के एक छोर को पकड़े हुए दिखाया गया है जबकि दाहिना

हाथ अभय मुद्रा में दिखाया गया है। सिर पर घुंघराले बाल एवं एक विशेष प्रकार की गाँठ से गूँथे है। उसे उष्णी कहते है। बुद्ध के विशाल कानो से लदे आभूषण उनके साही पृष्ठभूमि का परिचायक है। सिर के पीछे एक आभा–मण्डल बनाया

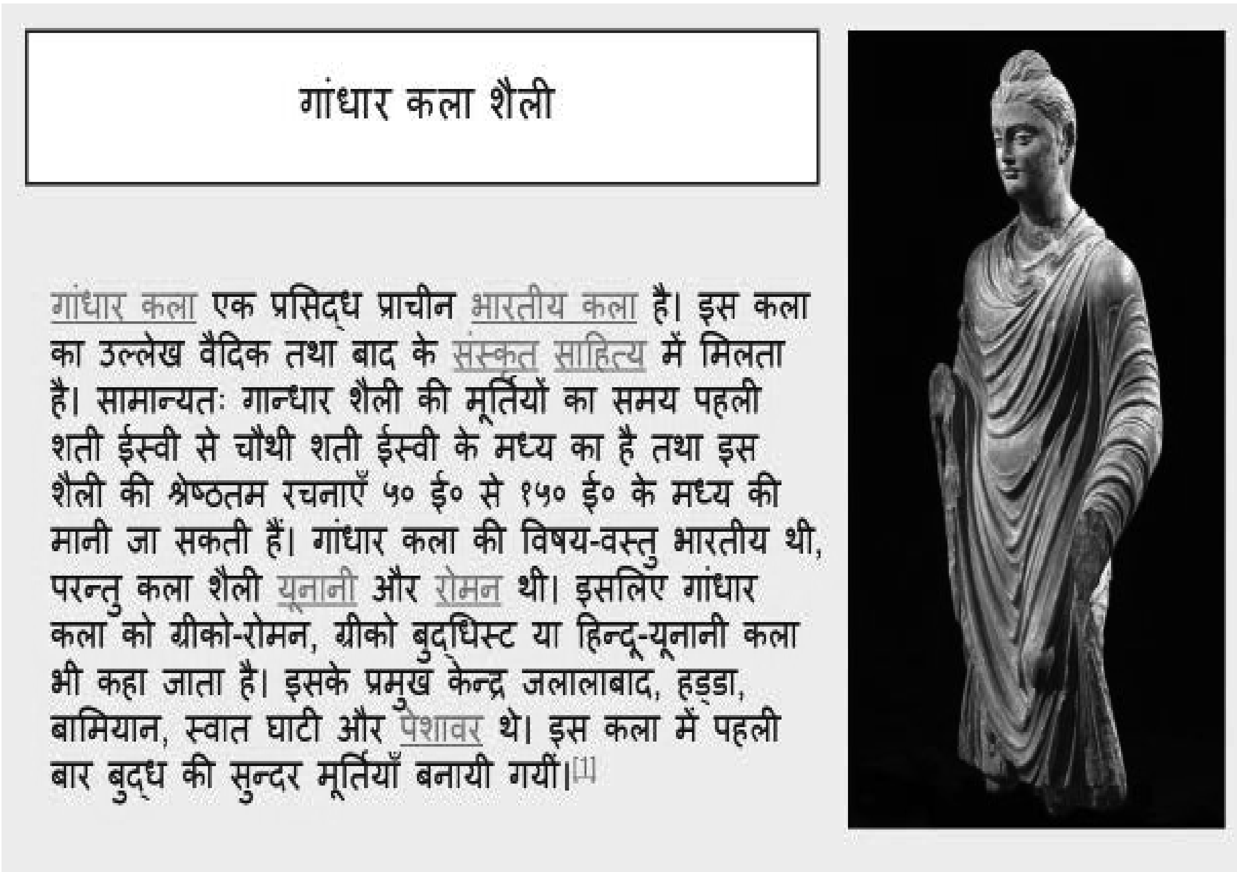

जाता था। बुद्ध की बैठी हुयी प्रतिमाए भी हैं। बुद्ध को धर्मचक्रमुद्रा व ध्यान मुद्राओं में भी दिखाया गया है। बुद्ध की कुछ प्रतिमाओं में उनकी मुछे बनायी गयी है। गान्धार शैली में ध्यान मुद्रा में बैठे बुद्ध की प्रतिमाओं की अधिकता है।

7.4.2 बोधिसत्व की प्रतिमाएँ

बुद्ध के अतिरिक्त गान्धार कला शैली में बोधिसत्वों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हुआ है। सभी बोधिसत्वों की पहचान तो नहीं की जा सकती है किन्तु मैत्रेय बुद्ध की प्रतिमाएं है। अवलोकितेश्वर पद्मपणि गांन्धार शैली के लोकप्रिय बोधिसत्व है। मैत्रेय अपने हाथ में पत्र लिए हुए, पद्मपाणि कमल के फूल से पहचाने जाते है। बुद्ध की प्रतिमाओं से बोधिसत्वों को आभूषण से लदा हुआ दिखाया गया है। इनके सिर पर पगड़ी या विस्तृत केश सज्जा तथा पैर में खड़ाऊ होता है। बड़ी संख्या में बोधिसत्वों की प्रतिमा में मूंछे है।

7.4.3 बुद्ध के जीवन व जातक कथाओं के दृश्य

स्वतंत्र प्रतिमाओं व अद्‌भूत शैल नक्काशियों में बुद्ध के जीवन से जुड़ी घटनाओं व जातक कथाओं के दृश्यों को प्रदर्शित किया गया है। प्रारंम्भिक बौद्ध स्थल पर तरासी गई मूर्तियों की अपनी शैलीगत विशिष्टताएँ थी। इन प्रतिमाओ की विषयवस्तु गान्धार शैली में तरासी गई किन्तु इनकी अपनी शैलीगत विशिष्टताएँ बनी रही। उदाहरण के लिए बुद्ध के जन्म को प्रस्तुत करने के लिए माया को साल वृक्ष की टहनी को पकड़े देखा जा सकता है। जहां एक शिशु का अवतरण उनकी दायी दिशा में दिखलाया गया है अथवा उनके पांव के समीप शिशु खड़ा पाया जा सकता है। इन्द्र शिशु को गोद में लेने के लिए कई अन्य परिचायको के साथ खड़े है, इसी प्रकार गान्धार शैली को अन्य विषय वस्तुओं में यक्षों के अधिपति 'पंचिक' को उनकी सहगामिनी हारिति के साथ देखा जा सकता है। ऐसी बौद्ध मान्यता है कि समृद्धि के देवता और हारिति का बुद्ध के सानिध्य के कारण शिशुओं का भक्षण करने वाले का, राज्य के शिशुओ की रक्षा करने वाले देवता में रूपान्तरण हो गया।

गान्धार शैली कला में धातु की प्रतिमाएँ भी बनाई गई साहाजी को ढेरी (पेशावर के नजदीक) स्थित स्तूप में धातु की बनी एक अस्थि मंजूषा पाई गई है, यहीं कनिष्क की राजधानी कनिष्ठापुरा थी। अब यह विशाल स्तूप पूरी तरह से ध्वस्त हो चुका है। मंजूषा के उपर कमल पर बैठे बुद्ध के दोनो ओर इन्द्र व ब्रम्हा की आकृतियाँ अंकित है साथ में बनी खड़े हुए व्यक्ति की आकृति को कनिष्क के होने की सम्भावना की गई हैं। इस धातु का पुरावशेष मंजूषा पर कनिष्क का नाम भी अंकित है, जिसे कभी कनिष्क के इस भव्य नगर के उक्त विशाल स्तूप में स्थापित किया गया था।

7.5 सारांश

भारतीय कला के इतिहास, मथुरा की कुषाण कला इसलिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसने प्रतीकवाद और मूर्ति शिल्पवाद को अपनाया और बाद में उसे स्वीकार कर लिया। उदाहरण के लिए, पहली बार मथुरा में देवी–देवताओं की मूर्तियों की रचना की गयी। बुद्ध मूर्तियों का प्रभाव चारों ओर फैला और चीन के कला केंन्द्रों तक पहुंचा। इस शैली की कुछ उल्लेखनीय कलाकृतियों में विम

कडफीसेस और कनिष्क की मूर्तियाँ, महिलाओं के चित्र सहित अनेक रेलिंग स्तंभ, बैठे हुए कुबेर एवं ध्यानरत बौद्ध प्रतिमाएं प्रमुख हैं।

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- फर्गुसन. "हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इस्टर्न आर्किटेक्चर"
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.* पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

7.7 बोधप्रश्न

1. मूर्ति निर्माण की गांधारशैली की विवेचना कीजिए।
2. मथुरा कलाशैली की विवेचना कीजिए।

इकाई–8 : गुप्त कालीन कला का उद्भव एवं विकास–मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला, कला की विभिन्न शैलियों का विकासः मथुरा, सारनाथ एवं मन्दिर निर्माण की प्रमुख शैलियाँ–नागर, द्रविड़ एवं बेसर

इकाई की रुपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 गुप्त कालीन मन्दिर स्थापत्य

- 8.3.1 सांची का मन्दिर
- 8.3.2 तिगवॉ का विष्णु मन्दिर
- 8.3.3 एरण का विष्णु मन्दिर
- 8.3.4 नचना कुठार का पार्वती मन्दिर
- 8.3.5 भूमरा का शिव मन्दिर
- 8.3.6 देवगढ़ का दशावतार मन्दिर
- 8.3.7 भीतरगाँव का मन्दिर

8.4 मूर्ति कला

8.5 सारनाथ कला केंद्र

8.6 मंदिर स्थापत्य शैलियाँ

- 8.6.1 नागर शैली
  - 8.6.1.1 नगर स्थापत्य की विशेषताएँ
  - 8.6.1.2 नागर शैली एवं द्रविड़ शैली में अन्तर
  - 8.6.1.3 मन्दिर निर्माण शैलियाँः तालिका
  - 8.6.1.4 कंदरिया महादेव का मंदिर (मध्य प्रदेश)

8.6.2 द्रविड़ मंदिर वास्तुकला

8.6.3 बेसर मंदिर वास्तुकला

8.7 सारांश

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.9 बोधप्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय कला के इतिहास में गुप्त काल को इसलिए महान् युग कहा जाता है—क्योंकि कलाकृतियों की संपूर्णता और परिपक्वता जैसी चीजें इससे पहले कभी नहीं रहीं। इस युग की कलाकृतियों मूर्तिशिल्प, शैली एवं संपूर्णता, सुंदरता एवं संतुलन जैसे अन्य कला तत्वों से सुसज्जित हुई। गुप्त मूर्ति कला की सफलता प्रारंभिक मध्यकाल की प्रतीकात्मक छवि एवं कुषाण युग की कलापूर्ण छवि के मध्य निर्मित एक संतुलन पर आधारित हैं। हिंदू, बौद्ध एवं जैन कलाकृतियाँ मध्य भारत सहित देश के अनेक भागों में पायीं। ये मूर्तिकला में अद्वितीय हैं। बेसनगर से गंगा की मूर्ति, ग्वालियर से उड़ती हुई अपनसओं की मूर्ति, सोंडानी से मिली हवा में लहराते गांधर्व युगल की मूर्ति, खोह से प्राप्त एकमुख लिंग और भुमरा से अन्य कई प्रकार की मिली मूर्तियाँ उसी सुंदरता, परिकल्पना और संतुलन को प्रदर्शित करती हैं जैसा कि सारनाथ में देखा जाता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

गुप्त कालीन कला का उद्भव एवं विकास को।

गुप्त कालीन मन्दिर स्थापत्य के बारे में।

मंदिर स्थापत्य की शैलीयों को।

नागर शैली एवं द्रविड़ शैली में अन्तर बारे में।

8.3 गुप्तकालीन मन्दिर स्थापत्य

गुप्त काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह कला आंदोलन किसी क्षेत्र विशेष में सीमित ना होकर संपूर्ण भारत तथा भारत से बाहर दूरस्थ क्षेत्रों तक पल्लवित हुआ। वी एस अग्रवाल ने सिंध के मीरपुरखास से असम के परबतिया तक उत्तर में चौमसौदानशाह से दक्षिण में सितन्नवासल तक व श्रीलंका में सीगरिया गुफा तक इसका विस्तार अंकित किया है। कलाविद पर्सीब्राउन ने गुप्तकालीन वास्तुकला की दो महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां सौंदर्य परक स्वरूप तथा संरचनात्मक प्रक्रिया चिन्हित की है। आर. डी. बनर्जी ने गुप्त कला को पुनर्जागरण कला कहा है।

प्रारंभिक गुप्त लेखों में मंदिर को प्रसाद कहा गया है, झांसी के आगे सोनगिरी पर्वत पर अनेक जैन मंदिर समूह है। वहां संपूर्ण पर्वत को ही मंदिर में

परिवर्तित कर दिया गया है। मंदिर संख्या 47 आज भी प्राचीनतम मंदिर शैली का उदाहरण है। जेसी हार्ल ने यह तर्क दिया है कि पाषाण मूर्तिकला तथा टेराकोटा कला गुप्त साम्राज्य के संपूर्ण क्षेत्र में उच्च कोटि की समरूपता प्रदर्शित करती है उन्होंने इस योग को कला की दृष्टि से तीन उपकालों में विभाजित किया है। प्रारंभिक गुप्तकाल, गुप्तकाल और उत्तर गुप्तकाल। हरमन गोल्ड के अनुसार प्रारंभिक गुप्त काल सहज परिष्कृत, सशक्त, कोमल, शानदार, विकृत जैसे कलात्मक विरोधाभासों के अस्तित्व का युग था। गुप्त काल सर्वोत्कृष्ट कला का काल था, जिसमें विसंगति पूर्ण विशेषताओं में सामंजस्य स्थापित हुआ। उत्तर गुप्त काल में मानव शरीर का प्रस्तुतीकरण और अधिक कलात्मक हो गया।

भारतीय मन्दिरो का अविर्भाव अचानक नही हुआ अपितु इसके पीछे एक लम्बी परम्परा दिखायी देती है। मन्दिर निर्माण की प्रक्रिया का आरम्भ तो मौर्य काल से ही शुरू हो गया था किन्तु आगे चलकर इसमे सुधार होता गया और गुप्तकाल को संरचनात्मक मन्दिरों के विकास की विशेषता के रूप मे देखा जा सकता है। अति प्राचीन काल में मन्दिर बेदी के रूप में खुले आकाश के नीचे बनाएँ जाते थे, जिसे यान या चौरण कहा जाता था। इसके ऊपर देव प्रतीक रखकर पूजा अर्चना की जाती थी। मन्दिर निर्माण के दूसरे चरण में बेदी के चारों ओर बाड बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी, इसे प्राकार कहा गया। पहले यह बाँस या लकड़ी का बनता था, जिसे बाद में पाषाण का बनाया जाने लगा। गुप्त काल से पहले बने मन्दिरो की निम्नलिखित कमियाँ थी :–

(i) इसका आकार छोटा होता था

(ii) गर्भ गृह तक पहुंचने के लिए सीढ़िया नहीं थी।

(iii) छते सपाट थी जिस कारण वर्षा के निकास की समस्या थी।

(iv) ये 'मन्दिर बेहद छोटे आकार के होते थे।

(v) अलग से कोई प्रदक्षिणा पथ नही था।

स्थापत्य के विकास की दृष्टि से गुप्त काल को प्राचीन भारत के इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है देश की आर्थिक समृद्धि तथा

राजनैतिक स्थिरता के परिणामस्वरूप स्थापत्य के क्षेत्र में इस काल में चौमुखी विकास हुआ। दुर्भाग्य से वास्तु कला के क्षेत्र में गुप्त काल की उपलब्धियों के अधिकाधिक अवशेष प्राप्त नही है। यह कहा जाता है कि आगे मुसलमानों की मूर्ति भंजक नीति के परिणामस्वरूप अधिकांश स्थापत्य नष्ट हो गये होगे। इसके

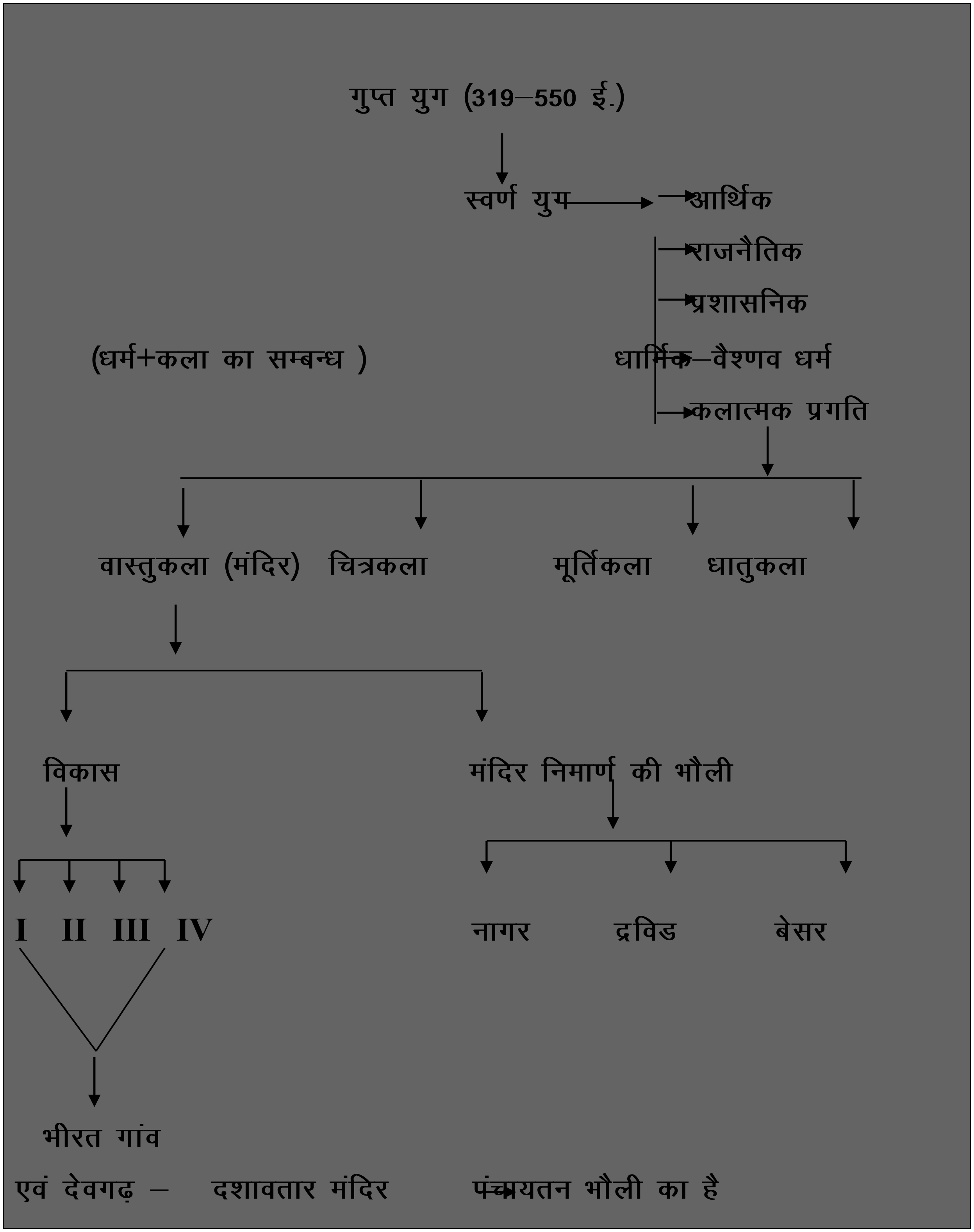

साथ ही दूसरा तथ्य यह हो सकता है कि गुप्त कल के मन्दिर अप्रभावी पूजा स्थल थे जो या तो आवासीक वास्तु कला में खो गये या फिर आने वाली शदी में उनका पुनर्निमाण किया गया फिर भी यह सत्य है कि गुप्त काल संरचनात्मक

मन्दिर निर्माण का काल था। गुप्तकालीन मन्दिरों की कुछ सामान्य विशेषताएं निम्न है–

(i) मन्दिरों का निर्माण ऊचे चबूतरो पर होता था।
(ii) मन्दिरो के चबूतरो तक पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ बनायी जाती थी।
(iii) मन्दिर के भीतर एक चौकोर / वर्गाकार कक्ष बनाया जाता था, जिसमें मूर्ति रखी जाती थी, जिसे गर्भगृह कहा जाता था।
(iv) गर्भगृह के चारो ओर प्रदक्षिणा पथ बना होता था।

(अ) मन्दिर की छत गुप्त काल के प्रारम्भ मे सपाट थीं, लेकिन बाद में गर्भ गृह के ऊपर शिखर बनाने की शुरुआत हुयी। मन्दिर के गर्भगृह के आगे स्तम्भों पर आधारित मण्डप का निर्माण भी किया जाने लगा।

(ब) गुप्त काल के अधिकांश मन्दिर पाषाण निर्मित है, केवल भीतरगाँव तथा शीरपुर के मन्दिर ही ईंटों के बनाए गये है। गुप्तकालीन प्राचीनतम उदाहरण साँची का मन्दिर है तथा इसका पूर्ण विकसित स्वरूप देवगढ़ के दशावतार मन्दिर में परिलक्षित होता है।

(स) देवगढ का दशावतार मन्दिर पंचायतन रचना शैली का मन्दिर है। जब मुख्य मन्दिर चार सहायक मन्दिरो से घिरा होता है तो इसे पंचायतन रचना शैली का मन्दिर कहते है।

प्रारंभिक गुप्त कालीन मन्दिरो का विवरण निम्नवत है–

8.3.1 साँची का मन्दिर

यह मन्दिर मध्य प्रदेश के सांची में स्थित है जो साँची के महास्तूप के दक्षिण पूर्व में स्थित है यह मन्दिर गुप्त काल का प्रारम्भिक मन्दिर है।

8.3.2 तिगवाँ का विष्णु मन्दिर

यह मन्दिर मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में स्थित है इस मन्दिर का गर्भगृह 8 फुट चौड़ा तथा मंण्डप 7 फुट का बना है मन्दिर एक आधार के ऊपर बना है मन्दिर के प्रवेश द्वार पर दोनो तरफ गंगा–यमुना की आकृतियॅा उनके वाहनों के साथ उत्कीर्ण है।

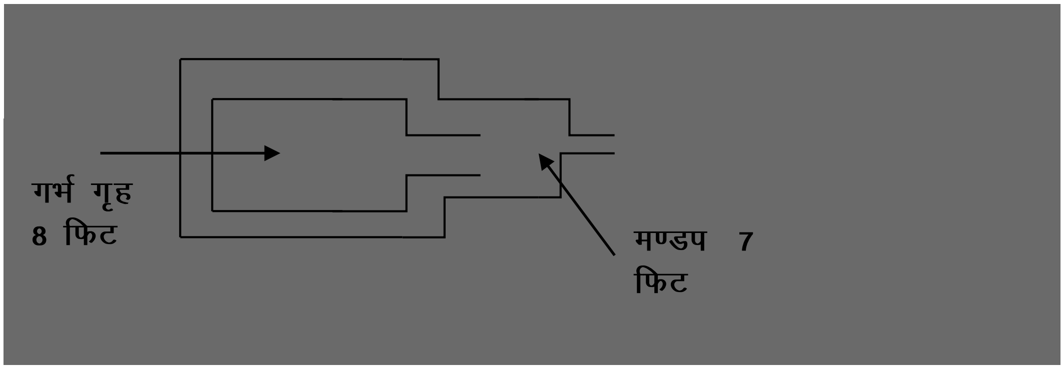

8.3.3 एरण का विष्णु मन्दिर

यह मन्दिर मध्य प्रदेश के एरण जिले में स्थित है। इस मन्दिर के गर्भ गृह में विष्णु की प्रतिमा स्थापित है।

8.3.4 नचना कुठार का पार्वती मन्दिर

यह मन्दिर मध्य प्रदेश के सतना जिले में अजयगढ़ के समीप स्थित है। इस मन्दिर में गर्भगृह मण्डप तथा प्रदक्षिणापथ बना हुआ है तथा यह पूरा मन्दिर 35 फिट वर्गाकार चबूतरे पर बना हुआ है।

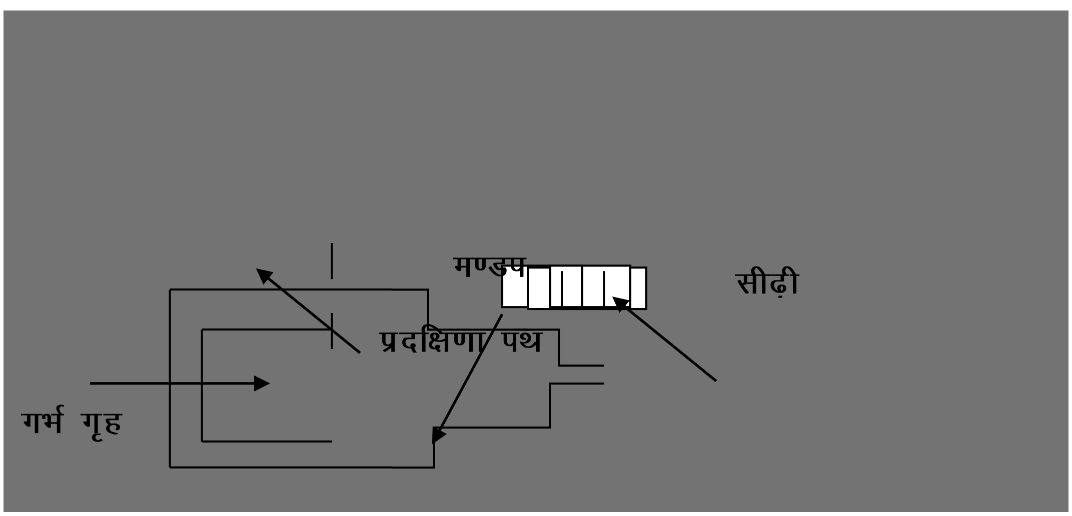

8.3.5 भूमरा का शिव मन्दिर

यह मन्दिर मध्य प्रदेश के सतना जिले में स्थित है जो पूरी तरह से पाषाण का बना है। इस मन्दिर में भी मंदिर वास्तु के अनुरूप गर्भगृह, मण्डप तथा प्रदक्षिणापथ बना है। मन्दिर के गर्भ गृह में एक मुखी शिव–लिंग स्थापित किया गया है।

8.3.6 देवगढ़ का दशावतार मन्दिर

यह मन्दिर उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में देवगढ़ नामक स्थान पर स्थित है। सभी मन्दिरों में देवगढ़ का दशावतार मन्दिर सर्वाधिक सुन्दर है, जिसमे गुप्त मन्दिरो की सभी विशिष्टताएँ प्राप्त होती है। इसका ऊपरी भाग नष्ट हो गया है। मन्दिर का निर्माण एक ऊँचे –चौड़े चबूतरे पर किया गया है। मंन्दिर के गर्भ गृह का प्रवेश द्वार सबसे सुरक्षित है तथा प्रवेश द्वार के दोनों तरफ द्वारपालों तथा नदी देवियों आदि की मूर्तियों से सजाया गया है। ऊष्णीश के मध्य भाग में चतुर्मुखी विष्णु भगवान को आशीन दिखाया गया है। मन्दिर की दीवारों पर शेष शैय्या पर शयन करते हुए भगवान बिष्णु नरनारायण आदि सुन्दर दृश्य उत्कीर्ण है। रामायण तथा महाभारत के कई मनोहारिक दृश्य का अंकन भी इसमें प्राप्त होता है। गर्भगृह के ऊपर पिरामिड नुमा ऊँचा शिखर मिलता है। इसके चारो दिशाओं में चैत्याकार गवाच्छ (खिड़की) तथा ऊपर बीच में विशाल गमला बना था। इस प्रकार के एक से अधिक मंजिल वाले प्रासाद को बहू–भूमिक कहा जाता था। इस प्रकार जहाँ अन्य मन्दिरों की छते सपाट है। यह मन्दिर, शिखर मन्दिर का पहला उदाहरण है। इसे गुप्तकाल के उत्कृष्ट वास्तु कला नमूना भी कहा जा सकता है। इसके अनेक तत्वो को बाद के मन्दिरों में ग्रहण किया गया है।

8.3.7 भीतरगाँव का मन्दिर

यह उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में स्थित है। इसका निर्माण ईंटो से किया गया है। मन्दिर एक वर्गाकार चबूतरे पर बना है। उसका गर्भ गृह भी वर्गाकार है। गर्भगृह के सामने, मण्डप है तथा देवगढ़ के समान भीतरगांव मंदिर का शिखर लगभग 70 फिट ऊँचा था। शिखर में चैत्याकार मेहराब बनाए गये है। बाहरी दीवारों में ताखो में हिन्दू देवी–देवताओं गणेश, आदिवाराह दुर्गा, नदी देवता आदि की पकी मृणमूतियाँ रखी गयी है। साथ ही साथ दीवारों को रामायण, महाभारत तथा पुराणों के विविध आख्यानो से सजाया गया है। सम्पूर्ण रचना भव्य एवं आर्कषक है। भारत में प्राप्त डाट पत्थर मेहराब का प्राचीनम उदाहरण होने के साथ–साथ भीतर गाँव का मन्दिर ईट निर्मित भवन का सबसे प्राचीन उदाहरण प्रस्तुत करता है। मंदिर के पर्यायवाची अनेक शब्द प्राचीन ग्रंथों में प्रयुक्त मिलते हैं जिन्हें देवालय, देवगृह, देवागार, देवकुल, देवतायतन, देवस्थान आदि इन सभी शब्दों से देवता के निवास स्थान का बोध होता है अतएव मंदिर की कल्पना देवता की आवास के रूप में की गई है।

8.4 मूर्तिकला

पुरातात्विक उत्खनन से यह प्रमाणित होता है कि अति प्राचीन काल से ही यहां मूर्ति पूजा प्रचलित थी। सिंधु सभ्यता की खुदाई से कुछ ऐसी मूर्तियां व मोहरे उपलब्ध हुई है, जिन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूर्ति पूजा हड़प्पा संस्कृति का एक प्रमुख अंग था। एक मोहर पर योगी की मूर्ति अंकित है मार्शल महोदय ने इसकी तुलना शिव अथवा पशुपति से की है। खुदाई से प्राप्त मातृ देवी की अनेक मूर्तियां इसकी संपुष्टि करती हैं कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो निवासी मूर्तिपूजक थे किंतु उत्खनन से ऐसा कोई स्थानीय भवन उपलब्ध नहीं हुआ है,जिसे उन देवताओं का आवास गर्भगृह या मंदिर की संज्ञा दी जा सके। वैदिक साहित्य में भी इंद्र, वायु, वरुण, अग्निमित्र, यम आदि देवी–देवताओं का उल्लेख है लेकिन मंदिर तथा मूर्ति पूजा का प्रायः अभाव ही है। संभव है, ईश्वर उपासना की प्राचीनतम पद्धति प्रार्थना थी, जो अति सरल एवं सर्व सुलभ थी। अस्तुति तथा प्रार्थना द्वारा देवता को प्रसन्न किया जाता था और मनवांछित फल प्राप्त की आशा की जाती थी। वेदों की सूक्त एवं मंत्र इन्हीं प्रार्थनाओं के संग्रह है। वैदिक युग का मानव प्रकृति की विचित्र लीलाओं का अवलोकन आश्चर्य भरी दृष्टि से करता और आनंद के सागर में डूब जाता था। बहुत घटनाओं को सरल रूप में समझने के लिए उसने अनेक देवताओं की कल्पनाएं की, जिनके द्वारा इस अखिल ब्रह्मांड का कार्य संचालित होता है। इस प्रकार व प्राकृतिक एवं अध्यात्मिक

शक्तियों का साक्षात अनुभव करता है इसलिए उसे मूर्ति जैसे प्रतीक तथा उसके आवास या मंदिर की आवश्यकता नहीं थी यद्यपि अग्नि तथा नाग पूजा का वर्णन कई स्थानों पर है। संभव है विशेष पूजन के अवसरों पर देवताओं की काष्ठ निर्मित प्रतिकृतियां बनाई जाती होंगी। मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। इन मंदिरों में दो मंडप होते थे, जो स्तम्भों तथा बल्लों पर आश्रित थे। इनकी छतों पर नरकट एवं चटाई का आच्छादन होता था परंतु प्रमाण स्वरूप इस युग का कोई मंदिर उपलब्ध नहीं है। परवर्ती ग्रंथों में भी मंदिर का उल्लेख है किंतु इसकी सम्पुष्टि के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। कालांतर में बौद्ध एवं जैन धर्म के उदय के फलस्वरूप ब्राम्हण धर्म यज्ञ, हवन, कर्मकांड की आलोचना प्रारंभ हुई तथा बौद्ध धर्म में चैत्य–बिहार का निर्माण होने लगा। यही स्थिति कुषाण काल तक बनी रही गुप्त वंश के फलस्वरूप ब्राह्मण धर्म को बढ़ावा मिला देवी–देवताओं की पूजा के साथ ही देवालय का भी निर्माण होने लगा प्रारंभिक मंदिरों का वास्तु विन्यास बौद्ध विहारों से प्रभावित थी।

8.5 सारनाथ कला केंद्र

सारनाथ वाराणसी में स्थित बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण स्थल है, जहां महात्मा बुद्ध द्वारा अपना प्रथम उपदेश दिया गया। सारनाथ की कलात्मक संदर्भ को देखा जाए तो गुप्तकाल से पूर्व सारनाथ में कलात्मक निष्क्रियता का युग दिखाई देता है परंतु इस काल में कला केंद्र के रूप में सारनाथ का विकास होता है। इस क्षेत्र की कला की अपनी विशिष्ट कला शैली थी, जिसने आसपास के क्षेत्रों को प्रभावित किया यहाँ की मूर्तियाँ चुनार के बलआए पत्थर से बनी है जिनका लक्षण इस प्रकार है–

- वस्त्रों का प्रायः पारदर्शी निर्माण जिसमें ऐसी सिलवटों का अभाव है जो शरीर की संरचना को छिपाने वाली हो। ऐसे वस्त्र आवरण के भीतर से शरीर का सौंदर्य उद्घाटित करने में कलाकार पूर्णतया सक्षम हुआ। वस्त्रों को उसका एक निजी स्वरूप दिया गया है, जो मानव शरीर के लिए सांप के केचुली जैसा आवरण है। किंतु इसके अगल–बगल उठे हुए किनारे एवं मुड़ी हुई तहो को अलग से गढ़ा गया है।
- चेहरे के ऊपरी भाग में लक्षित मंगोलियन ढंग का स्वरूप जिसमें भौहें लंबी तथा तिरछी बनी है।
- मुखमंडल पर समाधि में लीन भाव प्रकट होता है। शरीर निर्माण में भौतिक बल का भाव दिखता है जबकि रूप कल्पना में ही भावहीन लोकोत्तर स्वरूप का दिग्दर्शन होता है।

- प्रभामंडल के मध्यवर्ती फेरे को सादा रखा गया है जो देवता के शीर्ष को आकर्षक ढंग से उजागर करता है। इसके विपरित प्रभामंडल का बाह्य घेरा भरपूर अलंकृत है।
- प्रतिमा शास्त्री लक्षणों का नितांत सरलीकरण एवं अलंकरण कम से कम दिखाई देता है।

इन विशेषताओं से युक्त सारनाथ की गुप्त कला शैली में पूर्वी भारत के विविध कला केंद्रों को प्रभावित किया। यहां से प्राप्त एक सील की आकृति सारनाथ कला केंद्र शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें एक शिला पर वासुदेव द्वारा कृष्ण और यशोदा को सौंपने का दृश्य है। सारनाथ की उत्कृष्ट प्रतिमा पद्मासन पर बैठें बुद्ध की है, जो सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रतिमा के निर्माण काल तक यहाँ के शिल्पी इतने निपुण हो चूके थे कि मन के भावों को मुख पर दिखाने में वे पूर्णतः सक्षम थे। दुर्भाग्यवश इस पर कोई तिथि अंकित नहीं है किंतु सारनाथ संग्रहालय में भिक्षू अभय मित्र द्वारा स्थापित उस मूर्ति पर गुप्त संवत में 154 उत्कीर्ण है।

सारनाथ शिल्प में एक विशिष्ट ढंग की एक बुद्ध प्रतिमा उत्कीर्ण है जिसमें भगवान बुद्ध को सिंहासन पर पैर लटकाए दिखाया गया है उसे कुछ विद्वानों ने यूरोपियन ढंग से बैठे बुद्ध की प्रतिमा माना है। इसको भद्रासन या प्रलंबपादासन भी कहते हैं। इसके अलावा सारनाथ से उत्कीर्ण फलक भी मिले हैं, इसमें बुद्ध के जीवन दृश्यों को उत्कीर्ण किया गया है और एक या दो पंक्तियों में बुद्ध की घटनाएं अलग–अलग अलंकृत है। बुद्ध का जन्म, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन तथा महापरिनिर्वाण प्रधान है। इसके अतिरिक्त वैशाली में बंदरों द्वारा मधुपान नल गिरि हस्ती दमन स्वर्ग से बुद्ध का अवतरण इत्यादि दृश्य प्रमुख रूप से है।

कभी–कभी एक साथ कई दृश्यों का संयोजन भी दिखाई देता है। सारनाथ से बोधिसत्व की मूर्तियां भी मिली है। पांचवीं शताब्दी की सुंदर एवं शैलीगत दक्षता के द्योतक सर्वोत्तम कृति पद्मपाणि अवलोकीतेश्वर या लोकनाथ की है। एक अन्य नमूना मैत्रेय बुद्ध का है एक मैत्रेय बुद्ध मूर्ति का खण्डित ऊपरी भाग छठी शताब्दी शैली में सारनाथ शैली के विशिष्ट गुणों का परिचायक है चुनार प्रस्तर में सारनाथ की शैली में बनी एक बुद्ध प्रतिमा बंगलादेश के विहारेय से मिला है। जो पूरब में इस शैली के दूरगामी उल्लेखनीय प्रमाण बोधगया में भी गुप्तकालीन शिल्पियों पर सारनाथ कला शैली का प्रभाव देखा जा सकता है।

इस प्रकार उपयुक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि मथुरा में उत्पन्न कला सारनाथ में अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थीं। आध्यात्मिक भाव का प्रदर्शन स्वतंत्र देखा जा सकता है यही बौद्ध कला की सबसे बड़ी विशेषता है।

8.6 मंदिर स्थापत्य शैलियाँ

गुप्तकालीन वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण मंदिर है। ईट पत्थर निर्मित मंदिर स्थापत्य शैली का प्रारंभ गुप्त काल में माना जाता है। पिछले काल की तुलना में इस काल में वास्तु में ईट पत्थर का प्रयोग पिछले युग की तुलना में अधिक होने लगा वास्तु के अस्थाई माध्यम के लिए दारू, कर्म, लकड़ी का प्रयोग अधिक उपयुक्त ना था। कुषाण काल में मूर्ति प्रधान थी किंतु गुप्त काल तक आते–आते देव प्रतिमा पर्याप्त विकसित हुई जैसे प्रतिष्ठित करने के लिए मंदिर निर्माण की आवश्यकता महसूस हुई अति प्राचीन काल में मंदिर वेदी के रूप में खुले आकाश में स्थापित होते थे जिन्हें यान या चौरण कहते थे। द्वितीय चरण में वेदी के चारों ओर बाड़ निर्माण की प्रथा प्रारंभ हुई, जिसे प्रकार कहते हैं। नगरी(चित्तौड़) का नारायण वाटिका जो कि दितीय शताब्दी ईसा पूर्व का निर्मित है शिला प्रकार का प्राचीनतम उदाहरण है यहां चबूतरे पर पूजा शिला रखी जाती थी, जो वस्तुतः शालिग्राम यानी विष्णु की मूर्ति है। मंदिर वास्तु का तीसरा चरण गुप्त काल से प्रारंभ हुआ जिसमें मूर्तियों की स्थापना के लिए नागर शैली के मंदिर विकसित हुए। शिल्प शास्त्र के अनुसार मंदिर वास की प्रथम तीन श्रेणियां नागर, द्रविड़ और बेसर का प्रारंभ गुप्त काल से शुरू है।

नागर शब्द नगर से बना है। सर्वप्रथम नगर निर्माण होने के कारण अथवा संख्या में बाहुल्य होने के कारण इन्हें नागर की संज्ञा दी गयी। शिल्प शास्त्र के अनुसार नागर मंदिरों के 8 प्रमुख अंग निर्धारित किए गए–

1. मूलाधार पीठिका– जिन पर संपूर्ण भवन खड़ा किया गया है।

2. मसूरक– नीव और दीवारों के बीच का भाग

3. जंघा– दीवारें विशेषता गर्भ ग्रह आदि के दीवारे

4.कपोत–कार्निस

5.शिखर– मंदिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का ऊपरी भाग

6–ग्रीवा–शिखर का ऊपरी भाग

7–वर्तुलाकार आमलक–शिखर के शीर्ष भाग पर कलश के नीचे का भाग ।

8कलश–शिखर का शीर्ष भाग ।

नागर शैली के मंदिर वर्गाकार होते हैं। वर्गाकार गर्भगृह के ऊपर की बनावट ऊंची मीनार जैसी होती है। इनकी शिखर की रेखाएं तिरछी और चोटी

की ओर झुकी होती है तथा शीर्ष आमलक से सुशोभित रहता है। हिमालय एवं विंध्य पर्वतमाला के मध्यस्थ क्षेत्र में नागर शैली के मंदिर विस्तृत है। प्रांतीय भेद के अनुरूप ही इस शैली के मंदिरों के विविध नाम है यथा उड़ीसा के नागर मंदिरों को कलिंग, गुजरात में लाट तथा हिमालय क्षेत्र में इनको ही पार्वती मंदिर कहा गया है। पर्सी ब्राउन ने नागर शैली को ही उत्तर भारतीय आर्य शैली या आर्यावर्त शैली की संज्ञा दी है। नागर मंदिर वास्तु शैली के प्रमुख मंदिरों का विवरण अधोलिखित है।

इस प्रकार हम देखते है कि गुप्त काल से जिस मन्दिर वास्तु का प्रारम्भ होता है। वह 6ठी शताब्दी ईस्वी तक उत्तर एवं दक्षिण भारत में मिलने वाली मन्दिर वास्तुकला लगभग एक समान थी लेकिन 6 शताब्दी ईस्वी के बाद प्रत्येक क्षेत्र का भिन्न–भिन्न दिशाओं में विकास हुआ। इस प्रकार आगे ब्राम्हण, हिन्दु धर्म मन्दिरो के निमार्ण में तीन प्रकार की शैलियों नागर, द्रविड एवं बेसर शैली का प्रयोग किया गया।

8.6.1 नागर शैली

नागर शैली के मन्दिर प्रमुखतया **उत्तर भारत** में दिखायी पड़ते है। मन्दिर

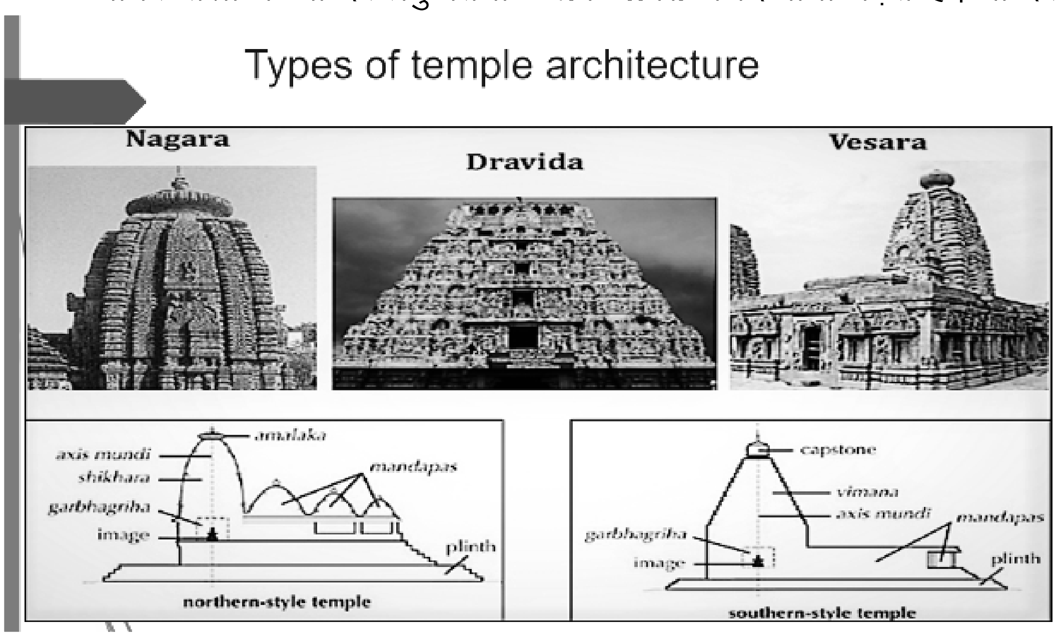

स्थापत्य की इस शैली का विकास **हिमालय** से लेकर **विन्ध्य क्षेत्र** तक हुआ। नागर स्थापत्य के मन्दिर मुख्यतः नीचे सें ऊपर तक आयताकार रूप में निर्मित होते है। सामान्यतः उत्तर भारतीय शैली के मन्दिर एक वर्गाकर गर्भगृह, स्तम्भों वाला मण्डप तथा गर्भगृह के ऊपर एक रेखीय शिखर से संयोजित होता है।

कभी–कभी वह पंचायतन प्रकार का होता है। जिसमें एक जगती के ऊपर मध्य में मुख्य मन्दिर होता है एवं उसके चारों कोनो परचार छोटे–छोटे मन्दिर होते है। मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर स्थापित होता है, जिसे जगती कहते है तथा जिस पर जाने के लिए कभी–कभी तीन ओरसे एवं कभी–कभी एक ओर से सीढ़ियाँ बनी होती है।

नागर शैली में बने मन्दिरों के गर्भ गृह के ऊपर एक रेखीय शिखर होता है यह प्रायः तीन उभारो से संयोजित होता है जिसमें सबसे मध्य के उभार को **भद्ररथ** कहते है तथा सबसे किनारे वाले उभार को **कर्णरथ** कहते है। भद्ररथ तथा कर्णरथ के मध्य के उभार को **प्रतीरथ** की संज्ञा दी जाती है। विकास क्रम में धीरे–धीरे शिखर पर 3,5,7 एवं 9 उभारों को बनाया गया। शिखर का सबसे महत्वपूर्ण भाग सबसे ऊपर लगा आमलक होता है, जो उत्तरी भारत के मन्दिरों की मुख्य पहचान है।

8.6.1.1 नागर स्थापत्य की विशेषताएँ

(i) नागर शैली में शिखर अपने ऊँचाई के क्रम में ऊपर की ओर क्रमशः पतला होता जाता है।

(ii) मन्दिर में सभा भवन एवं प्रदक्षिणा पथ भी होता है।

(iii) शिखर नियोजन में बाहरी रूप रेखा बड़ी स्पष्ट तथा प्रभावशाली ढंग से उभरती है अतः इसे रेखा शिखर भी कहते है।

(iv) शिखर पर आमलक की स्थापना भी होती है।

(v) वर्गाकार तथा ऊपर की ओर वक्र होते शिखर इसकी विशेषता है।

मन्दिर की तुलना मानव शरीर के विभिन्न अंगो से की गई है क्योंकि नागर शैली में ऐसा अवयव दृष्टिगोचर होता है। आदर्श मानव शरीर की संरचना के समान मन्दिर की संरचना पर बल दिया गया, इसे निम्न बिन्दुओ के आधार पर देखा जा सकता है–

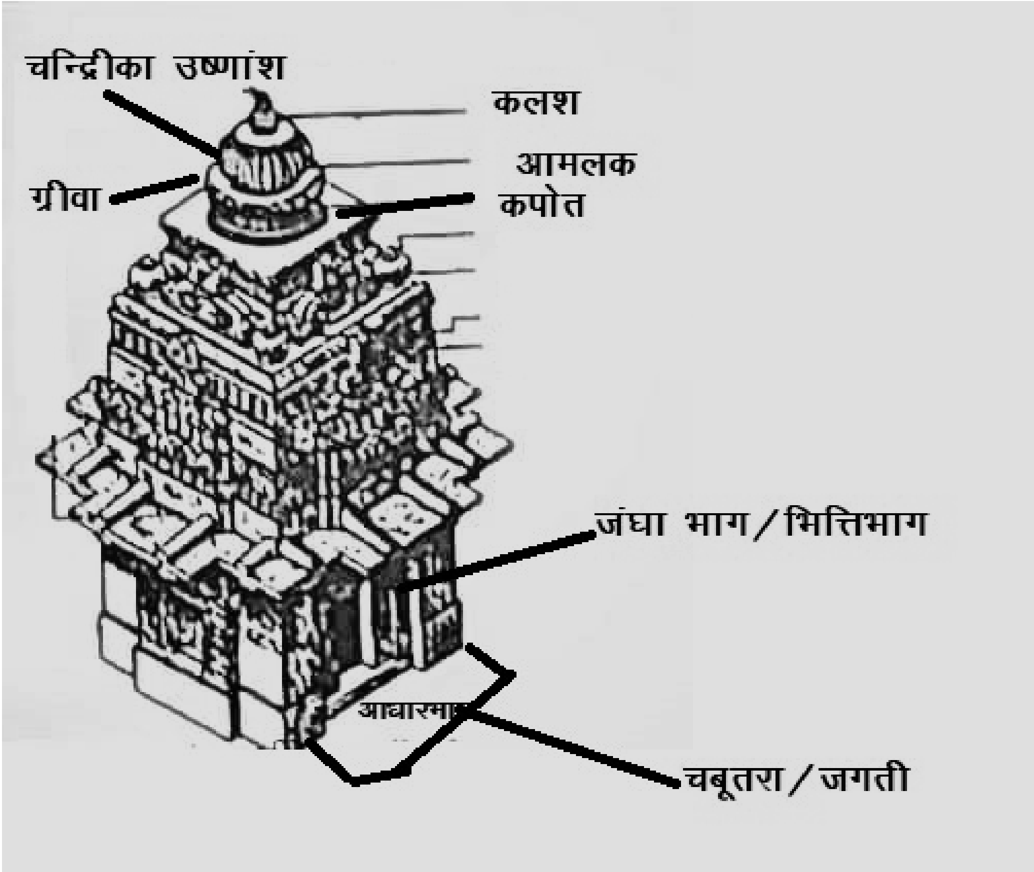

1. मानव शरीर का सारा भाग जिस अंग पर टिका होता है वह पैर है। इसी प्रकार सम्पूर्ण मन्दिर का भार जिस पर रहता है उसे **पाद, आधिष्ठान** या जगती पीठ कहते है। इसे समान्य भाषा में चबूतरा कहते है जो कि कुछ ऊँचाई पर होता है।
2. शरीर के भीतरी गुप्त क्षेत्र को **कटि प्रदेश** कहते है इसी प्रकार मन्दिर का गुप्त क्षेत्र **गर्भगृह**कहलाता है।
3. कमर के ऊपर शरीर के आन्तरिक विस्तृत क्षेत्र को **ऊदर** कहते है, मन्दिर के आन्तरिक विस्तृत क्षेत्र को **विमान** कहते है।
4. शरीर का बाह्य विस्तृत क्षेत्र को **स्कन्द वक्ष** कहते है एवं मन्दिर के बाह्य क्षेत्र को **शिखर** कहते है।
5. शरीर के ऊपरी गोलाई लिए हुए भाग को **गर्दन** तथा मन्दिर के ऊपरी गोलाई लिए हुए भाग को **ग्रीवा/शुक नासिक** कहते हैं।

6. शरीर का सबसे ऊपरी हिसा **सिर** तथा मन्दिर का सबसे ऊपरी हिस्सा **आमलक स्तूप** है।

तकनीकि के आधार पर यदि देखा जाय तो उठता हुआ विमान तल एवं शिखर नुमा छत का समन्वय ही नागर शैली की मुख्य पहचान या विशेषता है।

8.6.1.2 नागर शैली एवं द्रविड़ शैली में अन्तर

नागर शैली	द्रविड़ शैली
1. उत्तर भारत के मन्दिर नागर शैली में मिलते है।	ये मन्दिर दक्षिण भारत में मिलते है।
2. इन मन्दिरों में प्राकार का अभाव रहता है।	ये मन्दिर प्राकार में है।
3. इस शैली के मन्दिर चबूतरे के ऊपर बनाए गये है।	इनमें चबूतरा आवश्यक नही है।
4. इन मन्दिरों का जंघा भाग लम्बवत् एवं क्षैतिज भागों में बटां होता है जिसे रथ कहते है।	इनमें जंघा भागों में स्तम्भ कोष्ठ बने होते है
5. इनमें कुण्ड अधिक नही मिलता।	इनमें कुण्ड अधिकाशतः देखने को मिलते है।
6. गोपूर द्वारा नही मिलता।	इनमें गोपूर द्वार मिलते है।
7. शिखर पर आमलक होता है।	शिखर पर स्तुपिका होती है।

8.6.1.3 मन्दिर निर्माण शैलियाँः तालिका

शैली	कालखण्ड	क्षेत्र विशेष	सम्बद्ध शासक वंश
नगर/ नागर शैली	7वीं से 13वीं शताब्दी तक	उत्तर भारत की शैली, हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत के पहले तक	बंगाल – पाल/सेन वंश, ओडिशा – सोम, चेदि, गंग वंश; उत्तर प्रदेश के प्रतिहार, गढ़वाल; गुजरात के चालुक्य, सोलंकी राजस्थान/दिल्ली के चौहान
बेसर शैली	8वीं से 14वीं शताब्दी तक	द्क्कन भारत की शैली, विंध्य पर्वत से कृष्णा नदी तक की शैली। ये महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, आंध्र में प्रभावी रही।	मान्यखेत के राष्ट्रकूट, कल्याणी के चालुक्य, देवगिरि के यादव, वारगंल के काकतीय, द्वारसमुद्र के होयसल
द्रविड़ शैली	7वीं से 18वीं शताब्दी तक तीनों शैलियों में द्रविड़ ही सबसे ज्यादा दीर्घकालीक रही, क्योंकि यह मुस्लिम आक्रमण से बची रही।	सुदूर दक्षिण भारत की शैली– तमिलनाडू, केरल, दक्षिण आंध्र और दक्षिण कर्नाटक।	पल्लव काल, महान् चोल, पांड्य, विजयनगर नायक वंश

8.6.1.4 कंदरिया महादेव का मंदिर (मध्य प्रदेश)

खजुराहो के मंदिरों में सबसे श्रेष्ठ कंदरिया महादेव का मंदिर है। इसके शिखर व अलंकरणों की अपनी विशिष्ट पहचान है। इस मंदिर में पहुंचने के लिये

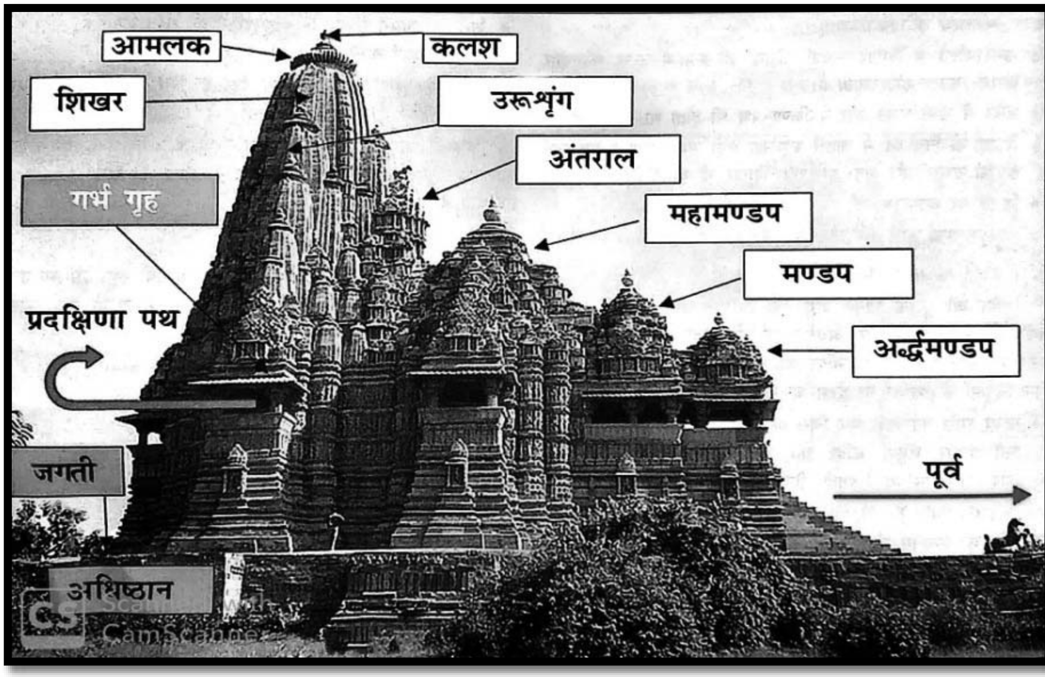

सीढ़ियों से होकर 13 ऊँचे चबूतरों पर चढ़ना होता है, जिस पर यह मन्दिर बना है। इसके अंगों में एक विचित्र ढलाव है। क्रमशः पहले अंग की अपेक्षा दूसरा अंग अत्यधिक ऊँचाई पर बना हुआ है। गर्भ–गृह अंत में सबसे ऊँचाई पर बना है। मन्दिर में मुख्य प्रतिमा कदंरिया महादेव की है। मन्दिर के उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी कोनों पर बने आलों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। इस मन्दिर की मुख्य विशेषता इसके अंग–प्रत्यंगों पर किया गया मूर्तन है। स्थापत्य के साथ मूर्तिकला का यह संगम इसकी कलात्मकता में अद्‌भुत रस भर देता है।

8.6.2 द्रविड़ मंदिर वास्तुकला

द्रविड़ मंदिर वास्तुकला सर्वथा मुस्लिम आतताइयों की क्रूर दृष्टि से वंचित रहकर निज प्रतिभा एवं सौंदर्य को संजोए हुए है। दक्षिण भारतीय शासक राजनीति के साथ संस्कृति के विभिन्न अवयवों के विकास में भी पूर्ण सजग थे। गुप्त युगीन दो भूमिक मंदिरों को आधार मानकर दक्षिण के कलाकारों ने मंदिर वास्तु की एक पृथक शैली को विकसित किया जो द्रविड़ अथवा दक्षिण भारतीय शैली के नाम से विख्यात है। द्रविड़ शैली के मंदिर का विकास लगभग 7वीं शताब्दी ईस्वी में हुआ। कलाकार अपनी कल्पना एवं प्रतिभा से उसके सौंदर्य वर्धन के विभिन्न क्षेत्रों

में पूर्ण स्वतंत्रता एवं शासक के विपुल वैभव तथा सांस्कृतिक प्रोत्साहन से ही दक्षिण भारत में आर्य शैली से पृथक नई मंदिर वास्तु का उद्‌भव हुआ। द्रविड़ शैली के मंदिर नागर मंदिरों से सर्वथा भिन्न है। इस शैली के मंदिर का आधार भाग वर्गाकार होता है। गर्भ गर्भगृह के ऊपर का भाग सीधा पिरामिड नुमा होता है, जिसमें अनेक मंजिलें होती हैं। इसके शीर्ष भाग आकार 6 से 8 पहल का होता है। द्रविड़ शैली के मंदिर की प्रमुख विशेषताएं है कि यह काफी ऊंचे होते हैं तथा विशाल प्रांगण से घिरे होते हैं। प्रांगण के भीतर छोटे–बड़े अनेक मंदिर एवं जलकुंड आदि बने होते हैं। प्रांगण का मुख्य प्रवेश द्वार गोपुरम कहलाता है। यह गोपुरम इतने ऊंचे होते हैं कि अनेक बार मुख्य मंदिर का शिखर गौड़ हो जाता है। कृष्णा अथवा तुंगभद्रा नदी से कुमारी अंतरीप तक द्रविड़ शैली के मंदिर निर्मित हुए हैं। विकास क्रम के आधार पर द्रविड़ मंदिर स्थापत्य शैली को निम्न कोटियों में विभक्त किया जा सकता है।

पल्लव युगीन मंदिर(600से 900ई तक)

राष्ट्रकूट युगीन मंदिर(750 से 950 ई तक)

चोल युगीन मंदिर(900 से 1150ई तक)

पाण्ड्य युगीन मंदिर वास्तु(1100 से1350ई तक)

8.6.3 बेसर मंदिर वास्तुकला

बेसर का शाब्दिक अर्थ है मिश्रित अर्थात नागर और द्रविड़ शैली के मिश्रित रूप को बेसर की संज्ञा दी गई है। इस शैली का विन्यास द्रविड़ शैली का तथा रूप में नागर शैली का होता है। दो विभिन्न शैलियों के कारण उत्तर और दक्षिण के विस्तृत क्षेत्र के बीच एक क्षेत्र बन जाता है जहां इनके मिश्रित रूप में बेसर शैली प्रस्फुटित हुई। इस शैली के मंदिर विंध्य पर्वत माला से कृष्णा नदी तक निर्मित है। लेकिन कला का क्षेत्र विस्तृत है उसे सीमा बद्ध करना संभव नहीं है अतः मंदिर निर्माण शैली की भी अपनी सीमाएं नहीं है कहीं–कहीं है उत्तर दक्षिण चली गई है यही कारण है कि नागर शैली के कुछ मंदिर दक्षिण में तथा द्रविड़ शैली के मंदिर उत्तर में भी पाए जाते हैं। वृंदावन का गोपुरम युक्त विशाल वैष्णो मंदिर द्रविड़ शैली की ही कृति है। इस मिश्रित शैली के मंदिर पाश्चात्य कालीन चालुक्य नरेशों ने कन्नड़ जिले में तथा होयसल नरेशों ने मैसूर में निर्मित किए। पूर्वी चालुक्य के नरेश ने एहोल में द्रविड़ विन्यास तथा द्रविड़ रूप के मंदिर निर्मित की। यह मंदिर आमने–सामने की दो पहल सीधे होते थे और अन्य दो झुके हुए उनका निचला भाग ग्रीवा तक वर्गाकार होता था तथा तीर्थ वृत्ताकार बनाए जाते

थे ताकि गोलाकार शिखर से वे मंडित किए जा सके। शिल्प कलाकारों के लिए बेसर शैली एक विवाद का विषय है। संभव है बेसर मंदिरों से उनका अभिप्राय चालुक्य मंदिरों से ही हो, शिल्प शास्त्र में वर्णित परिभाषा के अनुसार बेसर मंदिरों का अग्रभाग वर्गाकार तथा भीतरी भाग वृत्ताकार होना चाहिए लेकिन चालुक्य के मंदिरों का वास्तु विन्यास इस से सर्वथा भिन्न है। बेसर शैली के मंदिरों के भी दो मुख्य अंग विमान एवं मंडप कभी–कभी मंडप के सामने खुला अर्धमंडप से प्राप्त होता है। विमान का शिखर पिरामिड के आकार का है जिसके तीर्थ पर गुंबद के आकार की संरचना है। मंडप स्तंभों पर टिका सपाट छत से युक्त है। शिखर में ऊर्ध्वाधर आला पंक्तियां बनी है, जिससे नागर मंदिरों की भांति ऊंचाई का आभास होता है। इन मंदिरों में ढके प्रदक्षिणा पथ का भी अभाव है। मंडप का क्षेत्रफल विमान से अधिक है। लंबवत दीवारें नागर शैली के रथों से युक्त हैं किंतु उनमें अलंकरण द्रविड़ शैली की भांति है, सभी रिक्त स्थानों से अलंकृत होने के कारण मंदिर सौंदर्य पूर्ण दृष्टिगत होते हैं।

8.7 सारांश

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि गुप्त शासक ब्राह्मण धर्म को मानते थे और उनकी भक्ति विशेष रूप से विष्णु में थी, किंतु उन्होंने बौद्ध धर्म और जैन धर्म के लिए भी उदारता दिखायी। पौराणिक हिंदू धर्म में तीन देवता हैं विष्णु, शिव एवं शक्ति। शिव के प्रति उनमें विशेष अनुराग था यानी शिव अग्रणी देवता थे। यद्यपि दक्षिण और पूर्व में शैववाद का विकास हुआ तथा दक्षिण–पश्चिम मालाबार के कुछ भागों में एवं पूर्वी भारत में शक्तिवाद का विकास हुआ। कृष्ण पर आधारित वैष्णववाद था, जो मुख्यतः भारत के उत्तरी एवं मध्यम भाग में केंद्रित रहा। इन सभी धार्मिक देवताओं की पूजा सब जगह होती रही और उनके मन्दिर एवं उनकी मूर्तियाँ सब जगह प्रतिष्ठापित हुई। गुप्त कला अध्यात्मिक गुणों से युक्त है और उसकी दृष्टि भी जीवन की गहन सच्चाई को दर्शाती है। यद्यपि गुप्तकाल का प्रारंभिक दौर हिंदू कला पर जोर देता है, जबकि बाद का युग बौद्ध कला का शिखर युग है, जो सभी प्राचीन कलाओं और उनकी मनोभावना व गुणवत्ता का द्योतक है।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।

- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान*. (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज*.पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- फर्गुसन. "हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इस्टर्न आर्किटेक्चर"
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

8.9 बोधप्रश्न

1. मन्दिर स्थापत्य की. नागर शैली की विवेचना कीजिए।
3. मन्दिर स्थापत्य की द्रविड शैली की विवेचना कीजिए।
4. मन्दिर स्थापत्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

इकाई–9 : चन्देल, कलचुरि एवं परमार कालीन कला–खजुराहो समूह

इकाई की रुपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 चन्देल कालीन मन्दिर

9.4 खजुराहो मंदिर समूह

9.5 कंदरिया महादेव मंदिर

9.6 उड़ीसा के मंदिर नागर

9.7 उड़ीसा मंदिर वास्तु की विशिष्टताए

9.8 लिंगराज मंदिर

9.9 कोणार्क का सूर्य मंदिर

9.10 सारांश

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.12 बोधप्रश्न

9.1 प्रस्तावना

मध्य भारत शिखर मंदिरों के लिए सर्वाधिक धनी क्षेत्र है। यहां गुप्त युग से ही शिखर मंदिरों का विकास परीलक्षित होता है। मध्य प्रदेश के छतरपुर में स्थित खजुराहो से नगर मंदिरों के सर्वोत्तम एवं सुरूचिपूर्ण उदाहरण प्राप्त होते हैं। यहां से लगभग 30 मंदिर उपलब्ध हुए है। यह चंदेलों की धार्मिक राजधानी थी, जो पर्वतों के मध्य स्थित होने के कारण आक्रमणों से भी सुरक्षित रही। इन मंदिरों की तिथियां विवादास्पद हैं। **फर्गुसन** ने अपनी पुस्तक **"हिस्ट्री ऑफ**

इंडियन एंड इस्टर्न आर्किटेक्चर" में लिखा है – "सामान्यतः इन मंदिरों को 950 से 1050 ईस्वी के मध्य धंग एवं विद्याधर के काल में निर्मित किया गया है।" **बी.ए. स्मिथ** की पुस्तक **"फाइन आर्ट्स इन इंडिया एंड सीलोन"** में इन मंदिरों के निर्माण का श्रेयचैदेलों को दिया गया है। **पर्सी ब्राउन**ने अपनी पुस्तक **"इंडियन आर्किटेक्चर"** में लिखते हैं **"चंदेल शासको ने इसे मात्र प्रश्रय प्रदान किया था तथा कलाकारों ने पूर्व प्रचलित वास्तु शैली को परंपरानुसार पराकाष्ठा प्रदान किया है।"**

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

चन्देल कालीन वास्तुकला एवं मूर्तिकला को।

कंदरिया महादेव मंदिर की स्थाप्त्य विशिष्टताओं के बारे में।

खजुराहो मंदिर समूह के बारे में।

चन्देल कालीन मूर्तिशिल्प के बारे में।

कलचुरि एवं परमार कालीनवास्तुकला एवं मूर्तिकला को।

9.3 चन्देल कालीन मन्दिर

चन्देल कालीन मन्दिर –**"खजुराहों"**– मध्यप्रदेश के छत्तरपुर जिले में 9वीं से 12वीं शताब्दी तक

↓

तीन चरण

↓

प्रथम –चौसठ योगिनी मन्दिर, आदि बराह मन्दिर, मतंगेश्वर मन्दिर, लाल गोड महादेव मन्दिर एवं ब्रह्म मंदिर।

द्वितीय – लक्ष्मण, पार्श्वनाथ, कन्दरिया महादेव मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर।

तृतीय –जगदम्बी, चित्रगुप्त, आदिनाथ मन्दिर, तुला देवी मन्दिर।

9.4 खजुराहो मंदिर समूह

खजुराहो से शैव, वैष्णव एवं जैन मंदिर प्राप्त होते हैं। तीनों संप्रदायों के मंदिरों का एक साथ निर्माण चंदेलों की धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। फर्गुसन ने अपने ग्रंथ हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर"में ठीक ही लिखा है "यह मंदिर उस समय बने होंगे जब चंदेल राज्य में पूर्ण सांप्रदायिक सामंजस्य रहा

होगा, प्रतिद्वंदिता मात्र कलात्मक अभिव्यक्ति में रही होगी। मंदिरों की रचना शैली से इन मंदिरों का धार्मिक विभाजन असंभव है, मात्र प्रतिमाओं से ही ज्ञात होता है कि मंदिर किस धर्म से संबंध है।"

खजुराहो क्षेत्र के मंदिर अन्य हिंदू मंदिरों से पृथक क्षेत्रीय शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं पर्सी ब्राउन ने अपनी पुस्तक "इंडियन आर्किटेक्चर" में लिखा है "यहां मंदिर न किसी प्रांगण में है और ना तो विशालता पर ध्यान दिया गया है, किंतु सौंदर्य के क्षेत्र में अग्रणी है। उच्च अधिष्ठान पर स्थित यह मंदिर गर्भ गृह, अंतराल मंडप एवं अर्द्ध मंडप से युक्त है। अर्द्ध मंडप का शिखर सबसे छोटा तथा गर्भ गृह का शिखर सर्वोच्च है। गर्भ गृह के अतिरिक्त अन्य भागों की छते गुंबदाकार हैं, जबकि उड़ीसा में ये पिरामिडकार हैं।"रोलॉ अपने ग्रंथ **"द आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया"** में लिखते है कि "नागर वास्तुकला की परिणति खजुराहों के शिखरों में निहित है। उन शिखरों का सौन्दर्य मुख्यतः उनके स्वरूप एवं उरूश्रृंगों के विभाजन में दृष्टिगत होता है।" **"ए हैण्डबुक ऑफ इण्डियन आर्ट**" में हैबेल ने इसे आराध्य देव की सार्वभौमिक शक्ति का प्रतीक माना है। शिखरों के आधार पर खजुराहों के मन्दिर दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते है –

1. अंग शिखर विहीन मंदिर तथा
2. अंग शिखर युक्त मंदिर।

मंदिरों के प्रदक्षिणा–पथ के आधार पर भी इन्हें दो समूह में विभक्त किया गया है–

1. निरंधार मंदिर
2. सान्धार मंदिर

जो मंदिर प्रदक्षिणा–पथ युक्त हैं उन्हें सान्धार तथा जो प्रदक्षिणा–पथ विहीन है उन्हें निरंधार मंदिर कहा गया है। विकास क्रम की दृष्टि से निरंधार एवं अंगशिखर विहीन मंदिर पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। अंग शिखर रहित मंदिरों में **आदिनाथ एवं वामन** तथा **शिखर युक्त मंदिरों में कंदरिया महादेव** प्रमुख हैं।

9.5 कंदरिया महादेव मंदिर

खजुराहो के मंदिरों में सबसे श्रेष्ठ कंदरिया महादेव का मंदिर है। इसके शिखर व अलंकरणों की अपनी विशिष्ट पहचान है। इस मंदिर में पहुँचने के लिये सीढ़ियों से होकर 13 ऊँचे चबुतरों पर चढ़ना होता है, जिस पर यह मंदिर बना है। इसके अंगों में एक विचित्र ढलाव है। क्रमशः पहले अंग की अपेक्षा दूसरा अंग अत्यधिक ऊँचाई पर बना हुआ है। गर्भ–गृह अंत में सबसे ऊंचाई पर बना है। मंदिर में मुख्य प्रतिमा कंदरिया महादेव की है। मंदिर के उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी कोनों पर बने आलों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित है।

इस मंदिर की मुख्य विशेषता इसके अंग प्रत्यंगों पर किया गया मूर्तन है। स्थापत्य के साथ मूर्तिकला का यह संगम इसकी कलात्मकता में अद्‌भुत रस भर देता है। यह मंदिर 109 फुट लंबा 60 फुट चौड़ा तथा 116 फुट ऊंचा है। एक उच्च अधिष्ठान पर स्थित इस मंदिर के छः प्रमुख क्षैतिज अंग है– अर्द्ध मंडप, मंडप, महामंडपम, अंतराल, गर्भगृहतथा प्रदक्षिणापथ।

मंदिर का गर्भगृह 'सप्तरथ' है तथा 'बाढ़' को सात भागों में विभाजित किया गया है। उच्च अधिष्ठान के ऊपर विशाल 'पादभाग' है ऊपरक्रमशः गहरी लहरों से प्रकाश एवं छाया के सिद्धांत पर घटता गया है। तदुपरान्त **बाढ़** का मुख्य भाग **जंघा** प्रारंभ होता है, जो दो बाधनों एवं तीन विशाल मूर्ति पट्टों से पाँच भागों में विभाजित है। इसमें 900 मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। जंघे के पश्चात **वरण्ड भाग** है, जिसमें अनेक गहरी लहरें हैं तथा वहीं से शिखर का निर्माण प्रारंभ होता है।

शिखर विशाल एवं आकर्षक है तथा अंग शिखरों एवं प्रमुख शिखर के मध्य पूर्ण तादात्मय है। शिखर के ऊपर विशाल आमलक एवं कलश है। गर्भगृह की ही भाँति अन्तराल, मण्डप एवं अर्द्धमण्डप पर भी पृथक–पृथक परम्परागत कोणिक शिखर बने हैं, जिनके ऊपर आमलक एवं कलश मुख्य शिखर के लघु रूप को उद्घाटित करते हैं।

मन्दिर का अन्तः भाग भी बाह्य भाग की भाँति वैविध्यपूर्ण है। **पर्सी ब्राउऩ** ने **"इण्डियन आर्किटेक्चर"** में इसका विवरण देते हुए लिखा है– "मंदिर के पूर्व में प्रवेश–द्वार है, जो दीर्घ एवं विशाल सोपानमाला से सुशोभित है। पाषाण स्तंभों से निर्मित प्रवेशद्वार हस्तिदन्तोत्कीर्ण कलाकृति अथवा झुलती लता की भांति अलंकृत है। मण्डप एवं गर्भगृह को आवृत्त करता महामण्डप बड़े झरोखों से अलंकृ त है, जिनकी छतें गुम्बदाकार हैं। मण्डप चार स्तंभों पर टिका है। स्तंभ यद्यपि वर्गाकार है किन्तु उनके शीर्ष अष्टभुजाकार हैं, जिन पर मेहराब बने हैं। मंदिर के विभिन्न अंगों के फर्श की ऊंचाई भिन्न–भिन्न है। अर्द्धमण्डप से क्रमशःये ऊँचे होते

गए हैं तथा गर्भगृह का फर्श सर्वाधिक ऊँचा है।

कन्दरिया महादेव मंदिर वास्तुगत दृष्टि से निर्दोष, आनुपातिक, सौन्दर्यपूर्ण एवं उद्येश्यपूर्ण है। इसके विभिन्न अशों में साम्य एवं सन्तुलन वास्तुकला के उच्चादर्श के द्योतक है। मूर्तिकला एवं वास्तुकला का अद्भुत सांमजस्य निश्चय ही आधुनिक कला मर्मज्ञों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम है।

9.6 उड़ीसा के मंदिर नागर

शताब्दीयों के इतिहास को समेटे उड़ीसा के मंदिर नागर शैली की विशिष्टताओं से परिपूर्ण है। फर्गुसन महोदय ने आपनी पुस्तक **"हिस्ट्र ऑफ एण्ड ईस्टर्न आर्किअेक्चर"** में लिखा है – उड़ीसा के ये नागर मंदिर भारत की पूर्ण एवं मौलिक वास्तुकला के परिचायक है। उड़ीसा में नागर शैली के मंदिर समुद्रतट के समानान्तर लगभग 400 मील की पट्टी में विस्तृत हैं। यहां 7वीं – 8वीं शती ई. से लेकर 13वीं शती. ई. तक इन मंदिरों का क्रमिक विकास अभिलक्षित होता हैं। उड़ीसा में नागर शैली के मंदिरों के उद्‌भव के सम्बन्ध में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती।

उड़ीसा के मंदिर

पर्सी ब्राउन ने अपनी पुस्तक "इण्डियन आर्किटेक्चर" में लिखा है –सर्वप्रथम मुखलिंगम नगर में नागर शैली का उद्‌भव हुआ जहांसे उड़ीसा के उत्तरी क्षेत्र में इसका विस्तार हुआ। मुखलिंगम गंग वंशीय शासकों का प्रमुख राजनीतिक केन्द्र था।

9.7 उड़ीसा मंदिर वास्तु की विशिष्टताएँ

उड़ीसा के वास्तुकारों ने मंदिर तथा उसके अंगों को देश के अन्य क्षेत्रों से भिन्न नामावली प्रदान की है। ओ0सी0 गांगुली ने अपने ग्रन्थ **"उड़ीसा एण्ड हर रिमेन्स"** में कुछ ऐसे ही नामावलियों का उल्लेख किया है। जहां मंदिर के लिए 'देवल' शब्द प्रयुक्त हुआ है, वहीं गर्भगृह को श्री मंदिर तथा सामने के मण्डप को जगमोहन कहा गया है। श्रीमंदिर के ऊपर के शिखर को रेखा देवल तथा जगमोहन के शिखर को भद्र या पीढ़ा देवल के नाम से सम्बोधित किया गया है। जगमोहन के समझ निर्मित दो अन्य मण्डपों को नाट मंदिर एवं भोग मंदिर की संज्ञा से

अभिहित किया गया। नाट मंदिर में देवता को प्रसन्न करने हेतु नृत्य–गान होता था तथा भोग मंदिर में देवता को उपहार चढ़ाए जाते थे। श्रीमंदिर के चार मुख्य भाग थे –

1. पिष्ट – मंदिर के अधिष्ठान को उड़ीसा के वास्तुकारों ने पिष्ट की संज्ञा दी है।
2. बाढ़ – पिष्ट के ऊपर की लम्बवन्त दीवार बाढ़ कहलाती है। इसके ऊपरी भाग को ऊपर जंघा तथा नीचे के भाग को तल जंघा कहा जाता है। बाढ़ एवं शिखर को विभाजित करने वाला भाग वरण्ड कहलाता है।
3. गण्डी – शिखर को गण्डी कहा गया है। गण्डी के चारों ओर आमलक निर्मित होते है। दो आमलको के मध्य उर्ध्वाकार भाग को भूमि तथा आमलकों को भूमि आमला कहा जाता है।
4. मस्तक – गण्डी का ऊपरी भाग मस्तक कहलाता है जो चार अंशों में विभाजित होता है। गण्डी के ठीक ऊपर का चौकोर भाग कण्ठ या बेकी कहलाता है। इसके ऊपर आमलक शिला या अमलसारक होता है। आमलक के ऊपर की छत्राकृति खपूरी के नाम से विदित है। इसके ऊपर कलश तथा देव चिह्न होता है। बाढ़ एवं गण्डी वर्गाकार होते है किन्तु मस्तक वृत्ताकार होता है। सम्पूर्ण मंदिर को मानव शरीर का रूप माना जाता है। अतः जहां बाढ़ दो पैरों का प्रतिनिधित्व करता है, गण्डी कमर से वक्ष तक तथा मस्तक गर्दन से सिर तक के भाग का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रीमंदिर एवं जगमोहन का अन्तः भाग वर्गाकार होता है किन्तु बाह्य भाग दीवारों के मध्य बढ़े हुए अंशों के कारण क्रांस रथ कहलाता है। यदि एक अंश बाहर निकला है तो दीवार के बाह्य भाग में तीन अंग (एक बाहर निकला तथा दो उसके किनारे दीवार के मूल अंश) बन जाते है। ऐसे मंदिर त्रीरथ मंदिर

कहलाते है। यदि दीवार के दो, तीन या चार अंग निकले है तो पंचरथ, सप्तरथ या नवरथ मंदिरों का निर्माण होता है। दीवार के ये प्रशिप्तांग गण्डी के ऊपर भी जाते है। जो पग कहलाते है। मध्य के पग को राहा पग कोण के पग को कोणक पग तथा दोनों के मध्य के पगों को अनुराहा या अनर्ध पग कहते है। जगमोहन तथा उसके समझ नाट या भोग मण्डप पर क्रमशः घटते हुए खण्डों का पिरामिडाकार शिखर होता है जिसके ऊपर औंधे घण्टे की आकृति होती है। इसके बाद रेखा देउल की भांति कलश होता है। इस प्रकार उड़ीसा के मंदिरों की योजना एवं विकास में नागर शैली का एक विचित्र किन्तु सुनियोजित स्वरूप दृष्टिगत होता है।

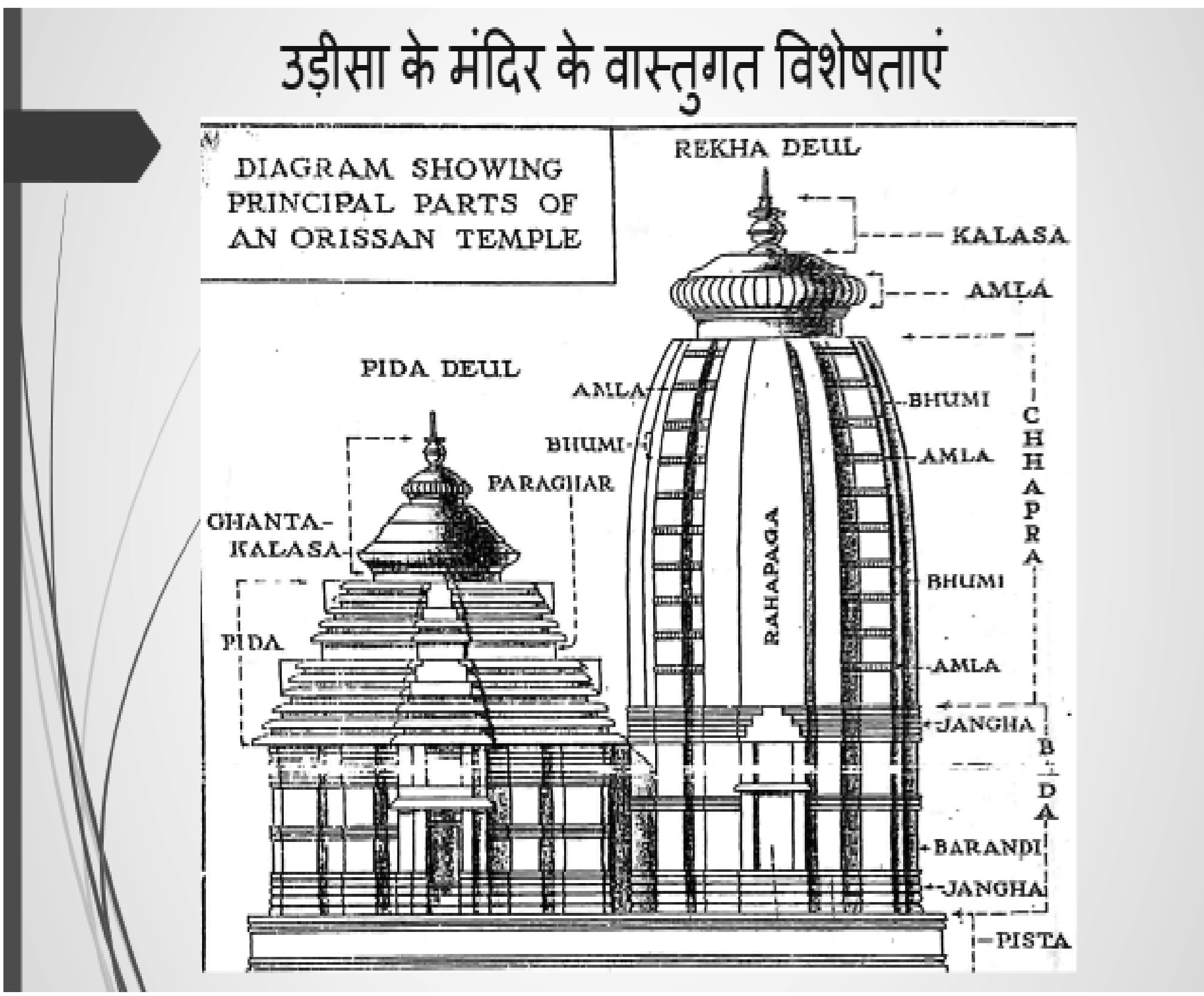

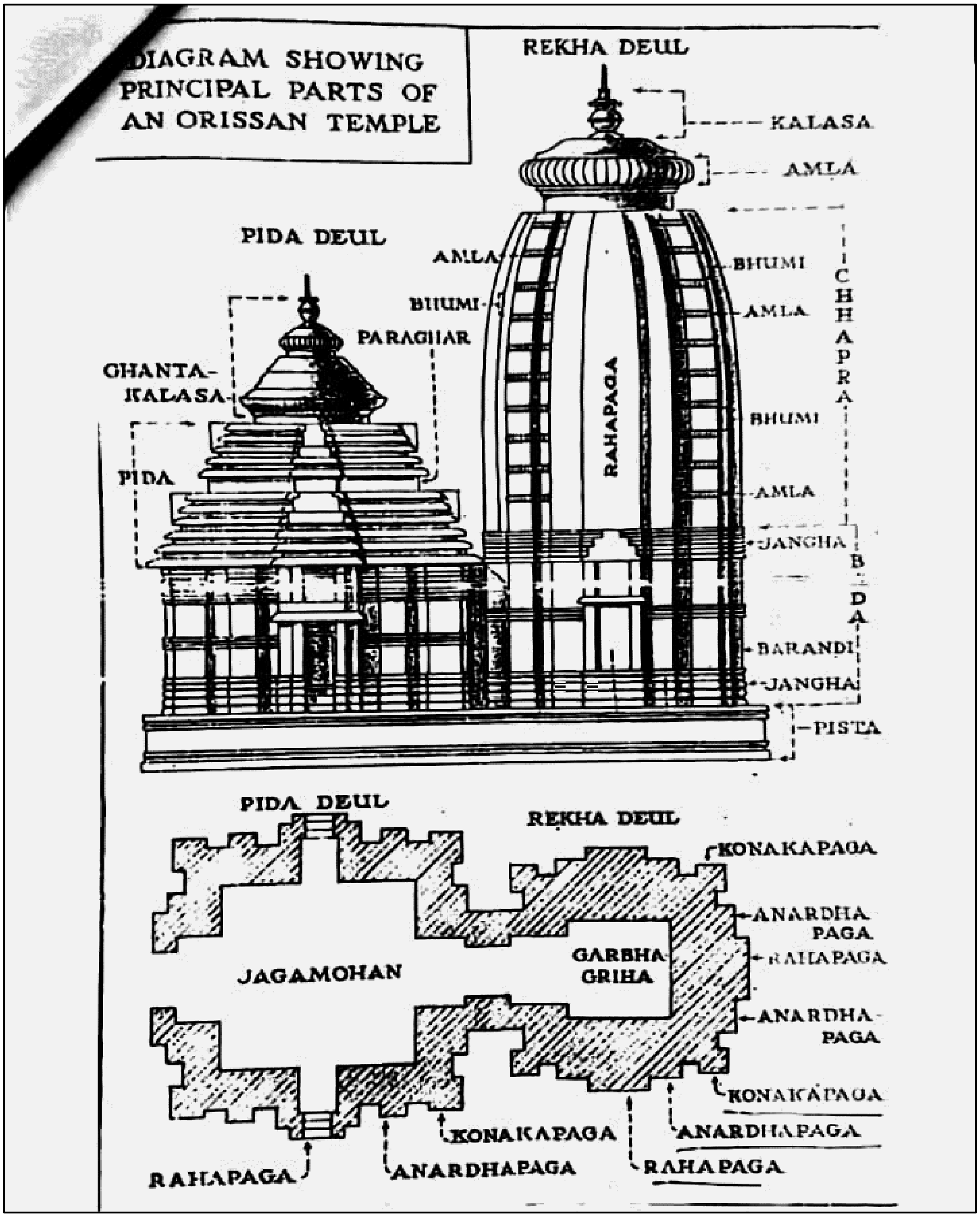

9.8 लिंगराज मंदिर

यह मन्दिर उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर में स्थित है। भुवनेश्वर का यह मन्दिर प्राचीनतम मन्दिरों में से एक तथा मुख्य मंदिर है। यह मन्दिर भगवान त्रिभुनेश्वर को समर्पित है। इसे ललाटडुकेशरी ने 617–657 ई. में बनवाया था। यद्यपि इस मन्दिर का वर्तमान स्वरूप 1090–1104 ई. में बना किन्तु इसके कुछ

हिस्से 1400 वर्ष से भी अधिक पुराने है। जिसका निमार्ण सोमवंशी नरेश जजाति केशरि ने करवाया था। उसने तभी अपनी राजधानी को जाजनगर से भुवनेश्वर में स्थानानान्तरित किया था। इस स्थान को बह्रम पुराण में एकाम्र क्षेत्र बताया गया है।

भुवनेश्वर के मंदिरों में लिंगराज मन्दिर उड़ीसा शैली का अच्छा उदाहरण है। मन्दिर ऊंची दीवारों से घिरे एक विशाल प्रांगण 520 X 465 स्कावायर फिट

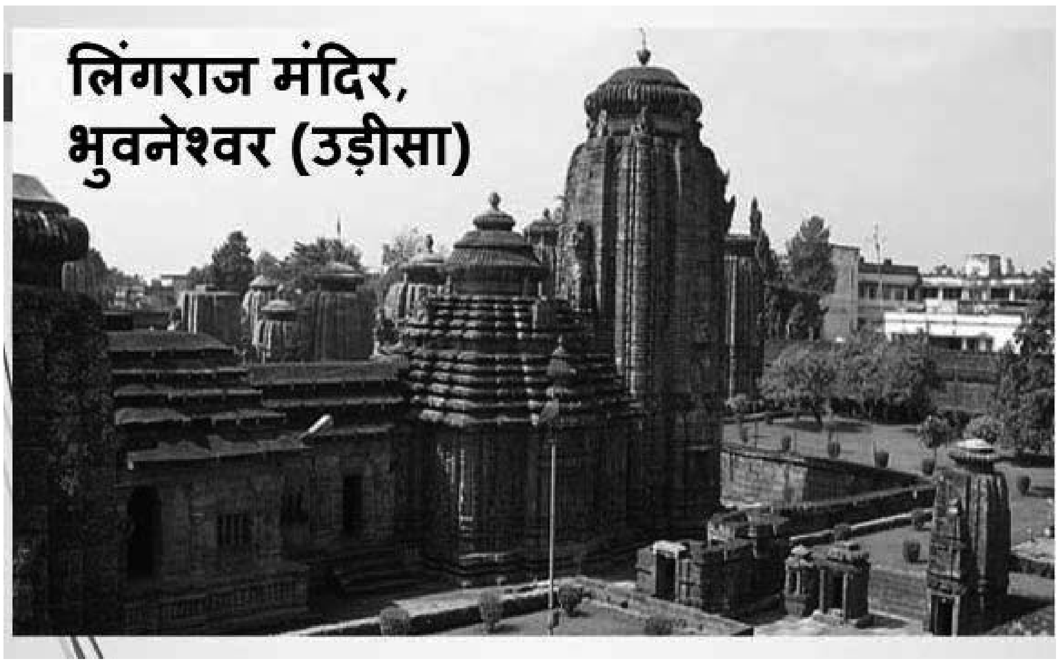

के बीच स्थित है। पूर्वी दीवार के बीच एक विशाल प्रवेशद्वार है जिसके चारों ओर कई छोटे–छोटे मन्दिर बने है इन सबमें लिंगराज का विशाल मन्दिर उत्कृष्ट है। इसमें चार विशाल कक्ष है – देउल, जगमोहन, नटमण्डप तथा भोग मण्डप। इन्हे एक ही सीध एवं पंक्ति में बनाया गया है। मन्दिर के मुख्य भाग देउल या गर्भगृह के ऊपर अत्यन्त ऊंचा शिखर बनाया गया है। इसकी गोलाकार चोटी के ऊपर पत्थर का आमलक तथा कलश रखा गया है। इस मन्दिर का शिखर पुर्ण रूप से सूरक्षित है। यह लगभग 160 फिट ऊंचा तथा इसके चारों कोनों पर दो सिंह बने है। शिखर के बीच में ऐसी कटान है, जो बाहरी दीवाल में ताख बना देती है। उसमें सुन्दर आकृतियां बनी हुई साफ दिखाई देती है। सबसे ऊपर त्रिशुल स्थापित किया गया है। मन्दिर का मुखमण्डप जगमोहन भी काफी सुन्दर है। इसकी ऊंचाई 100 फिट के लगभग है। अलंकरण योजना गर्भगृह के ही समान है। नाटमण्डप तथा भोगमण्डप को कालान्तर में निर्मित कर जगमोहन से जोड़ दिया गया है। ये जोड़ाई इतनी बारीकी से की गयी है कि जगमोहन की बनावट से अलग नहीं लगते। उड़ीसा शैली के मन्दिर की भीतरी दीवार सादी तथा अलंकरण रहित है। प्रत्येक मण्डप में चार स्तम्भ ऊपरी भार को सम्भाले हुए है। किन्तु मन्दिर की

बाहरी दीवार पर श्रृंगारिक दृश्यों का अंकन है जिसमें कुछ अत्यन्त अश्लीलता की कोटी में आते है। लिंगराज मंदिर उड़ीसा शैली के प्रौढ़ मंदिरों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भुवनेश्वर में कुल आठ हजार मन्दिर थे, जिनमें पांच सौ की संख्या अब भी वर्तमान में हैं। सभी मन्दिरों में लिंगराज गौरव विशिष्टता और बनावट की दृष्टि के अनुपम है।

9.9 कोणार्क का सूर्य मंदिर

कोणार्क का सूर्य मंदिर विश्व के मंदिरों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह मंदिर अपनी विशालता एवं प्रतिमाओं की भव्यता की दृष्टि से विश्वविख्यात है। पूरी से लगभग 20 मील उत्तर–पूर्व मे कोणार्क समुद्र तट पर कलिंग के गंग शासकों का सांस्कृतिक केंद्र था। गंग नरेश नरसिंह ने 1238–1264 ईस्वी के मध्य इस मंदिर का निर्माण कराकर आध्यात्मिकता–का अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित किया। इसमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की क्रमिक आवाप्ति होती है। अबुल फजल ने आईने अकबरी में लिखा है कि "एक कटु आलोचक एवं पाषाण हृदय व्यक्ति भी इसके दर्शन से आश्चर्यचकित हो जाता है"। मंदिर को देखने से ऐसा आभास होता है कि कलाकार जिस काल्पनिक ऊँचाई तक इस मंदिर को पहुँचाना चाहता था, वह भौतिक रूप से दुष्प्रयास किया। कलाकारों ने मंदिर में विविधता आरोपित कहने हेतु श्री मंदिर एवं जगमोहन के समक्ष नाट मंडप तथा भोग मंडप को पृथक–पृथक अधिष्ठान पर निर्मित किया है। भोग मंडप तो नष्टप्राय है किंतु नाटमंडप एवं जग मोहन को आबद्ध करने हेतु सोपान निर्मित है। श्री मंदिर एवं जग मोहन को शिल्पकारों ने सूर्यरथ की भाँति निरूपित किया है। विशाल पृष्ठभाग पर गहरी लकीरें हैं जिनमें हस्ती पंक्ति इस प्रकार निर्मित है मानो वे संपूर्ण मंदिर का भार वहन कर रहे हो। इसके ऊपर 10 फुट ब्यास के 12 चक्र बने हैं जो रथ मंदिर को गतिमान करते प्रतीत होते हैं। उसके समझ सात अश्व इस मुद्रा में निर्मित है जैसे वे रथ कर्षण कर रहे हो।

श्रीमंदिर विभिन्न प्रतिमाओं से अलंकृत है उत्तर–दक्षिण एवं पश्चिम के रथों में ताखे बने हैं, जिनमें सूर्य प्रतिमाएं उपहार स्वीकार करने की मुद्रा में निर्मित है, यद्यपि ध्वस्त हो जाने के कारण शिखर एवं उसके मस्तक का स्वरूप स्पष्ट नहीं है किंतु प्रकाश एवं छाया की उत्तम व्यवस्था लंबवत रेखा एवं शिखर की कल्पनीय ऊँचाई से यह स्पष्ट आभासित होता है कि वास्तुकारों ने इस मंदिर में अपनी उन्नतोमुखीं प्रवृत्ति के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया है। धरातल से लगभग 225 फुट ऊंचा श्री मंदिर का शिखर गगन को चूमता प्रतीत होता है।सूर्य मंदिर का जगमोहन

सात फुट के चबूतरे पर 100 फुट की ऊँचाई तक निर्मित है, जिससे बाड़ एवं छत विभिन्न प्रतिमाओं से अलंकृत है। इसकी पिरामिडॉकार छत खण्डों में विभाजित है। नीचे का खंड विशालतम एवं ऊपर का लघुत्तम है। हर खंड में हार की भाँति रेखाएं बनी है नीचे के दोनों खंडों में छह तथा ऊपर के खंड पर पांच रेखाएं बनी है। इसके ऊपर वृत्ताकार मस्तक है, जो वर्गाकार आधार के विपरीत शैली में है। जगमोहन के पूर्व स्थित नाटमंडप भी उसकी शैली में बना है, जिसके मध्य 30 फुट का अंतराल है। इसी अंतराल में विशाल अरुण स्तंभ था, जो संप्रत्ति पुरी के जगन्नाथ मंदिर के समक्ष स्थापित है। भोग मंडप संभवत नाटमंडप के किनारे बना था, जो पूर्णतया नष्ट हो गया है। मुख्य मंदिर के अतिरिक्त समीप में ही तीन अन्य लघु सूर्य मंदिर बने हैं। संपूर्ण मंदिर 864 × 540 फूट के आयताकार प्रांगण में स्थित है, जिसके तीनों ओरप्रवेश द्वार बने है। सम्प्रती कोणार्क का सूर्य मंदिर उस विशाल प्रतिमा के धड़ की भाँति प्रतीत होता है, जिसके हस्त विच्छेदित हो एवं पाद बालुकावृत्त हो मात्र धड़ से ही यदि उसके पुरातन स्वरूप पर विचार करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व में मूर्तिकला एवं वास्तुकला का ऐसा मनोरम संगम दुर्लभ है। मंदिर के विभिन्न अंगों में जो अनुपात है, वह सौंदर्य शास्त्र के किसी महान ज्ञाता की उर्वरक प्रतिभा एवं संवेदनशील ह्रदय का ही परिणाम परिलक्षित होता है। दूर से यह भाषित होता है कि सूर्य देवता अपने सात अश्वों के रथ पर आरूढ़ हो, आकाश मार्ग में भ्रमण कर रहे हैं, जहाँ मंदिर अपनी विशालता से भव्यता प्राप्त करता है। वही लय एवं गति से सुदृढ़ सुकुमारता प्रस्फुटित होती है। निश्चय ही कोणार्क का सूर्य मंदिर अपनी संपूर्णता में सुर्य की भांति संपूर्ण विश्व को आलोकित करने में सौंदर्य एवं वास्तुकला दोनों ही दृष्टियों से सक्षम है।

9.10 सारांश

चंदेल कालीन मंदिर स्थापत्य में खजुराहो मंदिर समूह का महत्वपूर्ण स्थान है यहाँ से प्राप्त मंदिर नागर शैली में बने हुए हैं। नागर मंदिर स्थापत्य का चरमोत्कर्ष खजुराहो के कंदारिया महादेव मंदिर में दिखाई पड़ता है। कंदरिया महादेव मंदिर अपनी वास्तु स्थापत्य के दृष्टिकोण से विश्वप्रसिद्ध हैं। उड़ीसा के मंदिर भी नागर शैली की विशिष्टताओं से परिपूर्ण हैं, जिसमे भुवनेश्वर का लिंगराज

मंदिर और कोणार्क का सूर्य मंदिर प्रमुख है। यहाँ के मंदिरों को देउल और शिखर को रेखादेउल और पीढ़ादेउल के नाम से संबोधित करते हैं जो नामकरण की दृष्टिकोण से अलग प्रकार का प्रतीत होता है तथा प्राचीन भारतीय कला में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- पर्सी ब्राउन्. "इण्डियन आर्किटेक्चर"
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

9.12 बोधप्रश्न

1. कंदरिया महादेव मंदिर के स्थापत्य पर प्रकाश डालते हुए खजुराहो क्षेत्र के मंदिरों की शैलीगत विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. उडीसा के मंदिर स्थापत्य पर प्रकाश डालते हुए कोणार्क के सुर्य मंदिर की शैलीगत विशेषताओं का उल्लेख करें।

इकाई–10 : पल्लव एवं चालुक्य कालीन कला–मण्डप, रथ (महाबलिपुरम, संरचनात्मक मन्दिर)

इकाई की रुपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 पल्लव वास्तुकला

10.3.1 रथ

10.3.1.1 धर्मराज रथ

10.3.1.2 भीम तथा गणेश रथ

10.3.1.3 नकुल सहदेव रथ

10.3.2 पल्लवकालीन चिनाईकृत मंदिर

10.3.2.1 शोर मंदिर या तटीय मंदिर

10.3.2.2 कैलाश नाथ मंदिर

10.3.2.3 बैकुंठ पेरुमाल मंदिर

10.3.2.4 मुकुंद नायनार मंदिर

10.3.2.5 लाल गिरीश्वर मंदिर

10.4 चालुक्य कालीन कला

10.5 बादामी गुफा मंदिर

10.6 पट्टदकल

10.7 चालुक्य मंदिर स्थापत्य केन्द्र और प्रमुख मंदिर

10.8 मूर्तिकला

10.9 चित्रकला

10.10 सारांश

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.12 बोधप्रश्न

10.1 प्रस्तावना

दक्षिणभारत की कला (द्रविड कला) में पल्लव कला की देन प्रसंसनीय है। इस वंश के प्रमुख शासक महेन्द्रवर्मन प्रथम, नरसिंह वर्मन प्रथम, नरसिंह वर्मन द्वितीय, राज सिंह तथा नंदीवर्मन ने स्थापत्य कला में विशेष अभिरुचि होने के कारण अलग–अलग स्थापत्य शैली का अविष्कार किया फलस्वरूप प्रत्येक राजा के नाम पर उनके शासन काल में एक विशिष्ट भवन निर्माण शैली प्रस्फुटीत हुई।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

पल्लव कालीन वास्तुकला एवं मूर्तिकला को।

चिनाईकृत मंदिर की स्थाप्त्य विशिष्टताओं के बारे में।

शोर मंदिर वास्तु के बारे में।

पल्लवों के मूर्तिशिल्प के बारे में।

चालुक्य कालीन वास्तुकला एवं मूर्तिकला को।

10.3 पल्लव वास्तुकला (16वीं से 9वीं शताब्दी तक तमिलनाडु के क्षेत्र में)

स्थापत्य कला कि दृष्टि से पल्लव वास्तु अवशेषों को मोटे तौर पर दो वर्गो मे बाटा जा सकता है –

प्रथम समुह – नरसिंह शैली (610–640 ई0) या महेन्द्र शैली (645–690 ई0), मामल्ल शैली (नरसिंह वर्मन प्रथम), मण्डप, रथ

द्वितीय समूह – राज सिंह शैली (690–800 ई0), नरसिंह वर्मन, नन्दी वर्मन शैली (800–900 ई0)

महेन्द्र शैली में मण्डपो का निर्माण किया गया, नरसिंह शैली या मामल्ल शैली में मण्डपों के साथ–साथ रथों का भी निर्माण किया गया तथा राज सिंह एवं नन्दी वर्मन शैली में केवल मंदिर का निर्माण करवाया गया। अतएव पल्लव काल में तीन प्रकार के भवनो का परिग्राम सम्भव है –

1) मण्डप
2) रथ
3) मंन्दिर

10.3.1 रथ

गुफा खुदवाने के साथ–साथ नरसिह वर्मन II "मामल्ल ने एकाश्मक विमानों का निर्माण करवाया, जिनका ब्राह्य स्वरूप शोभा यात्रा के दौरान निकाले जाने वाले रथो जैसा था। अतः इन्हें भी रथ की संज्ञा दी गयी। इनकी संख्या नौ है, जो आज भी मामल्लपुरम में मौजूद है, जिनका विवरण निम्नवत् है–

1. धर्मराज रथ
2. द्रोपदी रथ
3. भीम रथ
4. अर्जुन रथ
5. बलैयन कुटुई रथ
6. गणेश रथ
7. नकुल–सहदेव रथ
8. उत्तरी पिडारी
9. दक्षिणी पिडारी

उपयुक्त नौ रथो में पाँच एक ही स्थान में है, जिनमें द्रोपदी, अर्जुन, भीम एवं धर्म–राज रथ एक पंक्ति में है। जबकि नकूल–सहदेव रथ बगल में बना है। शेष चार रथ नगर के चार स्थानों पर अलग–अलग बने है। मण्डपो की भाँती इन रथों का निर्माण भी चट्टानों को काट कर किया गया है।

10.3.1.1 धर्मराज रथ

मामल्लपुर के रथों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विशाल रथ धर्मराज रथ है। इसकी योजना वर्गाकार है। इसकी लम्बाई 42 फीट, चौडाई 35 फीट और ऊँचाई लगभग 50 फीट है। उत्तसेन की दृष्टि से इस रथ को दो भागो में बाटा जा सकता है। (1) वह वर्गाकार भाग जो चारो तरफ स्तम्भ युक्त बरामदे से अलंकृत है। इसके ऊपर पिरामिडाकार शिखर है जो मण्डप की क्रमशः घटते हुए पुनरावृत्ति है। सबसे ऊपर स्तूपि या स्तूपिका लगी है। शिखर के हर खण्डो के मध्य भाग कुछ अन्दर दबा है, जिसमें कुडु बने है।

10.3.1.2 भीम तथा गणेश रथ

भीम तथा गणेश रथ आयताकार प्रकार के क्रमशः एक तलीय तथा द्वितलीय विमान है, इसमें अर्द्धवृत्ताकार शाला शिखर का विमान है। शिखर के स्थान पर एक श्रेणी में कई स्तूपिकाएँ स्थापित है। भीमरथ के गर्भ गृह मे अनन्तसाई विष्णु की मूर्ति उत्कीर्ण है। द्वितलीय गणेश रथ के सामने मुख मण्डप भी बना है। जिसके सामने के खुले भाग में व्याल आकृति दो स्तम्भ तथा दो अर्द्धस्तम्भ खड़े किये गये है। विमानों में दोनों तल पर कुट तथा शालाओ का अंकन है।

भीम रथ

10.3.1.3 नकुल सहदेव रथ

यह वृत्ताकार प्रकार का द्वितलीय विमान है। जिसका छाजन गज वृत्ताकार है। इसके सम्मुख भाग में छोटा सा मुखमण्डप भी है। इसमें व्याल आदृत स्तम्भ लगे है। इस रथ में नाममात्र कि मूर्तियाँ उत्कीर्ण है।

मामल्लपुर के ये स्थापत्य अवशेष पूर्णता नहीं प्राप्त कर सके सम्भवतः वास्तुकारो को या शिल्पियों को राजनीतिक उथल–पुथल के चलते अपना निर्बाध कार्य अधुरा छोड़ना पड़ा। 647 ईस्वी के लगभग नरसिंह वर्मन प्रथम के मृत्यु के साथ ही उसके समय में पल्लवित यह कला भी सदैव में लिए समाप्त हो गयी।

10.3.2 पल्लव कालीन चिनाईकृत मंदिर

पल्लवकालीन कला का दूसरा महत्वपूर्ण साक्ष्य मंदिरों के रूप में या चिनाईकृत मंदिरों के रूप में दिखाई देता है। इन मंदिरों के निर्माण की परंपरा पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन द्वितीय राजसिंह के समय में प्रारंभ हुई। चिनाईकृत मंदिरों की आवश्यकता इसलिए महसूस की गई क्योंकि शैलकृत विमान वही बनाए जा सकते थे जहाँ पहाड़ियां हो, जो की कांचीपुरम् जैसे महत्वपूर्ण स्थान पर बनाना संभव नहीं था। मुलायम किस्म के बलुए पत्थर के प्रयोग से समकालीन चालुक्य राज्य के राजाओं के द्वारा निर्मित कराए जा रहे सुन्दर तथा विशाल मंदिरों की तुलना में पल्लवों द्वारा ग्रेनाइट जैसी कठोर चट्टान के प्रयोग किए जाने से छोटे–छोटे और कम अलंकृत विमान बन रहे थे। अतः नरसिंह वर्मा 'राजसिंह' ने मुलायम किस्म के बलुए पत्थर से चिनाईकृत मंदिरों का निर्माण प्रारंभ करवाया। जिसके फलस्वरूप महाबलीपुरम का शोर मंदिर, कांची का कैलाशनाथ मंदिर जैसे विशाल एवं सुन्दर मंदिर बने लेकिन मंदिर निर्माण कार्य में ग्रेनाइट का प्रयोग बिल्कुल बंद नहीं किया गया अपितु इस मंदिर को दृढ़ता प्रदान करने के लिए प्रयोग किया गया जो कि निम्नवत् दोनों मंदिरों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जिसका विवरण निम्नवत् हैं–

10.3.2.1 शोर मंदिर या तटीय मंदिर

संभवतया राजसिंह के शासनकाल के प्रारंभिक वर्षों में इसका निर्माण हुआ था। इसे समुद्र के किनारे स्थित होने से शोर मंदिर की संज्ञा दी गई। इस मंदिर में तीन विमान मंदिर, प्राकार एवं मंडप पूर्वाभिमुख या समुद्र की ओर अपेक्षाकृत बड़ा है। इसके पीछे पश्चिम की ओर छोटा मंदिर है। दोनों ही मंदिर सूर्य मंदिर है और इन दोनों के बीच में शिखर विहीन वैष्णो मंदिर है, जिसमें अनंत साई विष्णु की मूर्ति बनी है। पश्चिम के छोटे विमान के सीध में ही मंडप तथा गोपुर द्वार बने हैं। वैसे तो संपूर्ण मंदिर एक प्राकार में घिरा है परंतु पूर्व की ओर बने बडें विमान को भी एक अन्य समुचित प्राकार में घेरा गया है, जो केवल पश्चिम की तरफ खुलता है। पश्चिम का विमान छोटा, वर्गाकार तथा त्रितलीय है। उसका ग्रीवा तथा शिखर भाग अठपहल है। इस विमान के भित्ति एवं पाद भाग में खड़े किए गए कुण्य स्तंभों के निचले भाग में आक्रामक सिंह की मूर्तियां बनायी गयी है। पूर्वाभिमुख भाग चार तलीय है। ग्रीवा भाग अठपहल है। इस मंदिर के शिखरों में हार नहीं बना है वरन उनके स्थान पर उनके चारों कोनों पर चार सिंह की मूर्तियाँ बनाई गई है। द्वितीय तथा तृतीय तल में कुट तथा शाला शिखरों का हार है। इस मंदिर पर बने मंडप पर भी इसी तरह की सज्जा दिखती है। मुख्य विमान

का चतुर्थ तल प्रथम विमान जैसा है परंतु इसके चारों कोनों पर भूत/बौनी आकृतियां बनी है। इसका जो अपना प्राकार है, वह प्रथम तल से नीचा है और वह कुट तथा शाला शिखरों से सुसज्जित है। ऐसे में दूर से देखने पर यह मंदिर पंचतल प्रकार का प्रतित होता है। शोर मंदिर के पूर्वाभिमुख विमान तथा पश्चिमाभिमुख विमान दोनों के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित हैं जबकि गर्भगृह के पृष्ठभित्ति पर शिव सोम स्कंध की मूर्ति बनी है। यद्यपि इस मंदिर की मूर्तियां समुद्री हवाओं से घिस गई है लेकिन यह मंदिर अपने उचित अनुपात तथा प्राकृ

तटीय मंदिर

तिक छटा के लिये विख्यात है और तटिय मंदिरों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

10.3.2.2 कैलाश नाथ मंदिर (स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प)

पल्लव कालीन स्थापत्य कला का विकसित रूप कैलाश नाथ मंदिर में दिखाई पड़ता है। कांची का पूर्वाभिमुख कैलाशनाथ मंदिर पल्लवकालीन मंदिरों में सबसे महत्वपूर्ण है। यह राजसिंह तथा उसके पुत्र महेन्द्र वर्मन तृतीय के सामूहिक प्रयास का प्रतिफल है। इसमें पल्लवकालीन मंदिरों के संपूर्ण अंग दिखाई पड़ते हैं। इसका विमान आयताकार, स्वतंत्र मंडप, प्राकार तथा गोपुर द्वार है। मूल विमान चतुष्तलीय एवं सान्धार प्रकार का है और ग्रीवा शिखर अठपहल है। विमान का भित्ति भाग अधिष्ठान के किनारे से न बढ़ाकर, चौड़ा अंदर से किया गया है और अधिष्ठान के ऊपर बचे खाली भाग में लघु विमानों की रचना की गयी है,

जिन्हें, अल्प विमान की संज्ञा दी गयी है। इसमें शिव के विविध रूप प्रदर्शित है जबकि मूल विमान के गर्भगृह में विशाल शिवलिंग तथा उसकी पृष्ठाभित्ति पर सोम स्कंध की मूर्ति स्थापित है। इसमें शिव तथा उमा को बैठे दिखाया गया है। बालक स्कंध को उमा के गोद में और ब्रह्मा तथा विष्णु को उनके पीछे दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त गर्भगृह की आंतरिक भित्ति शादी है जबकि अल्प विमानों के बीच–बीच की भित्ती पर देवी–देवताओं की मूर्तियां प्रदर्शित है।

इस विमान से प्रथम तल तथा तृतीय तल पर कूट तथा शाला शिखरों का हार है, जबकि तृतीय तल पर कुट, शाला के साथ–साथ पंजर भी बनाए गए हैं। चतुर्थ तल पर हार की योजना न कर इनके चारों कोनों पर नंदी की चार मूर्तियां बनाई गई है। मूल विमान के सामने बनाये गये आयताकार स्वतंत्र मंडप की समतल छत को ब्याल आदृत स्तंभ उठाए हुए हैं। मंदिर जिस प्राकार में बना है उसके पूर्व दीवार के मध्य भी विमान जैसी एक आकृति बनी है और इसके दोनों तरफ से प्रकार के प्रांगण़ में जाने के लिए प्रवेश मार्ग है। प्राकार के आंतरिक भाग में 58, अल्प विमानों की श्रृंखला बनी है, जिसमें से दो शाला प्रकार के तथा शेष कूटा प्रकार के हैं। कूटा प्रकार के विमानों में शिव की विविध मूर्तियां प्रदर्शित है जबकि शाला प्रकार के विमानों में ब्रह्मा तथा विष्णु की मूर्तियां बनी हैं और एक छोटा सा गोपुर द्वार भी है। इस मंदिर में सुरक्षित अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस मंदिर का निर्माण राजसिंह की रानियों के अनुरोध पर कराया गया था। यह मंदिर तत्कालीन समय की मंदिर स्थापत्य शैली का अनूठा नमूना प्रस्तुत करता है।

10.3.2.3 बैकुंठ पेरुमाल मंदिर

कँची का **पेरुमाल** मंदिर एक विशाल मंदिर है, इसमें पल्लवकालीन चिनाईकृत मंदिरों का उत्कर्ष दिखाई देता है। ऐसा माना जाता है कि इसका निर्माण नंदिवर्मन् द्वितीय 'पल्लवमल्ल' ने किया था। इसमें चार तलीय शानदार विमान, एक छोटा सा अर्धमंडप है और इन दोनों अंगों को एक दूसरे से एक अंतराल द्वारा संलग्न किया गया है। इन सभी अंगों को भ्रामणी युक्त प्रकार में के अंदर सुनियोजित किया गया। बलुए पत्थर से निर्मित यह मंदिर पश्चिमाभिमुख है। इसकी विमान रचना विलक्षण है, इसमें कुल तीन गर्भगृह हैं, जिन्हें एक के ऊपर बना कर उसमें क्रमशः विष्णु को स्थानक, आसनस्थ बैठी हुई और सयन मूर्तियां प्रतिस्थापित की गई है। प्रत्येक तल के कच्छ अपने नीचे के तल से छोटे बने हैं। इसमें जाने के लिए आंतरिक भाग में सोपान है। प्रथम तथा द्वितीय तल पर केवल कूट तथा शालाएं ही प्रदर्शित है। हार विहीन चतुर्थ तल के कोनों पर

मूलतः सिंह की चार मूर्तियाँ थी लेकिन बाद में उनके स्थान पर चार गरुड़ मूर्तियां स्थापित की गई। इनका ग्रीवा शिखर अष्ठपहल है एवं स्तुपि धातू की बनी है।

प्रथम तल के हार को अर्धमंडप पर भी दर्शाया गया है। एक जालीदार वातायन भी लगा है। विमान के ऊपरी तलों के भित्तियों पर भी मूर्तियां बनाई गई है। इस पर बनी मूर्तियां वैष्णव धर्म से संबंधित है। भ्रामणी युक्त प्रकार के आंतरिक भाग में व्याल आधारित स्तंभों की श्रृंखला है जबकि इसके दीवार पर कुट तथा शाला शिखरों की सज्जा है। प्राकार की ऊँचाई प्रथम तल से कम होने के कारण दूर से देखने पर यह मंदिर पंचतल प्रकार का लगता है। इसमें प्रवेश के लिए पूर्व में द्वार है यहाँ पर पल्लव राजाओं की व्यक्तिगत मूर्तियां भी इस मंदिर में है, जो इस मंदिर की सबसे बड़ी विशेषता है। मंदिरों में तत्कालीन राजाओं की मूर्तियों के संदर्भ में यह मंदिर प्रथम उदाहरण के रूप में प्राप्त होता है।

10.3.2.4 मुकुंद नायनार मंदिर

यह लाल पत्थर से बना है और इस तरह की प्रस्तर के प्रयोग का पहला नमूना है। मंदिर सादा और द्रविड़ शैली का द्वितलीय शिखर युक्त है। इस मंदिर के विविध अंगों के अनुपात में विभिन्नता दिखती है।

10.3.2.5 लाल गिरीश्वर मंदिर

यह मंदिर पल्लवकालीन मंदिरों में एक महत्वपूर्ण मंदिर है, जो राजसिंह के काल में पय्यमपल्ली में लाल रंग के प्रस्तर का बना हुआ है। इस मंदिर के दक्षिण–पश्चिम तथा उत्तर की ओर छोटे आकार के सह मंदिर बने हैं। इस मंदिर की विशेषता है कि इसमें जल निकासी की कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए लगता है कि गर्भगृह में देवता चित्रित थे या मूर्तियां लकड़ी या स्टको की बनी थी। पल्लव राज्य के अंतिम चरण में कुछ मंदिरों का निर्माण नंदिवर्मन् तृतीय तथा उसके उत्तराधिकारियों के द्वारा नवीं शताब्दी ईस्वी में किया गया था। यह मंदिर ऊपर वर्णित मंदिरों की अपेक्षा काफी समान तथा स्थापत्य की दृष्टि से इनमें कोई नवीनता नहीं है। नंदिवर्मन् शैली के जिन मंदिरों का निर्माण हुआ उसमें कांची का मतंगेश्वर मंदिर, गुंडीमल्ल में स्थित परशुरामेश्वर मंदिर प्रमुख हैं। ये सभी मंदिर पूर्ववर्ती निर्माण पद्धति में ही बनाए गए हैं। नवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य में इस वंश की शक्ति क्षीण होने लगी और पल्लवों के पतन के साथ–साथ उनके स्थापत्य शैली की समाप्ति हो गयी हालांकि इस परंपरा में चोल शासकों ने भी मंदिरों का निर्माण करवाया।

10.4 चालुक्य कालीन कला

चालुक्य साम्राज्य की स्थापत्य कला का प्रारम्भ दक्कन के क्षेत्र में हुआ। इसकी कला का प्राचीनतम उदाहरण बौद्ध धर्म के हैं, जिनका विकास तीसरी ईस्वी पूर्व से सातवीं ईस्वी तक रहा। दक्कन की स्थापत्य कला के इतिहास में धर्म का पुनर्जागरण वास्तुकला के संरक्षक चालुक्यों के काल में हुआ। उन्होंने अपनी राजधानी वातापी को अनेक चट्टान, मंदिरों से अलंकृत किया, जिनमें से कुछ अब भी दक्कन में इस शैली के प्राचीन भवनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चालुक्य काल में कला का विकास धीरे–धीरे हुआ। इस काल के प्रमुख केंद्र ऐहोल, वातापी (बादामी), और पट्टदकल। बादामी के चालुक्यों की कला की शुरुआत ऐहोल से है, जबकि चरमोत्कर्ष बादामी और पट्टदकल में दिखता है। ऐहोल में चालुक्यों के प्रारंभिक मंदिर प्राप्त होते हैं, जिस कारण इसे मंदिरों का नगर कहा गया है। ऐहोल के बाद वातापी (बादामी) में पत्थरों को काटकर मंदिरों एवं गुफाओं का विकास हुआ। चालुक्य वंश के अंतिम शासकों ने कला के लिये पट्टदकल एवं आलमपुर को चुना। इसकी अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

यह नागर और द्रविड़ शैली की विशेषताओं से युक्त बेसर शैली है। यहाँ के मंदिरों में चट्टानों को काटकर संयुक्त कक्ष और विशेष ढाँचे वाले मंदिरों का निर्माण देखने को मिलता है। ऐहोल में 70 से अधिक मंदिर हैं जिनमें रविकीर्ति द्वारा बनवाया गया मेगुती जैन मंदिर, लाड़खाँ मंदिर, दुर्गा मंदिर, सूर्य मंदिर बहुत

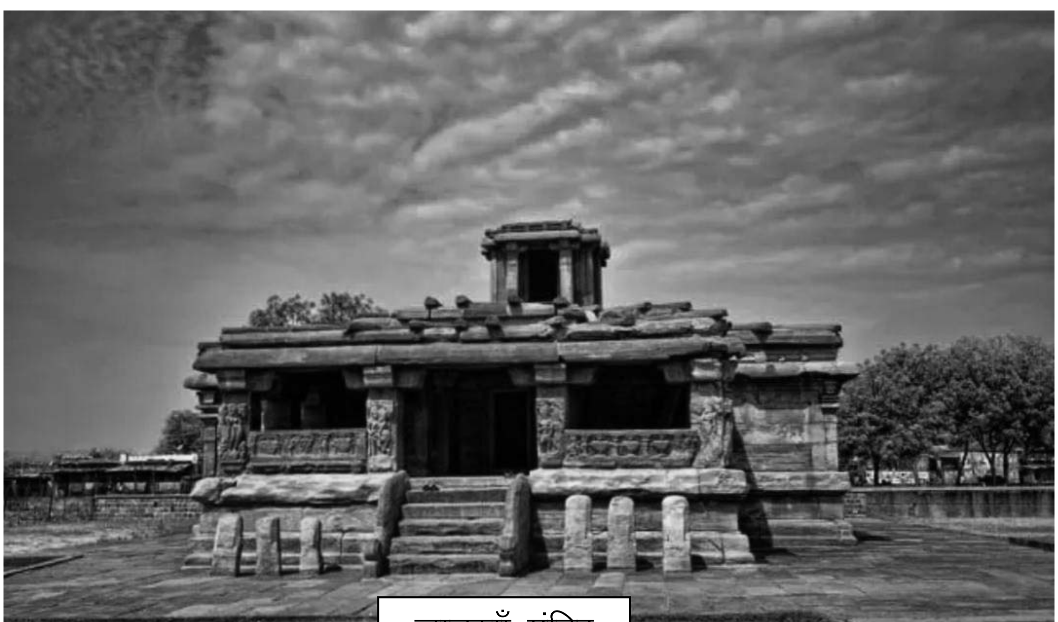

लाड़खाँ मंदिर

प्रसिद्ध हैं। बादामी के गुफा मंदिरों में खंभों वाला बरामदा, मेहराब युक्त कक्ष, छोटा

गर्भगृह और उनकी गहराई प्रमुख है। बादामी में मिली चार गुफाएँ शिव, विष्णु, विष्णु अवतार व जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ से संबंधित हैं। बादामी के भूतनाथ, मल्लिकार्जुन और येल्लमा के मंदिरों के स्थापत्य को ज्यादा प्रसिद्धि मिली है।

बादामी चालुक्य वास्तुकला कर्नाटक राज्य के बागलकोट जिले में मालप्रभा नदी बेसिन में 5वीं – 8वीं शताब्दी में विकसित हुई थी। इस शैली को कभी–कभी वेसर शैली और चालुक्य शैली कहा जाता है, जिसमें 11 वीं और 12 वीं सदी के बाद के पश्चिमी चालुक्य वास्तुकला भी शामिल है। जॉर्ज मिशेल और अन्य द्वारा उपयोग किए जाने वाले प्रारंभिक चालुक्य वास्तुकला, बदामी चालुक्य के बराबर है। सबसे पहले बदामी चालुक्य मंदिर एहोल में लगभग 450 ईस्वी की तारीख में थे, जब बदामी चालुक्य बनवासी के कदंब के शासक थे। इतिहासकार के0वी0 राजन के मुताबिक, मंदिर निर्माण में बादामी के चालुक्यों के योगदान उनकी बहादुरी और युद्ध उपलब्धियों से मेल खाते है।

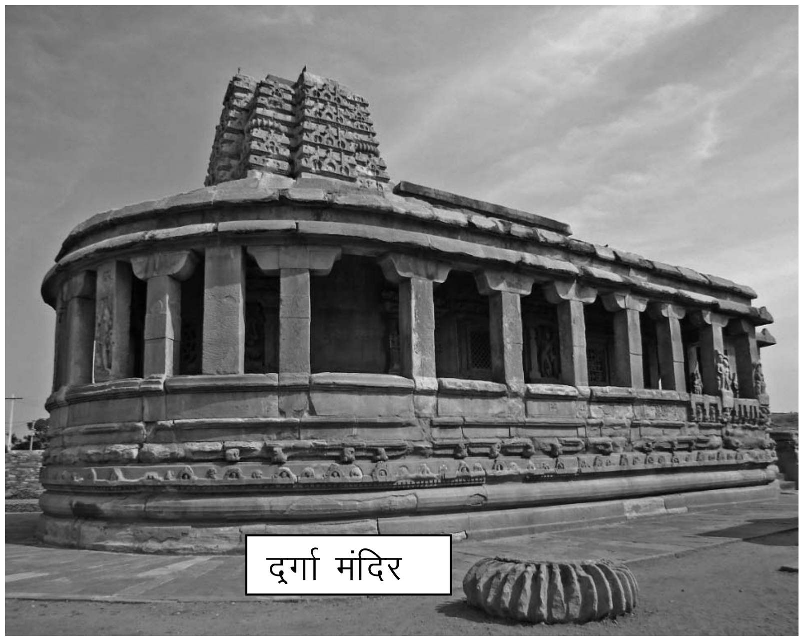
दुर्गा मंदिर

लगभग 450 ईस्वी, अर्ली चालुक्य शैली की उत्पत्ति एहोल में हुई थी और इसे बदामी और पट्टदकल में परिपूर्ण किया गया था। अज्ञात वास्तुकारों और कलाकारों ने विभिन्न शैलियों नागर और द्रविड़ शैलियों को मिश्रित रूप से प्रयोग किया। उनकी शैली में दो प्रकार के स्मारक शामिल हैः रॉक कट हॉल "गुफा मंदिर" (रॉक कट हॉल) और "संरचनात्मक" मंदिर, दोनों जमीन से ऊपर बनाए गए हैं।

10.5 बादामी गुफा मंदिर

बादामी गुफा मंदिरों (रॉक कट हॉल) में तीन मूलभूत विशेषताएं हैं –

- स्तंभो पर आधारित बरामदा,
- स्तंभो पर आधारित हॉल और
- एक अभयारण्य चट्टान को गहराई से काटता है।

एहोल में स्तंभो पर आधारित मण्डप में शुरुआती प्रयोगों का प्रयास किया गया, जहां उन्होंने तीन गुफा मंदिर बनाए, एक वैदिक, बौद्ध और जैन शैलियों में। बाद में उन्होंने अपनी शैली को परिष्कृत किया और बदामी में चार अद्भुत गुफा मंदिरों को काट दिया। गुफा मंदिरों के बाहरी बरामदे बल्कि सादे हैं, लेकिन आंतरिक हॉल में समृद्ध और शानदार मूर्तिकला की प्रतीकात्मकता है। कला आलोचक डॉ0 एम0 शशदरी ने चालुक्य कला के बारे में लिखा कि 'उन्होंने टाइटन्स की तरह चट्टान काट दिया लेकिन ज्वेलर्स की तरह समाप्त हो गया'। आलोचक जिमर ने लिखा था कि 'चालुक्य गुफा मंदिर बहुमुखी प्रतिभा और संयम का एक अच्छा संतुलन है'।

10.6 पट्टदकल

बेहतरीन संरचनात्मक मंदिर पट्टदकल में स्थित हैं। पट्टदकल में दस मंदिरों में से छह द्रविड़ शैली में हैं और चार नागर शैली में हैं। विरुपाक्ष मंदिर कई तरीकों से कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर के समान है ,जो कुछ साल पहले अस्तित्व में आया था। ऐहोल, मेगुति और बादामी के मंदिरों से दक्षिण के मंदिरों का इतिहास प्रारंभ होता है। पट्टदकल के मंदिरों में इनके विकास का दूसरा चरण परिलक्षित होता है। इन मंदिरों में मूर्तियों की संख्या में वृद्धि के साथ ही इनकी शैली में भी विकास मिलता है। ठोस चट्टानों को काटकर मंदिरों का निर्माण करने की कला में अद्भुत कुशलता दिखलाई पड़ती है। लोकेश्वर मंदिर के निर्माता श्रीगुंडन् अनिवारिताचारि ने अनेक नगरों की निर्माणयोजना की थी और अनेक वास्तु, यान, आसन, शयन, मणिमुकुट और रत्नचूड़ामणि आदि बनाए थे। वह त्रिभुवनाचारि और दक्षिण देश के सूत्रधार के रूप में प्रसिद्ध थे। विद्वान् अजंता के भित्तिचित्रों में से कुछ को इसी काल की कृति मानते हैं। पट्टदकल के अभिलेख में भी शिल्पकारों और मूर्तिकारों के एक वंश की तीन पीढ़ियों का उल्लेख

विरुपाक्ष मंदिर

है। एक अभिलेख में भरत की परंपरा पर आधारित नृत्य के एक नए ग्रंथ की लोकप्रियता का उल्लेख है जिसने अन्य विरोधी पद्धतियों पर विजय प्राप्त की थी।

पट्टदकल के विरूपाक्ष मंदिर का स्थापत्य अति विशिष्ट है। इस मंदिर का निर्माण लोकमहादेवी (विक्रमादित्य द्वितीय (733–45 ईस्वी) की एक रानी थी) के द्वारा पल्लवों पर विजय के उपलक्ष्य में करवाया गया। मंदिर के प्रमुख भागों में अधिष्ठान, गर्भगृह, अन्तराल, मण्डप, सान्धार प्रदक्षिणापथ, नन्दीमण्डप इत्यादि है। इसके अलावा यहाँ के मंदिरों में संगमेश्वर, पापनाथ आदि हैं। संगमेश्वर मंदिर का निर्माण विजयादित्य के द्वारा करवाया गया था। इस मंदिरमें भी अधिष्ठान, गर्भगृह, अन्तराल, मण्डप, प्रदक्षिणापथ इत्यादि है। पट्टदकल के मंदिरों में चालुक्य कालीन स्थापत्य पूरे निखार पर है इसलिये इन्हें यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में शामिल किया गया है। अभिलेखों में पाषाण के कुछ कुशल शिल्पियों के नाम मिलते हैं यथा शंकरार्य, नागोज और महाकाल। चालुक्य मंदिरों की बाहरी दीवारों और दरवाजों पर सूक्ष्म अलंकारिता मिलती है। मंदिरों के मुख्य प्रवेशद्वार पार्श्व में हैं। विमान और दूसरे विषयों में भी इन मंदिरों का विकसित रूप होयसल मंदिरों

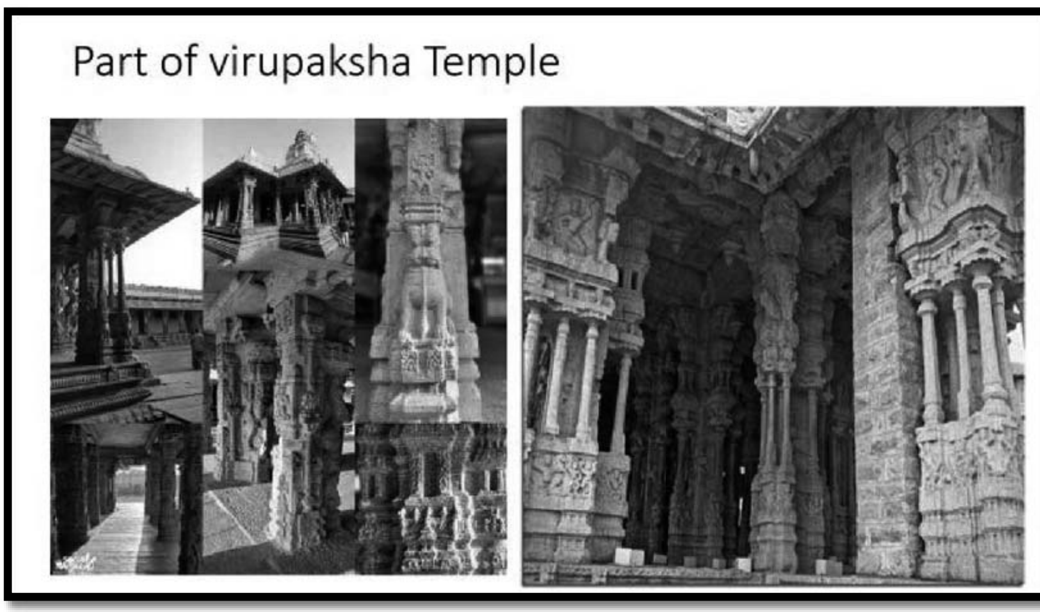

में दिखलाई पड़ता है। इन मंदिरों के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण हैं लक्कुंदि में काशीविश्वेश्वर, इत्तगि में महादेव और कुरुवत्ति में मल्लिकार्जुन का मंदिर।

यह एक पूरी तरह से समावेशी मंदिर है, इसकी एक केंद्रीय संरचना है, सामने नंदी मंडप है और इसमें एक दीवार के घेरे है। मुख्य घेरे में गर्भगृह प्रदक्षिणापथ और मण्डप है। मण्डप को खंभों पर स्थापित किया गया है और छिद्रित खिड़कियां हैं। बाहरी दीवार की सतह को स्थाप्त्यकारों द्वारा मूर्तियों या छिद्रित खिड़कियों

से अच्छी तरह से सजाया गया है। सजावट को अलग–अलग नमूनों में विभाजित किया गया है। कला आलोचक पर्सी ब्राउन ने मूर्तियों के बारे में कहा है कि वे एक सतत धारा में वास्तुकला में बहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि विरुपाक्ष का मंदिर उन स्मारकों में से एक है जहां इसे बनाने वाले पुरुषों की भावना अभी भी जीवित है।

10.7 चालुक्य मंदिर स्थापत्य केन्द्र और प्रमुख मंदिर

बादामी के गुफा और मंदिर	**ऐहोल के मंदिर**	**पट्टदकल के मंदिर**
गुफा 1 (शिव) गुफा 2 (विष्णु त्रिविक्रमा या वामन, वराह और कृष्ण के रूप में) गुफा 3(विष्णु नरसिम्ह, वराह, हरिहर और त्रिविक्रमा के रूप में।) गुफा 4 (जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ) भूतनाथ समूह मंदिर (बादामी और कल्याणी चालुक्य) वर्धमानस्वामी मंदिर पार्वती मंदिर आलमपुर, आंध्र प्रदेश	लाड खॉ मंदिर हुचप्पायगुड़ी मंदिर दुर्गा मंदिर मेगुति जैन मंदिर रावणफादी मंदिर सूर्यनारायण मंदिर	विरुपाक्ष मंदिर संगमेश्वर मंदिर काशीविश्वश्रेनाथ मंदिर (राष्ट्रकूट) मल्लिकार्जुन मंदिर कदसिद्देश्वर मंदिर जंबुलिंग मंदिर जैन नारायण मंदिर (राष्ट्रकूट) पापनाथ मंदिर नागनाथ मंदिर चंद्रशेखर महाकेश्वर मंदिर सूर्य मंदिर

कई शताब्दियों बाद, बदामी चालुक्य की शांत कला विजयनगर साम्राज्य के खंभे की वास्तुकला में फिर से दिखाई दी। उनकी गुफाओं में हरिहर, त्रिविक्रमा, महिषमर्दिनी, तांडवमुर्ती, नटराज, वराह, गोमेतेश्वर और अन्य की बारीक

नक्काशीदार मूर्तियां शामिल हैं। बहुत सारे पशु और पत्तेदार रूपों को भी शामिल किया गया है। उनके समय के कुछ महत्वपूर्ण मूर्तिकार गुंडन अनिवारीताचारी, रेवाड़ी ओवाजा और नरसोबा थे।

10.8 मूर्तिकला

चालुक्य शासन काल में मूर्तिकला की भी प्रगति हुई. बादामी में मिले तीन हिन्दू तथा एक जैन हॉलों में अनेक सुन्दर मूर्तियाँ मिलती हैं। हिन्दू हॉलों में एक गुफा में अनंत के वाहन पर बैठे हुए विष्णु की तथा नरसिंह की दो मूर्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। विरूपाक्ष मंदिर की दीवारों पर शिव, नागिनियों तथा रामायण के दृश्यों की मूर्तियाँ बनायी गई हैं। एलोरा की अनेक मूर्तियाँ चालुक्यों के शासनकाल में बनाई गयी थीं।

10.9 चित्रकला

अजंता और एलोरा की गुफाएँ अपनी सुन्दर चित्रकला के लिए विश्व–विख्यात हैं। ये दोनों राज्य चालुक्य राज्य में स्थित थे। विद्वानों का मत है कि इसमें से कई चित्र चालुक्य शासन काल में बनवाये गये। अजंता के एक चित्र में ईरानी दूत–मंडल को पुलकेसिन द्वितीय के समक्ष अभिवादन करते हुए दिखाया गया है। अनेक स्थानों पर गुफाओं की दीवारों को सजाने के लिए भी चित्र बनाए गए। इस चित्र में बहुत से लोगों को भगवान् विष्णु की उपासना करते हुए दिखाया गया है। यह इतना सुन्दर है कि दर्शकों का मन मोह लेता है और सभी आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

10.10 सारांश

उक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पल्लवकालीन कला की शुरुआत मंडप खुदवाने के साथ शुरू होती है और छोटे–छोटे रथ मंदिरों से होते हुए बड़े आकार की चिनाईकृत मंदिरों जिसमें शोर मंदिर, कैलाश नाथ मंदिर, बैकुंठ पेरुमाल मंदिर बनाए जाते हैं। मंदिर निर्माण की जिस शैली का विकास पल्लवों के द्वारा किया गया उसे द्रविड़ शैली के नाम से आगे प्रसिद्धि प्राप्त हुई और दक्षिण भारत के अन्य वंशों के द्वारा भी लगभग इसी तरह के मंदिर स्थापत्य का निर्माण आगे भी जारी रहा, जिसमें पल्लवकालीन मंदिरों की प्रत्येक अंग दिखाई पड़ते हैं अर्थात् हम कह सकते हैं की दक्षिण भारतीय कला के इतिहास में पल्लवकालीन कला के साथ–साथ चालुक्य कालीन कला का महत्वपूर्ण स्थान है।

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

10.12 बोधप्रश्न

प्रश्न :1– पल्लव कालीन मन्दिर वास्तुकला के अंतर्गत कैलाश नाथ मंदिरकी स्थाप्त्य विशिष्टताओं का वर्णन करें।

प्रश्न :2– पल्लव कालीन मन्दिर वास्तुकला के अंतर्गत बैकुंठ पेरुमाल मंदिरकी स्थाप्त्य विशिष्टताओं का वर्णन करें।

प्रश्न :3– चालुक्य कालीन मन्दिर वास्तुकला के अंतर्गत पट्टदकलकी स्थाप्त्य विशिष्टताओं का वर्णन करें।

प्रश्न :4– पल्लव कालीन महाबलीपुरम के रथ मन्दिरों की वास्तुकला का वर्णन करें।

इकाई—11 : चोल कालीन कला एवं स्थापत्य

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 चोल कालीन कला

11.4 प्रारंभिक मंदिर

11.5 मध्यकालीन चोल मंदिर

11.6 तंजोर का वृहदेश्वर मंदिर

10.7 गंगईकोंड चोलपुरम का वृहदेश्वर मंदिर

11.8 उत्तर कालीन मंदिर

11.9 सारांश

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.11 बोधप्रश्न

11.1 प्रस्तावना

तमिल क्षेत्र में चोल वंशी शासकों ने द्राविड़ मन्दिर वास्तु के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। चोलो ने 10वीं से 12वीं शती ई. तक दक्षिण भारत पर अपना वर्चस्व कायम रखा। चोल शक्ति उत्तर में गंगा, दक्षिण में सिंहल (श्रीलंका) तथा दक्षिण—पूर्व एशिया में श्रीविजय (सुमात्रा—इण्डोनेशिया) तक विस्तृत थी। राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के उपरान्त उन्होंने सांस्कृतिक उन्नयन की ओर ध्यान दिया। चोलों में महत्वपूर्ण सैन्य विजयों के उपरान्त मंदिरों के निर्माण की विशेष परम्परा प्रचलित थी। प्रारंभिक चोल मंदिर पल्लव मंदिरों के अनुकरण प्रतीत होते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे—

चोल कालीन वास्तुकला एवं मूर्तिकला को।

वृहदेश्वर मंदिर की स्थाप्त्य विशिष्टताओं के बारे में।

चोल कालीन मंदिर वास्तु को।

चोलों के मूर्तिशिल्प के बारे में।

11.3 चोल कालीन कला

दक्षिण भारत के इतिहास में चोल वंश सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इस वंश के द्वारा भारत के बाहर भी वैदेशिक सम्बन्ध स्थापित किए गए हैं और स्थापत्य के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण प्रगति में दिखाई पड़ती है।प्रारंभिक चोल शासक साम्राज्य विस्तार में जुटे रहे। फलतः उनको अपने कलात्मक अभिरुचि के प्रदर्शन का अवसर नहीं मिला, लेकिन जब उनकी राज्य सीमा लगभग सुरक्षित हो गयी तब उनके द्वारा अनेक वैभवपूर्ण मंदिरों का निर्माण करवाया गया। वास्तुगत विशेषताओं के आधार पर चोल मंदिरों को तीन कालों में बांटा जा सकता है

1. प्रारंभिक मंदिर
2. मध्यकाल के मंदिर
3. उत्तर कालीन मंदिर

11.4 प्रारंभिक मंदिर

प्रारम्भिक काल के सभी मंदिर सामान्य आकार–प्रकार के हैं और वे पल्लव मंदिरों से अनुप्राणित प्रतीत होते हैं। सामान्यतया उन में एक वर्गाकार विमान तथा मंडप होते हैं। उन्हें प्राकार के द्वारा घेरा गया है, जिसमें प्रवेश के लिए छोटा सा गोपुर द्वार भी बना है। उनके अधिष्ठान आमतौर पर सादे है। दीवार या भित्तिभाग में विभिन्न प्रकार के कुण्य स्तंभ लगे देव कोष्ठ बने हैं। इस काल के मंदिर एकतलीय, द्वितलीय या त्रि–तलीय प्रकार के हैं तथा इन तलों पर कुट एवं शाला शिखरों की सज्जा मिलती है। सबसे ऊपरी तल के चारों कोनों पर गर्भगृह में प्रतिष्ठित मूलनायक के बाह्य वृषभ का अंक मिलता है, क्योंकि प्रायः सभी शैव धर्म से ही संबंधित है। विमान का ग्रीवा भाग या ग्रीवा शिखर वृत्ताकार प्रकार का बना है। उस मंदिर का छाजन सपाट है और उसे चारों स्तंभों पर आश्रित बनाया गया है। गर्भगृह का प्रवेश द्वार एक साख प्रकार का है और शाखाओं पर अंगूर के बेल की सज्जा दिखती है। इस काल के मंदिर में बहुत कम मात्रा में अंकन मिलता है। प्रारंभिक मंदिरों में श्रीनिवासहल्लुर का कोरंगनाथ मंदिर सबसे उल्लेखनीय है। इसका निर्माण चोल शासक परान्तक प्रथम ने किया था। जिसका शासनकाल 907 ईस्वी से 950 इस्वीं तक माना जाता है। कोरंगनाथ मंदिर में एक त्रितलीय विमान तथा एक मंडप है, जिसे एक अंतराल के माध्यम से जोड़ा गया है। इस

दीवार पर चौकोर अष्टकोणीय गोलाकार प्रकार के कुण्य स्तंभ बने हैं। इस मंदिर के कोष्ठ में शिव तथा ब्रह्मा की मूर्ति या बहुत ही प्रभावशाली है। मंदिर का एक साख प्रकार का द्वार लता पत्र से अलंकृत है। मंडप में खड़े किए गए अष्टकोडिय प्रकार के चार स्तंभ हैं, यद्यपि यह मंदिर पल्लवकालीन जैसा है। लताओं की बनावट तथा मूर्तियों में विविधता दिखती है।

11.5 मध्यकालीन चोल मंदिर

मध्यकाल के चोल मंदिरों में अधिष्ठान के नीचे उपपीठ बनाया जाने लगा वैसे तो वास्तुगतदृष्टि से मध्यकालीन मंदिर पूर्ववर्ती मंदिरों से बहुत अलग नहीं थे लेकिन इस काल के मंदिरों में मंडपों की संख्या बढ़ गई। साथ ही साथ भित्ति भाग में मूर्तियों के प्रदर्शन में भी विविधता दिखती है। इस काल के बने सभी मंदिर बड़े ही भव्य तथा इसमें चोल स्थापत्य कला का पुर्ण विकास दिखाई देता है। इस काल के मंदिरों में तंजौर का वृहदेश्वर मंदिर सबसे उल्लेखनीय है।

11.6 तंजोर का वृहदेश्वर मंदिर

चोल शक्ति राजराज प्रथम के काल (985–1014 ई.) में चरर्मोत्कर्ष पर थी। मद्रास (चेन्नई) से लगभग 200 मील दक्षिण–पश्चिम में तजौर चोलों का प्रमुख राजनीतिक केन्द्र था, जहां राजराज प्रथम ने वृहदेश्वर मंदिर का निर्माण कराया था। इसका

तंजोर का वृहदेश्वर मंदिर

निर्माण 1003 ई. में प्रारंभ हुआ तथा 1010 ई. में यह पूर्ण हुआ। ग्रेनाइट पत्थर से

निर्मित यह मंदिर 500X250 फुट चौड़े आयताकार क्षेत्र में स्थित है, जिसके समक्ष 250 फुट का वर्गाकार क्षेत्र भी है। इस वर्गाकार क्षेत्र में अनेक लघु मन्दिर एवं पुरोहितों के आवास निर्मित है किन्तु इनका कोई विशिष्ट वास्तुगत महत्व नहीं है। दोनों ही प्रांगण में दो गोपुाम् है जो परवर्ती रचनाएं प्रतीत होती है।

वृहदेश्वर मंदिर के मुख्य अंग है – गर्भगृह, महामण्डप, अर्द्धमण्डप एवं नन्दीमण्डप। इन सभी अंगों की सम्मिलित लम्बाई 180 फुट है। वास्तुकला की दृष्टि से विमान की रचना सर्वाधिक प्रभावोंत्पादक है। 200 फुट ऊँचा यह विमान तीन उर्ध्वाकार भागों में विभाजित है –लम्बवत दीवार, ठोस पिरामिडाकार शिखर तथा स्तुपिका।

पिरामिडाकार शिखर में क्रमशः घटते हुए 13 खण्ड है, जिसमें सर्वोच्च खण्ड सबसे नीचले खण्ड का आधा है। प्रत्येक दो खण्डों के मध्य कुछ अंश अंदर

की ओर घुसा है। शिखर पांच उर्ध्वाकार गहरी रेखाओं से भी अलंकृत है। शिखर के क्षैतिज पीढ़े लम्बवत रेखाओं से विभाजित होकर मंदिर में प्राणारोपन कर रहे है। मंदिर की विशालता एवं शिखर की रेखाओं से हल्केपन एवं कोमलता का आभास होता है, जो द्राविड़ वास्तुकारों की अद्भूत कल्पनाशक्ति का परिचायक है। पर्सी ब्राउन ने अपनी पुस्तक ''इण्डियन आर्किटेक्चर'' में ठीक ही लिखा है –''तंजौर विमान को भारतीय वास्तुकला की कसौटी कहा जा सकता है''।

वृहदेश्वर मंदिर 6 फुट ऊँचें चबूतरे पर निर्मित है। गर्भगृह की ऊँचाई 100 फुट है, जिसके सिरे पर 200 फुट ऊँचा विमान दिखाई पड़ता है। मंदिर के विमान के निम्न तीन भाग हो सकते है :

1. गर्भगृह का घनाकार अंश जिसमें प्रदक्षिणा–पथ ढंका है,
2. विशाल पिरामिड के आकार का उपविभाग जिसके भीतर तेरह ह्रासमान (क्रमशः घटता हुआ) मंडल है। उसके शीर्ष भाग की चौड़ाई आधार की एक तिहाई है,
3. विमान के सिरे पर बनी गुंबादार स्तुपिका।

विमान के लम्बवत् भाग पर बने भारी कार्निस में मूर्तियां सुसज्जित है। मंदिर के आंगन में सुब्रह्ममण्यम देव का मंदिर अत्यंत कलात्मक ढ़ंग से बना है। प्रचूर अलंकरण दर्शकों को आकर्षित करने हेतु पर्याप्त है। मंदिर के आंगन में ऊँचे चबूतरे की दीवार पर दो पंक्तियों में एक ओर गणेश, विष्णु, श्रीदेवी, भू–देवी तथा लक्ष्मी की तथा दूसरी ओर वीरभद्र, दक्षिणामूर्ति, कालांतक, नटेश, हरिहर, अर्द्धनारीश्वर, चंद्रेशेखर, गंगाधर तथा आलिंगन चन्द्रशेखर की प्रतिमाएं बनी है। इनके अतिरिक्त सरस्वती, महिषमर्दिनी आदि देवियों की प्रतिमाएं भी निर्मित है। शासक ने मंदिर के गुम्बज को स्वर्ण पत्तरों से ढंक दिया था। बृहदेश्वर मंदिर कठोर प्रस्तर चट्टानों से निर्मित है जो समीप के स्थानों में अप्राप्त हैं। द्राविड़ स्थापत्य के इतिहास में वृहदेश्वर मंदिर का गौरवपूर्ण स्थान है तथा इसका निर्माण एक युगांतकारी घटना है।

11.7 गंगईकोंड चोलपुरम का वृहदेश्वर मंदिर

इसका निर्माण महान चोल सम्राट राजेंद्र प्रथम ने करवाया था, जिसका शासनकाल 1014 ईस्वी से 1044 ईस्वी तक था। गंगा द्वारा सिंचित प्रदेश के विजय के उपलक्ष्य में उसने नवनिर्मित राजधानी में गंगईकोण्ड चोलपुरम (कुंभकोणम से 14 मील दूरी पर स्थित) में इस मंदिर का निर्माण करवाया। यह मंदिर पूर्णरूपेण तैयार नहीं हो पाया। यद्यपि यह मंदिर तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर

की लगभग अनुकृति है, परंतु इसकी कुछ अपनी विशेषताएं है। यह मंदिर एक विशाल प्राकार के अंदर बना है। इसके पूर्व में गोपुर द्वार के अलावा उत्तर में एक तोरण द्वार है, जो प्रकार से ऊंचा है। इससे एक नौ तलीय विमान, अंतराल, मंडप तथा महामंडप की योजना की गई है। यह मंदिर समूह 340 फीट लंबा, 110 फिट चौड़ा तथा 150 फिट ऊंचा है। उसे 600 लंबे एवं 350 फीट चौड़े प्राकार के अंदर बनाया गया है। इस प्रकार मुल मंदिर तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर से बडा है, लेकिन ऊँचाई में सबसे कम है। उप पीठ अलंकृत तथा अधिष्ठान भाग सादा है। मंदिर के भीतरी भागों में बने देव कोष्ठों में विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियां बहुत ही सुन्दर है तथा भावपूर्ण ढंग से प्रदर्शित की गई। तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर के विपरीत मुख्य मंदिर के भद्र प्रदेश में देव कोस्ठबनाया गया, द्वार नहीं। द्वितीय तल के ऊपरी सिरे पर कूट, शाला तथा पंजर के सुंदर रूप प्रदर्शित है, इसी तरह के हार अन्य तलों पर बने थे, परंतु नवें तल पर हार ना बनाकर एकल वृषभ की मूर्तियां बैठायी गयी है। तृतीय तल से लेकर ऊपरी तल तक की योजना इस प्रकार की गई है कि उसके कर्ण रेखाओं में अंदर की गोलाइ आ जाए। इस तरह का रूप नेत्रों को सुन्दर लगते हैं। इस विमान की ग्रीवा शिखर वृत्ताकार है और स्तूपि धातु से निर्मित है। विमान की आंतरिक भित्ति शादी है अर्थात न तो वहा मूर्तियां है और ना ही चित्र बने हैं, जबकि तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर में मूर्ति तथा चित्र दोनों मिलता है। इस मंदिर की गर्भ शाला में शिवलिंग स्थापित है तथा द्वार पर द्वारपालों की विशाल मूर्तियां बनी हैं। गर्भगृह के सामने भीतर ही अंतराल है। इस मंदिर की छत आठ स्तंभों पर आश्रित हैं। इसमें प्रवेश के लिए तीन द्वार बने हैं। दो पार्श्व में एक सम्मुख भाग में एवं द्वारों के अलग–बगल भी द्वारपालों की मूर्तियां बनी हैं। महामंडप की छत 150 स्तंभों पर आश्रित हैं।दक्षिण भारत के मंदिरों में 1000 स्तंभों पर आश्रित मंडप बनाएं जाने का यह प्रारंभिक प्रयास था। महामंडप के सामने चबूतरे पर विशाल नंदी की प्रतिमा रखी है। मल्लिका युक्त प्राकार तथा गोपुर द्वार खंडित हो चुका है और उसके खंडों का प्रयोग निकट बने बाध के कार्यों में हुआ है

11.8 उत्तर कालीन मंदिर

उत्तरकालीन चोल मंदिरों में विकास दिखाई देता है लेकिन यह विकास मुख्यतः मंदिरों के अलंकरण में दिखता है। उत्तरकालीन चोल मंदिर अधिक वैभवयुक्त बने हैं। इस काल में कई प्रकार के मंडप बनाए जाने लगे, हजारों स्तंभों वाले मण्डपों का प्रारंभ भी इन्हीं समय हुआ तथा गोपुर द्वार भी परिवर्तित हो चुका था। इस काल में छोटे–बड़े अनेक मंदिर बने, इसमें दारा सुरंग का एराग्तेश्वर मंदिर तथा त्रिभुवन का कम्पहरेश्वर मंदिर प्रमुख है। इस मंदिर में उपर्युक्त विशेषताएं देखने को मिलती है। इसका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी या बारहवीं शताब्दी में हुआ जान पड़ता है।

11.9 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है कि चोल शासकों ने प्रारंभ में अपने साम्राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया और साम्राज्य विस्तार के बाद उनका ध्यान स्थापत्य की ओर आकर्षित हुआ। फिर उन्होंने मंदिरों के निर्माण करने की प्रक्रिया को प्रारंभ किया, जिसमे तंजौर का वृहदेश्वर मंदिर और गंगाईकोण्ड चोलपुरम का वृहदेश्वर मंदिर चोल मंदिरों का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इसके बाद और भी मंदिर बनाए गए, जिसमें अलंकरण एवं भव्यता की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया, जिसमें दारा सुरंग का एराग्तेश्वर मंदिर तथा त्रिभुवन का कम्पहरेश्वर मंदिर महत्वपूर्ण है। इन मंदिरों की भव्यता एवं स्तंभों की अत्यधिक संख्या ने चोलकालीन स्थापत्य कला को दीर्घायु बना दिया।

11.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।

- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।

11.11 बोधप्रश्न

प्रश्न :1– चोल मन्दिर वास्तुकला के अंतर्गत तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर की स्थाप्त्य विशिष्टताओं का वर्णन करें।

प्रश्न :2– चोल मन्दिर वास्तुकला के अंतर्गत गंगईकोण्ड चोलपुरम् के वृहदेश्वर मंदिर की स्थाप्त्य विशिष्टताओं का वर्णन करें।

इकाई—12 : राष्ट्रकूट कालीन कला एवं स्थापत्य—एलोरा

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 राष्ट्रकूट कालीन कला एवं स्थापत्य

12.4 एलोरा

12.5 एलोरा का कैलाश नाथ मंदिर

12.6 एलीफैण्टा का कला एवं स्थापत्य

12.7 तक्षण कला शैली

12.8 ऐलोरा की चित्रकला

12.9 सारांश

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.11 बोधप्रश्न

12.1 प्रस्तावना

राष्ट्रकूट काल दक्षिणापथ के इतिहास में सर्वाधिक गौरवशाली युग का प्रतिनिधित्व करता है। इस वंश के कई प्रतापी राजाओं ने समूचे भारतवर्ष में अपना राज्य स्थापित किया था। ध्रुव, गोविन्द तृतीय तथा इन्द्र तृतीय अपने काल में महानतम विजेता थे। उन्होंने अपने समकालीन उत्तरापथ की दो प्रबल शक्तियों—गुर्जर—प्रतिहार तथा पाल—को नतमस्तक किया। इस वंश के कृष्ण तृतीय ने सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् तक अपनी विजय वैजयन्ती फहरा दिया। दक्षिण के चोलों ने भी राष्ट्रकूट राजाओं की अधीनता स्वीकार की। वस्तुतः

अठारहवीं शती में मराठों के उदय के पूर्व दक्षिणापथ के किसी भी अन्य राजवंश ने राष्ट्रकूटों के समान भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं अदा की है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेंगे–

राष्ट्रकूट कालीन वास्तुकला एवं मूर्तिकला को।

एलोरा के महत्व के बारे में।

एलीफेन्टा की तक्षण कला को।

राष्ट्रकूट कालीन चित्रकला के बारे में।

12.3 राश्ट्रकूट कालीन कला एवं स्थापत्य

राष्ट्रकूटवंशी शासक साम्राज्य विजेता के साथ – साथ उत्साही निर्माता थे। इस वंश के अधिकाश शासक शैवमतानुयायी थे, अतः उनके काल में शैव मन्दिर एवं मूर्तियों का ही निर्माण प्रधान रूप से हुआ। ऐलोरा, एलिफैण्टा, जागेश्वरी, मण्डपेश्वर जैसे स्थान कलाकृतियों के निर्माण के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये। ऐलोरा तथा एलिफैण्टा तो अपने वास्तु एवं तक्षण के लिये जगत् प्रसिद्ध हो गये है। राष्ट्रकूट कालीन कला का प्रमुख केंद्र महाराष्ट्र के एलोरा में था, जहाँ 34 गुफाएं प्राप्त हुई है, जिनमें अलग–अलग तरह का निर्माण प्राप्त होता है। एक से 12 तक की गुफाओं का संबंध बौद्ध धर्म से तथा 13 से लेकर 29 तक की गुफाएं ब्राह्मण धर्म की स्थापत्य से संबंधित तथा पांच गुफाओं का संबंध जैन धर्म से है।

12.4 एलोरा

एलोरा प्राचीन भारतीय इतिहास में धार्मिक सहिष्णुता का महत्वपूर्ण केंद्र था, जो यहाँ की कलात्मक गतिविधियों में परिलक्षित होता है यहाँ से बौद्ध,

जैन और ब्राह्मण धर्म से संबंधित कला और स्थापत्य के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। महाराष्ट्र प्रान्त के औरगाबाद में स्थित एलोरा नामक पहाड़ी पर बारह बौद्ध

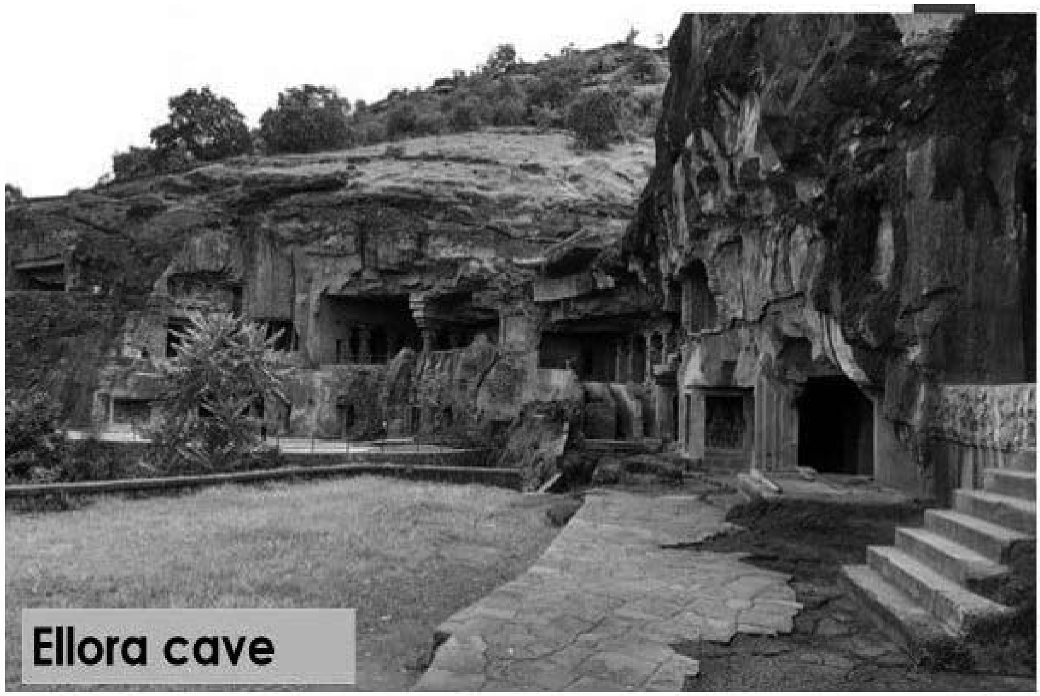

स्थापत्य, सतरह ब्राह्मण (शैव) मन्दिर एवं पांच जैन गुहा मन्दिरों का निर्माण करवाया गया । राष्ट्रकूट कला पर चालुक्य एवं पल्लव कला शैलियों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता हैं।

एलोरा के मन्दिरों में **'कैलाश मन्दिर'** अपनी आश्चर्यजनक शैली के लिये विश्व–प्रसिद्ध है। इसका निर्माण कृष्ण प्रथम ने अत्यधिक धन व्यय करके करवाया था। यह प्राचीन भारतीय वास्तु एवं तक्षण कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह सम्पूर्ण मन्दिर एक ही पाषाण को काटकर बनाया गया है।

सर्वप्रथम एक विशाल शिलाक्षेत्र को कठोर श्रम द्वारा उत्कीर्ण कर उसके चारों ओर का फालतू हिस्सा निकाल दिया गया तथा बीच का भाग जहाँ मन्दिर बनना था, छोड़ दिया गया। इस मध्यवर्ती भाग में ही मन्दिर बनाया गया। निर्माण कार्य ऊपर से नीचे की ओर किया गया तथा स्थापत्य कार्य के साथ–साथ मूर्तिकारी एवं अलकग्ण भी किया जाता रहा। इस प्रकार खुपी से

जगती आधार तक के निर्माण की सम्पूर्ण योजना बनाकर उसे क्रियान्वित किया गया ।

12.5 एलोरा का कैलाश नाथ मंदिर

एलोरा का कैलाश नाथ मंदिर पश्चिमी तरह का अद्‌भुत वास्तु संरचना है, इसे चट्टानों में ही समसमायिक चिनाईकृत मंदिरों की शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह एकाश्मक मंदिर है और एकाश्मक शैली में बने मंदिरों में

संपूर्ण मंदिर की एक झलक

सबसे बड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई मंदिर न हो करके एक विशाल मूर्ति है, जिसे चारों ओर से काटकर बनाया गया है, जिसको बनवाने में बहुत अधिक खर्च लगा, जो एक राजा के सहयोग के बिना संभव नहीं था। इसे बनवाने का श्रेय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम को जाता है। इसका शासनकाल 756 से 773 ईस्वी तक माना जाता है। इस समय राष्ट्रकूट शक्ति दक्कन तथा दक्षिण भारत की प्रमुख शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। कैलाशनाथ मंदिर राष्ट्रकूटों के इन्हीं शौर्य का जीवंत उदाहरण है। परंपरागत पद्धति के अनुसार शैल स्थापत्य का निर्माण पर्वत के निचले भाग से प्रारंभ होता था, उसके विपरीत यहॉ के एकाश्मक मंदिरों में निर्माण कार्य ऊपरी भाग से प्रारंभ हुआ था। योजना की दृष्टि से कैलाशनाथ मंदिर की तुलना पट्‌टदकल के विरुपाक्ष मंदिर से किया जाता है। ऐसा लगता है कि जिस तरह राष्ट्रकूटों ने बादामी के चालुक्यों को अधिकृत किया, उसी तरह उनकी शैली को भी अपना लिया। इस मंदिर का निर्माण कई चरणों में संपन्न हुआ। यह मंदिर 300 फिट लंबा तथा 200 फिट चौड़ा आयताकार प्रांगण का निर्माण करता है। इसके गोपुर द्वार, नंदी मंडप विमान से संबद्ध अंतराल, महामंण्डप तथा प्रांगण के तीनों तरफ बनी भ्रमंतिकाएं निर्मित है।

साधारणतया मंदिरों का प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुख होता है लेकिन यहाँ पहाड़ की ढलान पश्चिम की ओर होने से यह मंदिर पश्चिमाभिमुख है। सामने की ओर गोपुर द्वार की रचना की गई है। इसकी फर्श मध्य में कुछ ऊँचा और पार्श्व में कुछ नीचा है। ऐसे मध्य भाग से पार्श्व भाग में दो पद के सोपान द्वारा जाया जा सकता है। प्रांगण के दोनों तरफ एक–एक विशालकाय गज मूर्ति बनी है। इन्हें गढ़कर बनाया गया है। इस मंदिर का गोपुरम द्वार दो मंजिला है, निचले मंजिल की छत चार स्तंभों पर तथा चार भित्ति स्तंभों पर आश्रित हैं जबकि ऊपरी मंजिल स्तंभ विहीन है, पर उसे आला प्रकार के शिखरों से ढका हुआ बनाया गया है। संभवतः ऊपरी मंदिर का प्रयोग संगीत कला के लिये किया जाता था।

कैलाश मंदिर

गोपुर मंदिर के ऊपरी तल तक जाने के लिए सीढ़ियां नहीं बनी थी बल्कि नंदी मंडप से एक सेतु द्वारा जाया जा सकता था। गोपुर द्वार की तरह नंदी मंडप भी दु–मंजिला बना है। निचली मंजिल बिल्कुल ठोस है, उसका कोई उपयोग नहीं है। यह एक चबूतरे जैसा है, इसका उद्देश्य नंदी मंडप को ऊँचाई प्रदान करना है। शिव के दाहिने नंदी की प्रतिमा बनायी गयी है। नंदी मंडप वर्गाकार है, इसकी प्रत्येक पूजा लगभग 20 फीट तथा ऊँचाई 50 फीट की है। मूल मंदिर तथा नंदी मंडप को एक सेतु द्वारा जोड़ा गया है। इस मंडप के दोनों तरफ लगभग 45 फीट ऊंचे दो कीर्ति स्तम्भ है, जो बहुत अलंकृत है, जिसपर त्रिशूल बना है। मूल मंदिर या विमान द्रविड़ शैली का है, जो 164 फिट लंबा, 109 फीट चौड़ा और 96 फीट ऊँचा है। इसमें अंतराल सहित एक गर्भगृह और महामंडप है। इसे एक उपपीठ पर बनाया गया है। उपपीठ के नीचे निचले भाग पर चार

शादी पट्टिका है जबकि ऊपरी भाग पर गज मुंडो, सिहों तथा अन्य काल्पनिक जानवरों का उत्कीर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि पशु समूचे मंदिर को अपने सिर पर उठाए हुए हैं। उपपीठ के ऊपर स्थान है, जो पांच थरो वाला है। महामंडप लगभग वर्गाकार है और इसकी छत सपाट है। यह 16 स्तंभों तथा 16 भित्ती स्तंभों पर आश्रित हैं। महामंडप के दोनों किनारों पर कुटाकार द्वितलीय विमान है। महामंडप के छत के मध्य में खिले हुए पद्म पुष्प के मध्य एक स्तुपि बिठाई गई है। इस विमान को अधिष्ठान भाग के थोड़ा अंदर की ओर ऐसे बना है कि इसके किनारे कुछ रिक्त स्थान बच गया है। इस रिक्त स्थान पर पांच लघु–देवालय बनाए गए हैं। इन देवालयों में मुख्य दिशा में बने देवालय शाखा प्रकार के द्वितलीय विमान, जबकि किनारे बने मंदिर कूट प्रकार के तृतलीय विमान है।

मुख्य विमान चतुष्फलक प्रकार का है। प्रथम तल को कूट एवं शाला शिखरों से सजाया गया है। द्वितीय एवं तृतीय तल ऐसा ही हार विहीन है। चारों कोनों पर बृषभ की आकृति बनी है। विमान का शिखर अष्टपहल है। इसकी स्तुपि इस समय गायब है। यह अलग प्रस्तर पर काटकर बैठाई गई थी, इसकी पुष्टि शिखर के ऊपरी भाग में बनाए गए खांचे से होती है। गर्भगृह का द्वार काफी अलंकृत है। इसमें दोनों तरफ गंगा–यमुना की मूर्ति है। गर्भगृह में संभवतया शिवलिंग स्थापित था। मंदिर जिस प्रांगण में बना है, उसके तीनों तरफ स्तंभ पंक्तियों से युक्त भ्रमन्तिका में शिव तथा वैष्णव मूर्तियां निर्मित है। मूर्तियों में रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाए जाने का दृश्य है तथा शिव के विभिन्न संग्राहक, अनुग्रह एवं कृष्ण के विभिन्न जीवन दृश्य है।

चौकी हाथी तथा सिंह पंक्तियों से इस प्रकार बनायी गयी है कि ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं के ऊपर देव विमान और मण्डप टिके हुए है। मण्डप की सपाट छत सोलह स्तम्भों पर आधारित है जो चार–चार के समूह में बनाये गये है। विमान दुतल्ला है। मण्डप तथा विमान को जोड़ते हुए अर्धमण्डप अथवा अन्तराल बनाया गया है। विमान का चारतल्ला शिखर 95

शिव के विविध रूपों, महिषासुर का वध करती हुई दुर्गा, कैलाश पर्वत उठाये हुए रावण, रावण द्वारा सीता हरण तथा जटायु के साथ युद्ध आदि दृश्यों का अंकन अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया है।समग्र रूप से यह एक अत्युत्कृष्ट

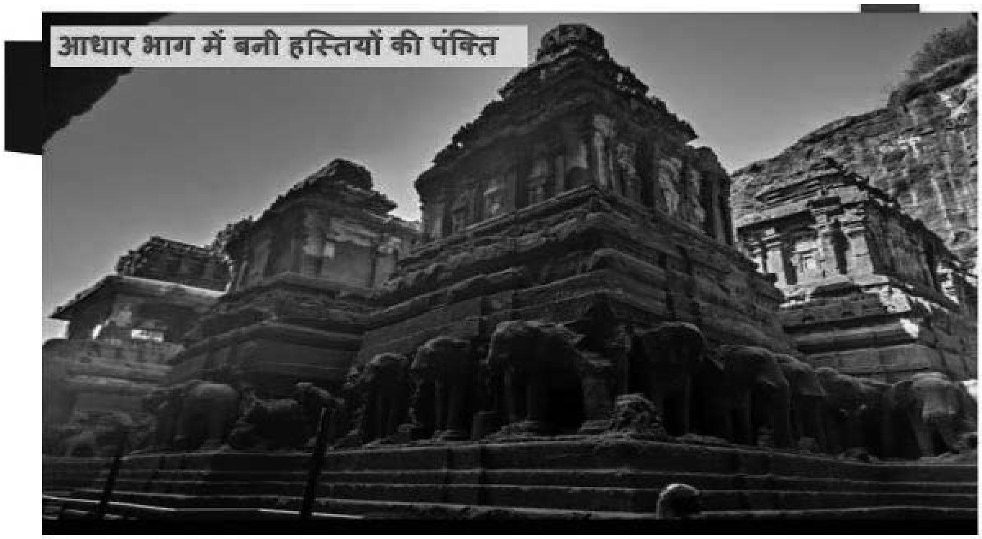

रचना है। पाषाण काटकर बनाये गये मन्दिरों में इस मन्दिर का स्थान अद्वितीय है। कर्कराज के बड़ौदा लेख में इसे 'अद्भुत सन्निवेश' कहा गया है। बताया गया है कि इसे देखकर देवलोक के देवतागण अचम्भित हो गये तथा इसकी शोभा को मानव निर्माण से परे बताया। कलाविद् पर्सी ब्राउन इसकी तुलना मिश्री वास्तु तथा यूनानी पोसीडान मन्दिर से करते हुए इसे प्रकृत शैलवास्तु का विश्व में सबसे विलक्षण नमूना मानते है।इस प्रकार प्रतिमा शास्त्र के अध्ययन का प्रमुख केंद्र एलोरा का कैलाशनाथ मंदिर प्रतीत होता है।

एलोरा के मध्य मन्दिरों में रावण की खाई, देववाड़ा, दशावतार, लखेश्वर, रामेश्वर, नीलकण्ठ आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रावण की खाई का बाहरी बरामदा चार स्तम्भों पर आधारित है। इसके पीछे बारह स्तम्भों पर टिका हुआ मण्डप है। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ है जिसकी उत्तरी तथा दक्षिणी दीवारों पर अनेक पौराणिक आख्यानों एवं देवी–देवताओं की मूर्तियों का चित्रण है।नृत्य करते हुए शिव तथा कैलाश पर्वत उठाते हुए रावण के दृ श्य सुन्दर है। दशावतार मन्दिर का निर्माण आठवीं शती में दन्तिदुर्ग के काल में हुआ। यह दुतल्ला है तथा इसके द्वार पर नन्दिमण्डप बना है। अधिष्ठान में चौदह स्तम्भ लगे है इसकी मूर्ति सम्पदा विपुल हैं।इसमें भगवान विष्णु के दस अवतारों की कथा मूर्तियों में अंकित हैं। तक्षण एवम् स्थापत्य दोनों ही दृष्टि से यह मन्दिर भी अत्युत्कृष्ट है। कुछ रचनायें अत्युत्कृष्ट है। उत्तरी दीवार पर शिवलीला तथा दक्षिणी दीवार पर विष्णु का विविध रूपों में अकन है। द्वार पर

दो द्वारपालों की मूर्तियाँ है। विष्णु द्वारा नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप का वध किये जाने का दृश्यांकन अत्यन्त सुन्दर है।

रामेश्वरम् गुहामन्दिर गुहाशैली के मन्दिर निर्माण के प्रारम्भ का द्योतक है। गुफा के सम्मुख प्रांगण में एक ऊंचे चबूतरे पर नंदीपीठ बना है। मण्डप के पीछे प्रदक्षिणापथ सहित गर्भगृह है तथा द्वार पर द्वारपालों की मूर्तियाँ है। स्तम्भ भव्य एवं सुन्दर है । इन पर गणों की मूर्तियाँ बनाई गयी है। आठवीं शती के अन्त में सीता की नहानी गुफा की रचना की गयी। इसमें तीन ओर प्रांगण है। मुख्य प्रांगण में दोनों ओर दो देव प्रकोष्ठ बनाये गये हैं। इसमें सात स्तम्भों की पंक्तिया है। स्तम्भ गोलाकार है तथा इनके सिरे गुम्बदाकार बनाये गये है। गुफा द्वार पर दो विशाल सिंह बने हैं। प्रदक्षिणापथ में बनी मूर्तियाँ काफी मनोहर हैं।

Ellora piller and Natraja sculpture

शिव ताण्डव का दृश्यांकन सर्वोत्तम है। ऐलोरा की कुछ गुफायें जैन मत से भी संबंधित हैं। इनमें इन्द्रसभा तथा जगप्राथ सभा उल्लेखनीय हैं। पहली दुतल्ला है, जो एक विशाल प्रांगण में बनी है। इसमें एकाश्मक हाथी, ध्वजस्तम्भ तथा लघु स्तम्भ हैं। इन्द्र–इन्द्राणी की सुन्दर प्रतिमाओं के साथ–साथ इस गुहा मन्दिर में जैन तीर्थद्ररी–शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ आदि की प्रतिमायें बनाई गयी हैं । गुफाओं के स्तम्भ आधार, मध्य तथा ऊपरी भाग क्रमशः, चतुष्कोण, अष्टकोण तथा गोल बनाये गये है । सबसे ऊपर आमलक बना है । जगप्राथसभा का वास्तु विन्यास भी इन्द्रसभा से मिलता–जुलता है।

12.6 एलीफैण्टा का कला एवं स्थापत्य

चालुक्य स्थापत्य के नमूने एलीफैण्टा तथा जागेश्वरी से भी मिलते है। एलीफैण्टा में चालुक्यों के सामन्त शिलाहार शासन करते थे। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ सुन्दर गुहायें उत्कीर्ण की गयीं। मुख्य गुफा में एक विशाल मण्डप है, जिसके चतुर्दिक प्रदक्षिणापथ है। वर्गाकार गर्भगृह में विशाल शिवलिंग स्थापित है। चबूतरे से गर्भगृह में जाने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गयी हैं। गर्भगृह के चारों ओर निर्मित देव प्रकोष्ठों में शिव के विविध रूपों की मूतियॉ बनी हैं। इनमें सर्वाधिक सुन्दर महेश मूर्ति भारतीय कला की मूल्य थाती है।

12.7 तक्षण कला शैली

राष्ट्रकूट काल में वास्तु के साथ–साथ मूर्ति अथवा तक्षण कला की भी उन्नति हुई। गुप्त तथा चालुक्य शैली से प्रेरणा लेकर कलाकारों ने सुन्दर–सुन्दर मूर्तियाँ बनाई। ऐलोरा तथा एलिफैण्टा अपनी मूर्तिकारी के लिये सुप्रसिद्ध है। इस काल की शिव तथा विष्णु की मूर्तियां सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। ऐलोरा से शिव की तीनों शक्तियों–उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश से संबंधित मूर्तियाँ मिलती है। इनका सौन्दर्य एवं गढ़न उच्चकोटि का है।पार्वती की मूर्तियॉ भी काफी कलात्मक है। कैलाश मन्दिर में रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाने तथा शिव का अनुग्रह करके उसे मुक्त करने संबंधी मूर्ति काफी मनोहर है। रामेश्वर, दशावतार तथा कैलाश मन्दिरों में नटराज शिव की मूर्तियाँ मिलती है। वाराह तथा नरसिंह रूपी मूर्तियाँ काफी सुन्दर एवं कलात्मक हैं। इसके अतिरिक्त कमलासना लक्ष्मी, महिषमर्दिनी, दुर्गा, सप्तमातृकाओं आदि की मूर्तियाँ भी भव्य एवं सुन्दर है। दशावतार गुफा में बनी मकरारूढ गंगा की मूर्ति उत्कृष्ट है।

एलिफैण्टा की मूर्तियाँ मूर्तिशिल्प के चरमोत्कर्ष को सूचित करती है। यहाँ की गुफा में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, यम, गणेश, स्कन्द आदि की मूर्तियाँ बनाई गयी है। शिव के विविध रूपों एवं लीलाओं से संबंधित मूर्तियाँ काफी अच्छी है। उत्तरी द्वार के सामने विश्वप्रसिद्ध त्रिमूर्ति है, जो समस्त राष्ट्रकूट कला की सर्वोत्तम रचना है। पहले ऐसा समझा गया था कि यह

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की संयुक्त प्रतिमा है, जिनकी गणना त्रिदेव में की जाती है। किन्तु जे० एन० बनर्जी ने इस अवधारणा का खण्डन करते हुए मूर्ति का तादात्म्य शिव के तीन रूपों शान्त, उग्र तथा शक्ति से करते हुए इसे '**महेश मूर्ति**' की संज्ञा दी है।यह 17 फीट 10 इंच ऊंची है। इसका केवल आवक्ष तक का भाग दिखाया गया है। बीच का मुख शिव के शान्त, दायीं ओर का मुख रौद्र तथा बायीं ओर का मुख (जो नारी मुख है) शक्ति रूप का प्रतीक है। कलाकार को विविध विरोधी शक्तियों को कला में मूर्तरूप देने में आशातीत सफलता मिली है। एस० के० सरस्वती इसे सबसे विशिष्ट और सुन्दर मूर्ति माना है।

12.8 ऐलोरा की चित्रकला

वास्तु तथा तक्षण के साथ–साथ ऐलोरा चित्रकला का भी महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहॉ की अपनी चित्रकारी के कारण कैलाश मन्दिर को 'रंगमहल' भी कहा जाता है।ऐलोरा के चित्र जैन तथा ब्राह्मण धर्मों से संबंधित है, जिन्हें सातवीं से ग्यारहवीं शती के बीच तैयार किया गया था। कैलाश मन्दिर में की गयी चित्रकारियाँ उत्तम कोटि की है। मण्डप की छत पर नटराज शिव का चित्र है, जिसमें उनकी दस भुजायें दिखाई गयी हैं। देवमण्डल में देवियों के साथ शिव को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इन्द्र सभा में पार्श्वनाथ तथा अन्य तीर्थंकरों के चित्र बनाये गये है। इनके मुखमण्डल की शान्त भावना दर्शनीय है।

गरुड़ पर आसीन विष्णु के दोनों ओर लक्ष्मी तथा भूदेवी का अंकन है। चित्रों के माध्यम से शिव की विविध लीलाओं को दिखाया गया है। चित्रों में चटक रंगों की प्रमुखता है तथा रेखाओं का उभार प्रभावपूर्ण है। स्तम्भों पर बने वृक्षों एवं लताओं के चित्र अनुपम है। विद्याधरों की उड़ती पंक्ति तथा विद्याधर दम्पति के चित्र मनोहर है। ऐलोरा मन्दिरों की दीवारों पर जो चित्र मिलते हैं, उनसे सूचित होता है कि मन्दिरों के निर्माण के बाद उन्हें सुन्दर चित्रों से अलंकृत

किया जाता था। चित्रकला पर अजन्ता का प्रभाव है किन्तु शैली भिन्न प्रकार की है।

12.9 सारांश

राष्ट्रकूट चित्रकला में अजन्ता चित्रकला जैसे भाव तथा सौन्दर्य नहीं मिलते। चित्रों के नष्ट हो जाने तथा धूमिल पड़ जाने के कारण ऐलोरा चित्रकला का सही मूल्यांकन संभव नहीं है। इस प्रकार राष्ट्रकूट राजाओं के सरक्षण में कला एवं स्थापत्य के विविध अंगों का पूर्ण एवं सम्यक् विकास हुआ। राष्ट्रकूट स्थापितों एवं शिल्पियों ने अपनी पूर्वकालीन एवं समकालीन अनेक कला शैलियों को ग्रहण कर अपनी अनुभूति तथा कौशल को उसमें सम्मिलित करके वास्तु एवं तक्षण को नया आयाम दिया । उनकी कृतियों में गुप्त युग की अपेक्षा अधिक विशालता, अलंकरण एवं चमत्कार दृष्टिगोचर होता है । अनेक कला विद्वान तो राष्ट्रकूट वास्तु एवं स्थापत्य को ही भारतीय कला का स्वर्णिम अध्याय मानते है ।

12.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अग्रवाल,वासुदेव शरण . 1966. *भारतीय कला* .वाराणसी : पृथिवी प्रकाशन।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।

- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

12.11 बोधप्रश्न

प्रश्न : राष्ट्रकुट मन्दिर वास्तुकला के अंतर्गत एलोरा के कैलाशनाथ मंदिर की स्थाप्त्य विशिष्टताओं का वर्णन करें।

प्रश्न : राष्ट्रकुट कालीन तक्षण एवं चित्रकला की विशिष्टताओं का वर्णन करें।

इकाई–13 : प्राचीन भारत में प्रतिमा की उत्पत्ति, प्राचीनता और प्रतिमा की विभिन्न परंपराएँ

इकाई की रुपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 प्रतिमा की उत्पत्ति एवं प्राचीनता

13.4 प्रतिमा की विभिन्न परंपराएँ

13.4.अ–राजकीय कला

13.4.ब–लोककला

13.5 सारांश

15.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.7 बोधप्रश्न

13.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारत में प्रतिमा की उत्पत्ति के साथ–साथ उसके प्राचीनता का उल्लेख किया गया है, साथ ही प्रतिमा के विभिन्न परंपराए जैसे–राजकीय कला तथा लोककला का विस्तार से वर्णन किया गया है।

13.2 उद्देश्य

प्राचीन भारत में प्रतिमा की उत्पत्ति एवं प्राचीनता जान सकेगें।

प्रतिमा की विभिन्न परंपराओं को जान पायेगें।

13.3 प्रतिमा की उत्पत्ति एवं प्राचीनता

प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ प्रतिरूप होता है। प्रतिरूप से तात्पर्य समान आकृति से है। प्रतिमा का प्रयोग वस्तुतः उन्हीं मूर्तियों के लिए किया जाता है, जो किसी न किसी धर्म अथवा दर्शन से संबंधित होती हैं। मूर्ति और प्रतिमा में जो मौलिक अन्तर है, वह यही है कि मूर्ति सामान्य दुनियावी मनुष्यों या प्राणियों की आकृति होती है, किन्तु प्रतिमा शब्द का प्रयोग देवताओं, देवियों महात्माओं या रूवर्गवासी पुर्वजों आदि की आकृतियों के लिए ही किया जाता है। मूर्ति–निर्माण और प्रतिमा निर्माण की क्रिया में कलाकार की शिल्पगत अभिव्यक्ति दो रूपों में

ही व्यक्त होती है। प्रतिमा निर्माण के लिए निश्चित नियमों और लक्षणों का विधान होता इस कारण कलाकार पूर्णतः स्वतंत्र नहीं होता है, इसके विपरीत मूर्ति–निर्माण में कलाकार पूर्ण स्वतंत्र होता है। प्रतिमा किसी देवी–देवता का प्रतीक होती है जबकि मूर्ति प्रत्यक्ष होती है। किसी पाषाण को मूर्ति नहीं कहा जा सकता जबकि मंदिर में सथापित कर देने पर उसे शिवलिंग कहा जा सकता है। प्रतिमा निर्माण के दो उद्देश्य माने जा सकते है–एक तो स्मृति या अतीत को जीवित बनाये रखना एवं दूसरा अमूर्त को मूर्त रूप देना, अव्यक्त को व्यक्त करना।

प्राचीन भारत में प्रतिमा–निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। हड़प्पा सभ्यता के अवशेषों में मिटटी की बनी हुई अनेक नारी–प्रतिमाएँ, योगी की प्रतिमाएँ एवं पशुपति की प्रतिमा प्राप्त हुई हैं जो सामान्य मूर्तियों से भिन्न हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त प्रस्तर पर निर्मित एक योगी की तरह प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसके मुँह पर दाड़ी, उत्तरीय ओढे हुए हैं, दृष्टि नासाग्र है। इस मूर्ति के उत्तरीय पर जिस प्रकार की तिफुलियॉ आकृति खीची गईं है वैसी आकृति का प्रचार मिस्र, कीट, मेसोपोटामिया आदि में भी था, जहॉ उसका संबंध देव प्रतिमाओं से था। अतः यह प्रतिमा भी किसी महापुरूष या देवता की ही मानी जा सकती है। हडप्पा सभ्यता से कायोत्सर्ग मुद्रा में प्राप्त नग्न धड़ एवं मुहरों पर अंकित आकृतियों को टी, एन. रामचन्द्रन व आर. पी. चन्दा आदि विद्वानों ने जैन प्रतिमाएँ माना है। इसी तरह पशुपति की प्रतिमा को विद्वान शिव प्रतिमा का पूर्व रूप मानते हैं।

सैंधव सभ्यता के पश्चात प्राचीन भारत की वैदिक सभ्यता में प्रतिमा के पुरातात्त्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं, लेकिन साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित होता है कि वैदिक काल में भी प्रतिमा पूजा की जाती थी। कुछ विद्वान मानते है कि वैदिककालीन उपासना काल्पनिक, भावात्मक एवं प्रतीकात्मक थी। यज्ञ का प्राधान्य था। अतः सभी अपने घरों में यज्ञ कर आहुति देते थे। अतः उनकी उपासना का आधार प्रतिमा न होकर प्रार्थना एवं आहुति थी। लेकिन विद्वानों का एक बड़ा वर्ग मानता है कि ऋग्वैदिक काल में प्रतिमा पूजा की जाती थी। ऋग्वेद में एक स्थल पर रूद्र की रंगी हुई प्रतिमा का उल्लेख हुआ है। एक स्थान पर कहा गया है कि पूजा के समय व्यक्ति इन्द्र और अग्नि को सजाते थे। ऋग्वेद में इन्द्र की प्रतिमा के लिए कहा गया है कि कौन मेरे इन्द्र को दस गायों में खरीदेगा। कोई व्यक्ति पूजा करते समय किसी देव की प्रतिमा के समक्ष कहता है कि तुम अपने वास्तविक रूप से इसमें प्रवेश करो। इन वाक्यों से स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल में प्रतिमा पूजा की जाती थी। ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में देवताओं के अलौकिक और शारीरिक रूपों का वर्णन किया गया है। वेदों में बहुत से देवताओं का वर्णन है। उनके मानवीय स्वरूप का वर्णन है, उनके अस्त्रों, शस्त्रों, हॉथों तथा अन्य काल्पनिक रूपों का वर्णन वैदिक साहित्य में मिलता है। इस समय के साहित्य में प्रायः वे सभी रूप एवं सभी देवताओं के संबंध में सूचनाएँ मिलती हैं जो परवर्ती काल में मूर्ति या प्रतिमा कला के विषय बने। साहित्य में उनके शाब्दिक रूपों का वर्णन है जिन्हे बाद में विविध प्रतीकों की सहायता से सांसारिक वस्तुओं के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप दिया गया है। इनमें यक्ष, नाग, गन्धर्व, सूर्य, आदि, अनेक देवी देवताओं का उल्लेख किया जा सकता है।

वैदिक साहित्य में श्री लक्ष्मी नामक देवी का उल्लेख किया गया है जो सौदर्य और समृद्धि की देवी थी। पुरूष सूक्त में भी इसका उल्लेख एक गृहस्थ की देवी के रूप किया गया है जिसे हाथियों द्वारा अभिषिक्त जल से उत्पन्न बतलाया गया है। हम जानते हैं कि परवर्ती काल में इन्हीं वर्णनों को ध्यान में रखकर श्री लक्ष्मी की प्रतिमाएँ बनाई गईं। इसी तरह अथर्ववेद में यक्षों का उल्लेख है और यह यक्ष पूजा तत्कालीन लोगों के धर्म का एक अंग था जिसे मौर्य–काल तथा उसके पश्चात मूर्ति–कला में स्थान दिया गया। इसी प्रकार चण्डिका और अदिति नामक देवियों के उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलते है, जो बाद के कालों में प्रतिमा के रूप में दिखाई गई है।

लौरियानन्दनगढ़ से प्राप्त स्वर्ण–पत्र पर बनी नारी मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह मूर्ति उस भीटे से प्राप्त हुई है जिसे वैदिक भीटा कहा जाता है। अतएव प्रायः सभी विद्वानों की यह धारणा है कि यह प्रतिमा लगभग 7–8 वीं शताब्दी ई. पूर्व की मूर्ति–कला का सुन्दर नमूना है। इसे ऋग्वेद में वर्णित पृथ्वी देवी की मूर्ति माना जा सकता है। यह मूर्ति एक शव के साथ स्थापित की गई थी और इसके पीछे सम्भवतः सही विचार था कि वह शव पृथ्वी देवी को समर्पित कर दिया गया है। कुछ विद्वानों इसे लक्ष्मी की प्रतिमा स्वीकार की है।

ऐसी ही मृण्मूर्तियॉ मथुरा से भी प्राप्त हुई हैं जिन्हे मौर्य–युग से पहले की कृतियॉ माना जाता है। इनमें प्रायः वही विशेषताएँ मिलती हैं जो लौरियानन्दनगढ़ की नारी–प्रतिमा में है। तक्षशिला के भीर नामक टीले से भी मूर्ति–कला के उदाहरण मिले हैं जिनमें मृण्मूतियॉ भी हैं।

पिपरहवा नामक स्थान से भी एक नारी–प्रतिमा प्राप्त हुई जिसे मौर्य–काल से पहले की मूर्ति माना जाता है। इसका निर्माण भी लौरियानन्दनगढ से प्राप्त नारी–प्रतिमा में मिली विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है।

प्रथम शताब्दी के खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में जिन प्रतिमा का उल्लेख है जिसे खारवेल मगध से वापिस लाया जिसको तीन सौ वर्ष पूर्व नंद राजा ले गया था। इससे स्पष्ट होता है कि ईसा पूर्व चौथी शती में जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की जाती थी। पुरातात्त्विक दृष्टि से प्राचीन जिन प्रतिमा पटना (लोहानीपुर) से प्राप्त हुई है। प्रतिमा का दिगम्बरत्व एवं कायोत्सर्ग मुद्रा स्पष्टतः उसे जिन प्रतिमा सिद्ध करते हैं, विद्वानों ने इसे मौर्यकालीन प्रतिमा माना है। उदयगिरि एवं खण्डगिरि की गुफाओं में ईसा पूर्व द्वितीय एवं प्रथम शती के जैन धर्म से संबंधित अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त बिहार प्रान्त के भोजपुर जनपद के अन्तर्गत चौसा से भी शुँगकालीन प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं हैं जो पटना के संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

मौर्यकाल एवं उसके बाद शुँगकाल अनेक यक्ष प्रतिमाओं का निर्माण किया गया, जो भारत के विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत हैं। वेसनगर एवं घोसुण्डी अभिलेख ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में वासुदेव की प्रतिमा की पूजा उल्लेख करते हैं जिससे इस धर्म की जानकारी पुष्टि की जा सकती है। भागवत धर्म के प्रभाव

स्वरूप बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय अस्तित्व में आया एवं बौद्ध धर्म में प्रतिमा पूजा की जाने लगी। महाराष्ट्र स्थित पर्वतमाला की गुहाओं में निर्मित चैत्यों में बौद्ध की प्रतिमा स्थापित की गईं एवं साथ ही मथुरा व गंधार में बौद्ध व बोधिसत्त्व की प्रतिमाएँ निर्मित व प्रतिष्ठित की गईं। गंधार शैली में प्राप्त प्रतिमाएँ उन पर यूनानी प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। गुप्तयुग तक प्रतिमाएँ राजाश्रय में निर्मित एवं प्रतिष्ठित की जाती रहीं। पूर्व मध्यकाल में देश में सामंतवाद एवं क्षेत्रीयतावाद चरम पर पहुँच गया फलस्वरूप कला की क्षेत्रीय शैलियाँ भी प्रादुर्भूत हुई। अलग–अलग शासकों ने अपने–अपने क्षेत्र में मंदिरों एवं प्रतिमाओं का निर्माण एवं प्रतिष्ठा करवायी।

13.4 प्रतिमा की विभिन्न परंपराएँ

मौर्य कालीन मूर्तियों की दो श्रेणियां का ज्ञान होता है। पाणिनि के अष्टाध्यायी मे ग्रामशिल्पी और राजशिल्पी का उल्लेख हुआ है। काशिका में भी इसी प्रकार शिल्पियों के दो वर्गों में उल्लेख मिलता है। डॉ0 अग्रवाल ने इसके आधार पर तथा प्राप्त कला प्रमाण के आधार पर यह माना है कि उस समय यहां ग्रामतक्षन् नाई, कुम्हार आदि थे वहीं राज्यशिल्पी भी थे जो दरबार के संरक्षण में कला का सृजन करते थे। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इस समय दो प्रकार की कलाएं निखर कर सामने आई।

(1) राजकीय कलाः–राजकीय कला जो दरबार के निर्देश पर बनाई जाती थी।

(2) लोक कला :– लोक कला जो लोक रुचि के अनुरूप बनाई जाती थी।

13.4. (अ) राजकीय कला

राजा या केंद्रीय सत्ता से अनुप्रमा अनुप्रमाणित कला पक्ष राज्याश्रित कला के रूप में। इसके अंतर्गत मौर्य नरेशों द्वारा बनवाये गए राजप्रसाद, स्तूप, चौत्य, विहार, गुफाएं तथा स्तम्भ हैं।मौर्य कला के साक्ष्य जहाँ एक ओर कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मौर्य राजदरबार में रहने वाले ''सीरियाई राजदूत'' मैगस्थनीज की 'इण्डिका' में संकलित हैं, वहीं दूसरी ओर कुम्हराहार,कौशाम्बी, सांची, सारनाथ आदि स्थानों पर उत्खननों के पुरावाशेषों तथा अशोक के शिलास्तम्भो, स्तूपों और गुफाओं से उपलब्ध होते हैं।

मौर्य काल में ''कला एवं स्थापत्य'' का चहुँमुखी विकास हुआ। अतएव भवन–सामग्री के रूप में अब काष्ठ कला के साथ–साथ पकाई हुई ईंटों तथा प्रस्तर का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया जाने लगा। विशाल प्रस्तर खण्डों को तलाश कर भव्य–स्तंभों के निर्माण की तकनीकी विकसित हो गई थी तथा पर्वतीय–चट्टानों को खोद कर उनमें गुहाओं का निर्माण कार्य भी इसी युग में आरंभ हुआ। स्थापत्य के क्षेत्र में अर्जित इन उपलब्धियों के अतिरिक्त 'वसति विन्यास' अथवा नगर निवेश जिसे आधुनिक भाषा में 'नगर–नियोजन' कहा जाता है।

मौर्य कालीन नगरों के संबंध में हमें जानकारी साहित्यिक, अभिलेखीय एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से प्राप्त होती है। राजधानी नगर पाटलिपुत्र के अतिरिक्त तक्षशिला, उज्जैनी, कौशांबी, तोसली, समापा, स्वर्णगिरी तथा इलिसा नामक नगरों का उल्लेख अशोक के अभिलेखों में है। ईंटों से निर्मित भवनों के अवशेष तक्षशिला, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, अतिरंजीखेड़ा, मथुरा, कौशांबी, राजघाट, श्रावस्ती, वैशाली, राजगृह एवं चम्पा के उत्खननों से प्राप्त है। काष्ठ–निर्मित भवनों के अवशेष पाटलिपुत्र से प्राप्त हैं।

13.4. (ब) लोककला

लोककला की परंपरा का प्रमाण उन महाकाव्य यक्ष मूतियों द्वारा प्राप्त होता है जो मथुरा से उड़ीसा, वाराणसी से विदिशा और पाटलिपुत्र से शुपारक तक के विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती हैं। इन यक्ष और यक्षियों की मूर्तियों में अपनी निजी शैली है जिसका ठेठ रूप देखते ही अलग पहचाना जा सकता है। उन्हें मौर्यकालीन राजकीय शिल्प के साथ जोड़ना संभव नहीं। यह सप्रणाम सिद्ध है कि कला की यह सविशेष शैली हजारों मील लंबे भू–भाग मे प्रचलित थी। अतिमानवीय महाकाव्य मूर्तियां खुले आकाश के नीचे स्थापित की जाती थी। ये चारों ओर से कोर पर बनाई जाती थी। पर इनमें सम्मुखदर्शन की विशेषता है। इनकी शक्ति, महाप्रमाण काय और प्रभुविष्णु रूप से सूचित होता है कि ये देवताओं की मूर्तियां हैं।

(1) मथुरा जिले के परखम ग्राम से प्राप्त यक्ष मूर्ति।

(2) मथुरा जिले के बड़ोदा ग्राम से प्राप्त यक्ष।

(3) भरतपुर जिले में नोह ग्राम से प्राप्त यक्ष या जाख।

(4) बेसनगर (भोपाल) भोपाल से प्राप्त यक्षी। इस समय भारतीय संग्रहालय कोलकता में सुरक्षित है।

(5) पटना शहर में दीदारगंज से प्राप्त चामरग्राहिणी यक्षी जिस पर मौर्य शैली का चमक है।

(6) बेसनगर की यक्षी जिसका स्थानीय नाम तेलिन है।

(7) प्राचीन वाराणसी के राजघाट स्थान से प्राप्त त्रिमुख यक्ष स भारत कला भवन में सुरक्षित है।

इन मूर्तियों की पहचान

प्राक्मौर्य, मौर्य और शुंगकालीन कला के इतिहास को समझने के लिए इन मूर्तियों की पहचान का बहुत महत्व है। श्री आनंद कुमारस्वामी, काशीप्रसाद जायसवाल और रामप्रसाद चंदा ने इन मूर्तियों की पहचान के विषय में विचार किया था।

13.5 सारांश

प्राचीन भारत में प्रतिमा की उत्पत्ति और प्राचीनता के साथ–साथ प्रतिमा के विभिन्न परंपराओं पर प्रकाश डाला गया है। भारत में प्रतिमा निर्माण की प्रक्रिया कब से प्रारंभ हुई, साथ–साथ इसकी प्राचीनता प्रतिमा निर्माण से ही शुरू हो जाती है, धीरे–धीरे समय आगे बढ़ता गया और प्रतिमाओं की सुंदरता में भी विकास हुआ, इसके साथ–साथ मौर्य काल में आकर दो रूपों में विभक्त हो जाती हैं। पहले को कहा जाता है राजकीय कला तथा दूसरे को कहा जाता है लोक कला, ऐसा स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

13.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- अग्रवाल, पृथ्वीकुमार. 2002.*प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, प्रथम संस्करण.* वि0वि0 प्रकाशन : वाराणसी।
- अग्रवाल, वासुदेवशरण. 2004.*भारतीय कला,* चतुर्थ संस्करण, पृथिवी प्रकाशन : वाराणसी।
- शुक्ला, जिनेंद्रनाथ. 1956. प्रतिमा–विज्ञान. लखनऊ।
- राय. कृष्णदास. 1996. भारतीय मूर्ति–कला. नागरी प्रचारिणी सभा : काशी।
- यादव. रुदल प्रसाद. 2016. भारतीय कला. विजय प्रकाशन मंदिर प्रा0लि0 : वाराणसी।
- उपाध्याय. उदयनारायण &तिवारी गौतम. 2015. भारतीय स्थापत्य एवं कला. मोतीलाल बनारसीदास : वाराणसी।
- सहाय. शिव स्वरूप. 2011–12. प्राचीन भारतीय मूर्तिकला. स्टूडेंट फ्रेंड्स : इलाहाबाद।

13.7 बोधप्रश्न

- प्राचीन भारत में प्रतिमा की उत्पत्ति एवं प्राचीनता का उल्लेख कीजिए।
- प्रतिमा की विभिन्न परंपराओं का परिचय दीजिए।

इकाई–14 : हिंदू प्रतिमा विज्ञान-विष्णु, शिव एवं सूर्य

इकाई की रुपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3विष्णु प्रतिमा

14.3.1 विष्णु प्रतिमा का पर रुप

14.3.2 विष्णु प्रतिमा का ''व्यूह'' (परिवार) रुप

14.3.3 विष्णु प्रतिमा का विभव (अवतारवादी) रुप

14.4 शैव–प्रतिमाएं

14.4.1शिव का प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप

14.4.2लिंगायत शिव प्रतिमा

14.4.2अ–मानुषलिंग

14.4.2ब–मुखलिंग

14.4.3 मानवीकृत शिव प्रतिमाएं

14.5 सूर्य प्रतिमा का विकास

14.5.1सूर्य–पूजा की प्राचीनता

14.5.2 सूर्य का प्रतिमाशास्त्रीय रूप

14.5.2 अ–पारिवारिक

14.5.2 ब–रथारूढ़

14.5.3 सूर्य प्रतिमाओं के विविध रूप

14.6 सारांश

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.8 बोधप्रश्न

14.1 प्रस्तावना

हिंदू प्रतिमा विज्ञान में विष्णु, शिव एवं सूर्य के प्रतिमाओं का उल्लेख किया जयेगा। जिसमें विष्णु प्रतिमा का ''पर'' एवं''व्यूह'' (परिवार), विभव (अवतारवादी) रूप तथा शैव–प्रतिमाएँ, लिंगायत शिव, प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप एवं सूर्य प्रतिमा का विकास, सूर्य–पूजा की प्राचीनता का उल्लेख किया जायेगा।

14.2 उद्देश्य

- विष्णु प्रतिमा के ''पर'' एवं ''व्यूह'' (परिवार) स्वरूप को जान सकेगें।
- शैव–प्रतिमाओं के प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप एवं लिंगायत प्रतिमा को जान पायेगें।
- सूर्य प्रतिमाओं का विकास, पूजा, प्रतिमाशास्त्रीय एवं विविध रूप को जानेगें।

14.3 विष्णु प्रतिमा

विष्णु के पांच रूपों की चर्चा भागवत संप्रदाय में की जाती है– पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा अर्चा। इसमें से पर रूप सर्वश्रेष्ठ है। यह सुख और अनंत का घोतक है, जबकि व्यूह भगवान के परिवार का स्वरूप है। इनके अवतार रूप को विभव कहते हैं। जिस अदृश्य रूप से यह भक्तों के हृदय में निवास करते हैं, उसे अंतर्यामी तथा उनके मूर्तस्वरूप को अर्चा या विग्रह कहा जाता है। इन्हीं रूपों से संबंधित प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इनसे संबंधित विष्णु प्रतिमाएं चार में पाई जाती हैः– योग, भोग, वीर और अभिचारिक। ये सभी प्रतिमाएं स्थिति के आधार पर आसान (बैठी), स्थानक (खड़ी) और शयन (लेटी) इन तीन स्थितियों में बनती हैं।

14.3.1 विष्णु प्रतिमा का पर रूप

विष्णु की अस्थानिक प्रतिमाओं का सबसे पहला अंकन पंचाल नरेश विषणुमित्र की मुद्रा पर मिलता हैं। यह अत्यंत छोटी मुद्रा है। अतः स्पष्ट नहीं हो पाता कि इनमें उनके दो हाथ हैं या चार। इसके बाद व्यवस्थित रूप से कुषाण युग से विष्णु की स्थानक प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हुआ। इनमें प्रायः चतुर्भुजी प्रतिमा के चारों हाथों में क्रमशः खड़क, वीणा, पाषाण और चक्र है। पर कुषाण काल की कुछ मूर्तियों में क्रमशः गदा, चक्र, शंख और अभयमुद्रा भी मिलती है। गुप्तकालीन कौशल में बनी विष्णु की स्थानक मूर्तियों के हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा तथा वरद या अभयमुद्राएं होती हैं। सभी गुप्तकालीन विष्णु मूर्तियां प्रायः चतुर्भुजी हैं। भले ही साहित्यिक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि विष्णु की अष्टभुजी

मूर्तियां भी बनती थी, किंतु उनका कोई मूर्त रूप अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। गुप्तोत्तर काल में भी चतुर्भुजी मूर्तियां ही मिली है, पर द्विभुजी मूर्तियां बहुत कम मिलती हैं जिनके हाथों में क्रमशः शंख और चक्र हों।

स्थानक प्रतिमाएं मूलतः योग, भोग, वीर और अभिचारिक रूपों में भिन्न–भिन्न प्रकार की पायी जाती हैं। योगस्थानक का रंग गहरा नीला हैं। इसके पिछले दाएं हाथ में चक्र तथा बाएं हाथ में शंख और अगला दाहिना हाथ अभयमुद्रा में तथा बाया हाथ कटयवलंबित होता है। इसके दाएं ओर भृगु तथा बाएं तरफ मारकंडे की मूर्तियां और मंदिर के दक्षिणी एवं उत्तरी दीवारों पर क्रमशः ब्राम्हण और शिव की आकृतियां होती है। भोगस्थानक में विष्णु के पिछले दाएं हाथ में चक्र तथा बाएं हाथ में शंख और अगला दाया हाथ वरद या अभयमुद्रा में और बाया हाथ कटयवलंबित मुद्रा में होता है। इस प्रतिमा के दाएं ओर हाथ में कमल लिए देवी तथा बायीं ओर भू–देवी नील कमल लिए अंकित होती हैं। वीर स्थानक प्रतिमा का उपयुक्त ज्ञान नहीं मिलता। अभिचारिक स्थानक प्रतिमाओं का रंग गहरा काला वस्त्र दो या चार हाथ नीचे किसी में देवी–देवता का अभाव होता है।

आसन प्रतिमाएं भी इन्हीं चारों रूपों की होतीं है। योगासन में विष्णु का श्वेत रंग चतुर्भुजी आकृति, पद्मासन होता है। ये अलंकारों से युक्त जटामुकुटधारी, केयूर कुण्डल, हार से युक्त होते हैं। इनके दो हाथ योग मुद्रा में होते हैं, पर शेष दो में शंख और चक्र नहीं होता। इनके पार्श्व में शिव, ब्रह्मा, सूर्य तथा सनत आदि की मूर्तियां होतीं हैं। भोगासन प्रतिमाएं सिंहासनासीन होतीं हैं। उनकी बायीं ओर भू–देवता तथा दायी ओर लक्ष्मी बानी होतीं हैं। विरासन प्रतिमाएं सिंहासनासीन होतीं हैं। जिसमे बाएं पैर मुड़ा, दांया पैर फैला घुटने मुड़े, भू–देवी और लक्ष्मी का अंकन तथा अन्य देवी–देवता भी साथ में होते हैं। अभिचारिकसान प्रतिमाएं नीले रंग की, काले वस्त्र पहने वेदिका पर बैठी तथा दो या चार हाथों वाली होतीं हैं।

शयन प्रतिमाएं गुप्तकाल में बहुतायत से बनने लगी थीं। वैखानस, आगम, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन आदि ग्रंथो में इनका लक्षण और पहचान दिया गया हैं। इनका निर्माण उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिकता से हुआ, क्योंकि की वहाँ से ये अधिक संख्या में मिली हैं। योगशयन प्रतिमा में विष्णु द्विभुज, इनका दांया पैर फैला, बांया मुड़ा, इनकी नाभि से निकलते हुए कमल पर आसीन ब्रह्मा तथा पैरों के नीचे मधु–कैटभ राक्षस की आकृतियां होतीं हैं। भोगशयन प्रतिमाएं चतुर्भुजी होती है, जिनमें पैरों के समीप भू–देवी बाएं चरण को स्पर्श करते हुए तथा पैरों के बगल में मधु और कैटभ प्रहार करते हुए, नाभि से कमलनाल निकलता हुआ। जिसपर ब्रह्मा स्थित है। दिक्पाल, चांवर धारणी ब्रह्मा के बगल में, चंद्र, अश्विन, तंबरु और नारद की आकृतियां भी होती

है। वीरशयन प्रतिमाओ में पैरों के समीप लक्ष्मी एवं भू–देवी तथा हाथ जोड़े मधु और कैटभ, नाभि से निकलते कमलनाल पर ब्रह्मा स्थित है अभिचारिक शयन प्रतिमा में विष्णु नीलवर्ण के, द्वि या चतुर्भुजी दो फणोंवाले शेषनाग पर शयन की अवस्था में लेटे होते हैं।

14.3.2 विष्णु प्रतिमा का ''व्यूह'' (परिवार) रूप

''व्यूह'' से अभिप्राय है परिवार से। इसी से इसमें विष्णु के गुणों के आधार पर चार ''व्यूह'' रूपों का अंकन हुआ– संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और वासुदेव। चतुर्व्यूह का विचार पतंजलि के समय प्रारंभ हुआ था। इनकी बढ़ती संख्या गुप्तयुग में चौबीस हो गई, जिनकी अलग–अलग मूर्तियां बनी और उनकी पहचान उनके चारों हाथों के आयुधों (शंख, चक्र, गदा और पद्म) के अंतर से होती हैं। इनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप का प्रारंभ कुषाणकालीन है। कुषाणकालीन मथुरा से एक चतुर्भुजी विष्णु की मूर्ति मिली है, जिनके दो हाथों में गदा और शंख है, एक खंडित है और एक अभयमुद्रा में हैं। यह वासुदेव की मूर्ति है। इसके दाहिने कंधे से संकर्षण और बलराम निकलते हैं, बाएं से अनिरुद्ध निकलते हैं तथा ऊपर प्रद्युम्न अंकित हैं। गुप्तकाल में चौबीसों व्यूहों की अलग–अलग मूर्तियां आयुधों के अंतर से मिलने लगीं।

14.3.3 विष्णु प्रतिमा का विभव (अवतारवादी) रूप

किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी भी देवता का एक निश्चित रूप धारण करना उनका अवतार रूप होता है। यहीं से अवतारवाद का प्रारंभ माना जाता है। इस भावना का उद्भव ब्राम्हणकालीन हैं। जहां भगवान विष्णु द्वारा प्रजापति के कल्याण के लिए उनके दस अवतारों की कल्पना की गई हैं– मत्स्य, कुर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध तथा अभी वर्तमान में अवतरित होने वाले कल्कि अवतार की कल्पना की गई हैं।

14.4 शैव–प्रतिमाएं

शिव की उपासना का हिंदू धर्म में विशेष महत्व है। वह एक ओर जहां संसार के रक्षक हैं, वहीं दूसरी ओर सृष्टि के संहारक भी है। इन्हें आर्यों और अनार्यो दोनों का देवता कहा गया है। उनके अनेक नाम विभिन्न ग्रंथों में मिलते हैं। वेदों में वर्णित देवता के रूप में भी शिव ही है जो जटाधारी एवं धनुषधारी है तथा मनुष्य एवं पशुओं के संहार में समर्थक हैं। इसमें वैदिक तथा वैदिकउत्तर तत्वों का समावेश हो चुका था। इन्हें ऋग्वेद में ''भिषग'' (चिकित्सक) ''वृषभ'' (प्रजनन करने वाला) आदि भी कहा गया हैं। उत्तर वैदिक काल में इन्हें ''पशुपति''

कहा गया है। यह रक्षक के देवता हैं तथा उन्हें महादेव भी कहा गया है, जो इनके सर्वशक्ति का घोतक है। कृष्ण यजुर्वेद में इन्हें ''कृत्यवासा'' वस्त्र की जगह खाल को पहनने वाला कहा गया है। वहीं उन्हें शिव तथा रुद्र भी कहा गया है। ये दोनों नाम इनके दो गुणों के कारण हैं– संहारक या विनाशक तथा अनार्य तत्वों के बोधक हैं और शिव कल्याणकारी या आर्य तत्व के बोधक है। अतएव अब इनमें नवीन तत्वों का विकास हो चुका था। किंतु इससे भी पहले सिंधु सभ्यता में शिव तत्व विकसित थां। वहां शिवलिंग का मिलना तथा पशुपति आकृति का अंकन इस तथ्य को पुष्ट करता है। किंतु एक संप्रदाय के रूप में इनका विकास पाणिनि के समय से हुआ। तब शिव की प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा था।

14.4.1 शिव का प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप

शिव की पूजा भारत में दो रूपों में की जाती है– एक प्रतीक के रूप में तथा दूसरी मानवाकृति के रूप में। प्रतीक रूप में ये लिंगरूप में पूजे जाते हैं। मानवाकृति रूप में इनकी विभिन्न मूर्तियां बनती हैं। लिंगरूप में बनी प्रतिमा को लिंगायत शिव प्रतिमा कहते हैं तथा दूसरे को मानवाकृति रूप की प्रतिमाएं कहते हैं, जो स्वरूप के अनुसार विभिन्न नामों से जाने जाते हैं।

14.4.2 लिंगायत शिव प्रतिमा

शिव का प्रतीक सामान्यतया लिंग माना जाता है। इसीलिए ऐसी पूजा को शिवलिंग कहते हैं। शिवलिंग का ज्ञान सिंधु सभ्यता में मिलता है। यद्यपि भंडारकर ने लिंग पूजा प्रचलन कुषाण काल से होना माना हैं, क्योंकि प्रथम शती से ही शिवलिंग का स्वरूप मिलना स्पष्ट करता है कि अब तक इसका उद्‌भव हो चुका था। आंध्र के गुड्डीमल्लम इसी समय के आस–पास का एक ऐसा शिवलिंग मिला है जिसके ऊपर जटाधारी शंकर की आकृति बनी हैं।

लिंग की बनावट में ऊपर लिंग का गोल भाग होता हैं। इसके नीचे उसका दूसरा भाग अष्टकोण होता है तथा उसके नीचे का तीसरा भाग चौकोर होता है। ये सभी एक ही शिलाखंड में बने होते हैं। इन तीनों अंगों को क्रमशः ऊपर से भोगपीठ, भद्रपीठ और ब्रह्मपीठ कहते हैं। अष्टकोण वाले भाग पर ही अर्धा लगाया जाता है। अर्घा का मुँह सदा उत्तर की ओर होता है तथा उसके नीचे वाला चौकोर भाग धरती के भीतर गड़ा होता है।

ये लिंग दो प्रकार के होते हैं : अचल, जो स्थायी रूप से किसी स्थान पर स्थापित किए गए होते हैं और सचल, जो रखे गए स्थान से दूसरे स्थान पर हटाये जा सकते हैं। जो अचल लिंग है उनमें मानुषलिंग तथा मुखलिंग प्रमुख हैं। किंतु

सचल लिंग मिट्टी, रत्न, पत्थर तथा लकड़ी आदि के बनाए जाते थे। इनका कोई विशिष्ट वर्गीकरण नहीं है।

14.4.2 अ—मानुषलिंग

इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि इस लिंग का निर्माण मनुष्य के स्वरूप को मानकर किया जाता है। इसमें तीन भाग होते हैं– रूद्र भाग, विष्णु भाग तथा ब्रह्म भाग। रूद्र भाग पर ही जल, पुष्प आदि चढ़ाया जाता है।

14.4.2 ब—मुखलिंग

जब लिंग के साथ शंकर के मुख्य की आकृति भी बनी होती है, उसे मुखलिंग कहते हैं, लिंग के ऊर्ध्व भाग पर ही मुख बने होते हैं। कुषाण युग से ही मुखलिंगो का मिलना प्रारंभ हो जाता है, पर गुप्त काल में बहुतायत से मिले हैं। मुखों की संख्या के आधार पर ये विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। जैसे– एकमुखी, द्विमुखी, चतुर्थमुखी तथा पंचमुखी लिंग। इनमें से द्विमुखी बहुत कम ही प्राप्त होते हैं। मंदसौर से तो अष्टमुखी लिंग भी प्राप्त हुआ है। पर ऐसे लिंग अत्यंत कम हैं। पंचमुखी लिंगों में लिंग के चारों ओर चार मुख होते हैं और ऊपर एक मुख बना होता हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर उसपर पांच मुख बने होते हैं। ऐसे लिंग प्रायः मिलते हैं।

14.4.3 मानवीकृत शिव प्रतिमाएं

ऊपर की तत्व के संबंध में देखा है कि शिव में दो विरोधी तत्व एक साथ विद्यमान हैं– कल्याणकारी तथा संहारकारी। कल्याणकारी तत्व के कारण शिव का सौम्य रूप सम्मुख आता है और संहारकारी तत्व के कारण इनका रौद्र रूप उभरता है। इन दोनों के भी अनेक उपरूप हैं जिनमें कुछ पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध है और कुछ उनसे असम्बद्ध लोक चलन में हैं। इस प्रकार इन चार रूपों में शिव का स्वरूप अलग–अलग धर्म में उभरा हैं।

14.5 सूर्य प्रतिमा का विकास

वैदिक काल के प्रमुख देव समूह में सूर्य की भी गणना होती है. सूर्य तथा विष्णु को एक ही स्वरूप मानते हैं यही कारण है कि सूर्य तथा वासुदेव दोनों आदित्य शब्द से अभिहित है, वैदिक आर्यों के प्रधान देवता इंद्र थे अपने पराक्रम से सब देवों को पराभूत कर देते हैं और उत्पन्न होते ही देवों में सबसे आगे अपना स्थान प्राप्त कर लेते हैं। फलतः आर्यों की सभ्यता तथा साम्राज्य के विस्तार में इंद्र का दैवी अनुग्रह सदा जागरूक रहता था। कालांतर में आर्यों के इस

जातीय देवता इंद्र की प्रमुखता में हास्य होने लगा। इनके स्थान पर सूर्य की प्रतिष्ठा हो गई। दैनिक जीवन में गायत्री मंत्र द्वारा सूर्य की ही प्रार्थना करते हैं कि हे देव! मेरी बुद्धि को प्रज्वलित करें। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पराक्रम से प्रकाश की ओर श्रद्धा का निर्देश है। पराक्रम भौतिक बल का लक्ष्य करता है किंतु प्रकाश अध्यात्मिक गुण की ओर। फलकः इंद्र से धार्मिक श्रद्धा हटकर प्रकाश के देव सूर्य की ओर अग्रसर हो गई। इसी कारण धार्मिक जगत में उपासको की श्रद्धा एवं भक्ति सूर्य की ओर विकसित होकर प्रतिष्ठित हो गई। इसीलिए इंद्र के पूजा के स्थान पर सूर्य की उपासना विकसित हो गई। वैदिक सूर्य सुक्तों में सूर्य देवता को रोग निवारक रूप का पर्याप्त वर्णन उपलब्ध होता है।

भारतीय कला में सूर्य की मनुष्य के रूप में प्रतिमा का निर्माण कोई प्राचीन घटना नहीं है, किंतु ईस्वी सन पूर्व में ही सूर्य देवता के प्रतीक–चक्र का कला में समावेश हो गया था। आहत सिक्कों पर भी चक्र चिन्ह अंकित है। सूर्य मंडल का प्रतीक अन्य सिक्कों तथा मुहरों पर अंकित मिले हैं। वैशाली के मुहर पर ''भागवत आदित्यस्य'' अंकित है। ये सभी उल्लेख सूर्य पूजा के प्रचार के घोतक हैं।

सूर्य पूजा की तिथि का प्रश्न विवादास्पद हैं। इस विवाद का आधार यह है कि कुषाणकालीन सूर्य प्रतिमा ईरानी वेष में दीख पड़ती है। लंबा कोट, घुटने तक लंबा उपानह (पैर की आकृति का अभाव) तथा सिरे पर लंबी ऊंची टोपी के सहित सूर्य आकृति बनी है। दूसरा आधार यह होगा कि सूर्य के मग ब्रह्मणों का भारत में आगमन ईरान से मानते हैं। इन लोगों ने (शाकद्वीपी ब्राह्मण=मग) शकद्वीप से भारत में प्रवेश कर सूर्य पूजा का विस्तार किया। भविष्यपुराण में साम्ब से संबंधित कथानक में वर्णन मिलता है।

14.5.1 सूर्य का प्रतिमाशास्त्रीय रूप

शास्त्रीय ग्रंथों में सूर्य प्रतिमाओं के दो रूप मिलते हैं :–

अ– पारिवारिक

ब– रथारूढ़

14.5.2 अ–पारिवारिक सूर्य

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार सूर्य का रंग अत्यंत सुंदर है। ये मूंछ रखे हैं, जो चमकता है तथा उनका रंग सिंदूर लाल वर्ण का हैं। उनका शरीर आभूषणों से व्यवस्थित तथा वेशभूषा विचित्र है। इनकी चार भुजाएं हैं। बृहद संहिता के अनुसार वह सिर पर मुकुट पहनते हैं तथा वक्ष से पैर तक उनका शरीर ढका होता है। उनके हाथों में कमंडल होता है तथा कानों में कुंडल और गले में हार।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार इनके दो प्रमुख अनुचर पिंगला तथा दाढ़ी इनके साथ होते हैं। दोनों के ऊपर सूर्य अपना हाथ रखे रहते हैं तथा सूर्य के बायीं ओर एक सिंहध्वज होता है। सूर्य के चार पुत्र हैं रेवंत, मनु, यम तथा द्वितय। ये भी वहीं साथ में विराजते हैं। इनकी चार पत्नियां हैं– राज्ञी, ऋक्षुभा, छाया तथा सुवर्चला। ये भी इनके साथ दोनों तरफ उपस्थित रहती हैं। ग्रहों में सूर्य प्रधान हैं, इसीलिए नवग्रह भी इनको घेरकर बनाए जाते हैं। यह सूर्य की खड़ी प्रतिमा का रूप है। इनके कमर में ''अंव्यंग'' (एक प्रकार की मेखला) होता है तथा पैर में लंबा बूट होता है। प्रायः इनका उदीच्य वेश होता हैं।

14.5.2 ब–रथारूढ़

सूर्य सात घोड़ों द्वारा चालित रथ पर आरूढ़ होते हैं, जिसका एक पहिया छः दंडो से युक्त होता हैं। उनका सारथी अरुण है जो उनका रथ चलाता है, रथ की व्यापकता का ज्ञान श्रीमदभगवत से होता है। ये सात घोड़े गायत्री के आदि सात छंद हैं। अप्सरा, गंधर्व, नाग आदि ये रथ के आगे पीछे स्वास्तिक वाचन करते हुए चलते हैं।

14.5.3 सूर्य प्रतिमाओं के विविध रूप

डॉ वासुदेव उपाध्याय ने सूर्य प्रतिमाओं को उनके रूप के आधार पर निम्न प्रकारों में विभक्त किया हैः–

1– स्थानक प्रतिमाएं

2– आसन प्रतिमाएं

3– बहुभुजी प्रतिमाएं

4–दक्षिण भारतीय शैली में निर्मित प्रतिमाएं

5– नवग्रह

किंतु इनके साथ इनका एक और रूप प्रतिमाओं में मिलता है, वह है :– द्वादशादित्य–सूर्य। अंततः इन छः रूपों का अध्ययन आवश्यक है। लगभग इसी प्रकार का विभाजन डॉ जे. एन. बनर्जी ने किया है।

14.6 सारांश

हिंदू प्रतिमा विज्ञान में विष्णु के पांच रूपों की चर्चा भागवत संप्रदाय में की जाती है– पर, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा अर्चा। इसमें से पर रूप सर्वश्रेष्ठ है। यह सुख और अनंत का घोतक है, जबकि व्यूह भगवान के परिवार का स्वरूप है। इनके अवतार रूप को विभव कहते हैं तथा शिव की उपासना का हिंदू धर्म में विशेष महत्व है। वह एक ओर जहां संसार के रक्षक हैं, वहीं दूसरी ओर सृष्टि के

संहारक भी है। इन्हें आर्यों और अनार्यो दोनों का देवता कहा गया है और सूर्य को वैदिक काल के प्रमुख देव समूह में रखा गया, सूर्य तथा विष्णु को एक ही स्वरूप मानते हैं यही कारण है कि सूर्य तथा वासुदेव दोनों आदित्य शब्द से अभिहित है, इसमें हिंदू प्रतिमा विज्ञान में शिव, विष्णु एवं सूर्य का उल्लेख है।

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।

- अग्रवाल, पृथ्वीकुमार. 2002.*प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, प्रथम संस्करण.* वि0वि0 प्रकाशन : वाराणसी।

- अग्रवाल, वासुदेवशरण. 2004.*भारतीय कला,* चतुर्थ संस्करण, पृथिवी प्रकाशन : वाराणसी।

- गुप्त, परमेश्वरीलाल. 2006.*भारतीय वास्तुकला, तृतीय संस्करण,* प्रकाशन विभाग, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक : वाराणसी।

- पाण्डेय, जयनारायण. 1997.*भारतीय कला एवं पुरातत्व,* पंचम संस्करण, प्रकाशन विभाग, प्रामानिक पब्लिकेशन्स : इलाहाबाद।

- पाण्डेय, जय नारायण. 2008.*भारतीय कला,* द्वितीय संस्करण. इलाहाबाद : प्राच्य विद्या संस्थान।

- पार्जिटर, एफ0 ई0. 1962.*दि पुराण टेक्स्ट ऑफ द डायनेस्टीज ऑफ द कलि एज.* वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज

14.8 बोधप्रश्न

- विष्णु प्रतिमा के लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।
- लिंगायत शिव प्रतिमा की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
- सूर्य के प्रतिमाशास्त्रीय एवं प्रतिमाओं के विविध स्वरूप का निर्धारण कीजिए।

इकाई–15 : बौद्ध प्रतिमा विज्ञान–ध्यानी बुद्ध, नश्वर मानुषी बुद्ध और बोधिसत्त्व

इकाई की रुपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 बौद्ध प्रतिमा

15.4 पंचध्यानी बुद्ध और उनकी विशेषताएँ

15.4.1 अमिताभ

15.4.2 अक्षोभ्य

15.4.3 वैरोचन

15.4.4 अमोघ सिद्धि

15.4.5 रत्नसम्भव

15.5 नश्वर या सप्तमानुषी बुद्ध

15.6 पंचध्यानी बुद्धों से सम्बद्ध बोधिसत्त्व

15.6.1 पद्मपाणि (अवलोकितेश्वर)

15.6.2 समन्तभद्र

15.6.3 रत्नपाणि

15.6.4 वज्रपाणि

15.7 सारांश

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.9 बोधप्रश्न

15.1 प्रस्तावना

बौद्ध प्रतिमा विज्ञान में ध्यानी बुद्ध, नश्वर मानुषी बुद्ध और बोधिसत्त्वों के लक्ष्णों एवं प्रतीको का वर्णन किया जा रहा है, जिसमें पंचध्यानी बुद्ध और उनकी विशेषताओं को दिखाने

का प्रयास है। नश्वर मानुषी बुद्ध और बोधिसत्त्वों का उल्लेख किया है।

15.2 उद्देश्य

पंचध्यानी बुद्ध और उनकी विशेषताओं को जान पायेगें।

- नश्वर या सप्तमानुषी बुद्ध को जान सकेगें।
- पंचध्यानी बुद्धों से सम्बद्ध बोधिसत्त्व को भी जान सकेगें।

15.3 बौद्ध प्रतिमा

बौद्ध प्रतिमा लक्षण के पृष्ठ–भूमि में बौद्ध–प्रतीक–लक्षण एवं बौद्ध स्थापत्य एवं कला–कृतियों पर थोडा सा संकेत आवश्यक है। इनमें प्रतिमा–पूजा के सांस्कृतिक उपोद्घात में बार–बार यह निर्देश किया है कि मानव के अध्यात्मवाद ने अर्थात उसकी धार्मिक तृष्णा ने किसी न किसी पूज्य प्रतीक का अवलंबन अनिवार्य रुप से ग्रहण किया है। बौद्ध धर्म इसका अपवाद कैसे रह सकता था? जो बुद्ध अपने जीवन में ही असंख्य नर–नारियों (जिनमें बड़े–बड़े राजा, महाराजा, सामन्त और श्रेष्ठि सभी थे) की अपार श्रद्धा एवं भक्ति था वह अपनी मृत्यु के बाद देववत् पूज्य हो गये–यह स्वाभाविक ही था। चूंकि महामानव बुद्ध ने अपने जीवन–काल में धर्म की इस अंग की ओर न तो प्रेरणा दी और न प्रोत्साहन अतएव कुछ समय तक तो स्थविर–वादियों नें बुद्ध की उन मौलिक शिक्षाओं को धर्म की मध्यम–मार्गी ज्योति को जगाये रखा।

15.4 पंचध्यानी बुद्ध और उनकी विशेशताएँ

इस ब्राह्माण्ड में महायान के अनुसार पाँच तत्व माने गये हैं, यथा विज्ञान, रूप, वेदना, संज्ञा एवं संस्कार। इसी को महायान सम्प्रदाय में पंच स्कन्ध कहा जाता है जिनसे पंच ध्यानी बुद्धों की उत्पत्ति हुई। इन पंचध्यानी बुद्धों की पहचान उनके रंग एवं प्रतीकों से होती है। जो प्रतीक तथा रंग जिस ध्यानी बुद्ध का होता है, वही प्रतीक तथा रंग उससे सम्बन्धित बोधिसत्त्वों का भी होता है। इस तरह पहचान करने में कठिनाई नहीं होती है कि कौन बोधिसत्त्व किस ध्यानी बुद्ध से और किस कुल या देवता से सम्बन्धित हैं।

15.4.1 अमिताभ

इनकी उत्पत्ति संज्ञा स्कंध से हुई है। इनका रंग लाल, मुद्रा समाधि, वाहन मयूर एवं प्रतीक कमल है। ये पंचध्यानी बुद्धों में सर्वाधिक लोकप्रिय ध्यानी बुद्ध

हैं। इनके दोनों हाथ ध्यान मुद्रा में होते हैं अथवा दोनों हाथ गोद में होते हैं और हथेलियाँ एक पर एक चढ़ी होती हैं तथा ऊपर की ओर खुली होती है। स्तूप के किनारे अंकन में इनका मुख सदा पश्चिम की ओर होता है। तिब्बत एवं चीन में इनकी मूर्तियाँ अधिक संख्या में पायी गई हैं। भारत में इनकी प्रतिमाएँ कुर्किहार, वैशाली तथा महाराष्ट्र राज्य के कन्हेरी की गुहाओं से प्राप्त हुई हैं। ध्यानी बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की उत्पत्ति इन्हीं से मानी जाती है। अवलोकितेश्वर के शीर्ष पर अमिताभ को खड़ी मुद्रा में दिखाया जाता है।

तांत्रिक बौद्ध ग्रथ *अद्वयवज्रसंग्रह* में अमिताभ के मयूर वाहन का उल्लेख है। अमिताभ से उत्पन्न देवताओं की मूर्तियों के मस्तक पर अमिताभ की लघुमूर्तियों के उदाहरणों में एक मयूर वाहन के रुप में अंकित प्राप्त होता है किन्तु वैशाली की अमिताभ की एकल मूर्ति में कलाकार ने उनके वाहन के रुप में दो मयूरों का अंकन किया है जो स्पष्ट ही कला की रचनाधर्मिता का परिणाम है। वाहन का दोहरे रुप में अंकन उसी सृजनशीलता के क्रम में माना जायेगा जैसा कि मूर्तियों में समानुपात प्रस्तुत करने की दृष्टि से अगल–बगल उपासक अथवा सिंह या अन्य प्रकार के अंकनों का प्रयोग कलाकारों ने विभिन्न उदाहरणों में किया है।

15.4.2 अक्षोभ्य

भूमिस्पर्श मुद्रा में, सिर पर वज्र सहित दो हाथियों के वाहन युक्त अक्षोभ्य की मूर्ति का वर्णन विभिन्न ग्रंथों में मिलता है। इनका रंग नीला एवं मुद्रा भूमिस्पर्श होता है, ये विज्ञान स्कंध से उत्पन्न देवता हैं। स्तूप के अंकन में इनका मुख पूरब की तरफ अंकित होता है। इनका दायां हाथ दायें घुटने पर होता है और अंगुलियाँ भूमि से स्पर्श करते हुए दिखती है, जबकि बायां हाथ गोद में ही रहता है। इनकी एक प्रतिमा कुर्किहार से मिली है। इस प्रतिमा में अक्षोभ्य को भूमिस्पर्श मुद्रा में विश्वपद्म पर आसीन बोधिवृक्ष के नीचे दिखाया गया है। अक्षोभ्य के कन्धों पर ललितासन में पद्म पर बैठी वज्रपाणि प्रदर्शित है। अक्षोभ्य से उत्पन्न बोधिसत्त्व वज्रपाणि हैं। इनकी अधिकांश मूर्तियाँ प्रस्तर एवं कांस्य में निर्मित की गई हैं। वज्रपाणि की मूर्तियाँ कश्मीर, नालन्दा, पटना, कुर्किहार, अंतिचक (भागलपुर) घोश्रवण (घोसरांवा), नालन्दा आदि से प्राप्त होती हैं।

15.4.3 वैरोचन

इनका रंग श्वेत, वाहन सिंह, मुद्रा धर्मचक्रप्रवर्तन तथा मुकुट में चक्र बना है। अधिकतर पद्म (कमल) पर पद्मासन की स्थिति में बैठे हुए दिखाए गये हैं, इनको

आदर्श ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। ***निष्पन्नयोगावली*** में वैरोचन श्वेतवर्णी, चतुर्मुखी एवं अष्टभुजी कहे गये हैं। समन्तभद्र इसी ध्यानी बुद्ध से उत्पन्न हुए हैं। वैरोचन की दो प्रस्तर प्रतिमाएँ कुर्किहार से एवं एक कांस्य प्रतिमा कश्मीर से प्राप्त हुई है। ग्यारहवीं शती ई0 की ध्यानी बुद्ध वैरोचन की एक प्रस्तर प्रतिमा कुर्किहार से मिली है। इस प्रतिमा के हाथ और मुख खण्डित हैं। बड़ौदा राज्य संग्रहालय में यह प्रतिमा संग्रहित है। कुर्किहार तथा बड़ौदा राज्य संग्रहालय से प्राप्त दोनों प्रतिमाएँ धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में हैं जैसा कि अद्वयवज्रसंग्रह में कहा गया है। कुर्किहार से प्राप्त एक प्रस्तर प्रतिमा की पहचान बी0 भट्टाचार्य ने वैरोचन से किया है। इस प्रतिमा के अंकन में विशेष बात यह है कि मुख्य मूर्ति समन्तभद्र की है जो ध्यानी बुद्ध से संबंधित बोधिसत्त्व के ऊपर अलग से अंकित किया गया है। वैरोचन और समन्तभद्र की मूर्तियों को अलग–अलग अंकित न मानते हुए यह माना जा सकता है कि ध्यानीबुद्ध का अंकन उससे उत्पन्न बोधिसत्त्व समन्तभद्र के मस्तक पर न करके लघु मंदिर के शिखर पर किया गया है। इस प्रकार दोनों देवताओं की एक नयी सम्बद्धता का स्वरुप कलाकारों ने प्रस्तुत किया है। यह इस बात से भी स्पष्ट है कि मंदिर के गर्भगृह में अंकित समन्तभद्र की मूर्ति बड़ी और शीर्ष पर अंकित उसके ध्यानीबुद्ध की मूर्ति छोटे आकार में है।

15.4.4 अमोघ सिद्धि

इनका रंग हरा, वाहन गरूड़, मुद्रा अभय और प्रतीक विश्ववज्र है। तारादेवी के साथ अमोघसिद्ध की मूर्ति प्राप्य है। पंचध्यानी वुद्धों के देवसमूह में अमोघसिद्धि सबसे अन्तिम माने जाते हैं। दाहिना हाथ इनका पृथक और बायां हाथ अभयमुद्रा में एवं मुख सदा दाहिने तरफ होता है। विश्ववज्र या दोहरावज्र इनका प्रतीक चिन्ह इनके साथ रहता है। कभी सात फणवाला सर्प इनके सिर पर होता है और कभी छत्र। तारा इनकी सहचरी है तथा इनसे उत्पन्न बोधिसत्त्व विश्वपाणि हैं।

15.4.5 रत्नसम्भव

इनका रंग पीला, वाहन अश्व, मुद्रा वरद एवं प्रतीक रत्न है। इनके नाम से लगता है कि बहुमूल्य रत्नों से इनका सम्बन्ध था। बंगाल के विक्रमपुर से ध्यानीबुद्ध रत्नसम्भव की एक प्रस्तर प्रतिमा प्राप्त हुई है। ग्यारहवीं शती ई0की इस प्रतिमा के आसन के नीचे रत्न के अतिरिक्त जम्भल और वसुधरा को प्रदर्शित किया गया है। द्विभुजी प्रतिमा को वज्रपर्यंक मुद्रा में पद्मस्थ दिखाया गया है। *अद्वयवज्रसंग्रह* में उल्लिखित इस प्रतिमा में रत्न चिह्न का अंकन किया गया है।

मूर्ति में जम्भल और वसुधरा के अतिरिक्त दो अन्य देवी मूर्तियाँ अंकित हैं जिसमें बायीं ओर की मूर्ति पर्यंकासन में वसुधरा के बगल में और जम्भल के बायीं ओर दो छोटी देवी मूर्तियाँ अंकित हैं, जिनमें से जम्भल के बगल वाली को हारीति माना जा सकता है, किन्तु शेष पर्यंकासन में बैठी नारी मूर्ति की पहचान सम्भव नहीं है। दाहिनी ओर की खड़ी मूर्ति वसुधरा की है जो अन्न की बाली हाथों में लिए हुए अंकित है। पाद पीठ के निचले भाग पर आमने–सामने खड़े बायीं ओर गज और दाहिनी ओर के अश्व का अंकन भी उल्लेखनीय है। यह समस्त परिवेश कलाकार की नयी उद्भावनाओं का परिणाम है।

15.5 नश्वर या सप्तमानुषी बुद्ध

सप्तमानुषी बुद्धों की स्तुति बौद्ध–साहित्य में चौबीस बुद्धों की अपेक्षा अत्यधिक लोकप्रिय रही है। *दीघनिकाय* के महापदानसुत्त में सप्तमानुषी बुद्धों का विस्तार से वर्णन दिया गया है। इन बुद्धों ने वृक्षविशेष के नीचे बोधि प्राप्त की थी। इनमें से प्रथम छः बुद्ध चौबीस की सूची में उन्नीस से चौबीस है और सातवें बुद्ध गौतम हैं। *दीघनिकाय* के महापदानसुत्त 1,2,8 का वर्णन इस प्रकार है– बुद्ध जेतवन विहार में ठहरे हुए थे। उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश दिया। पूर्व प्रादुर्भूत सात बुद्धों के नाम, कुल, जन्म, शिष्य, बोधिवृक्ष तथा जीवन के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बातें बतायीं। बोधिरुक्खों का स्पष्ट उल्लेख है–

"बोधिरुक्खा विपस्सी भिक्खवे, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो पाटलिया मूले अभिसम्बुद्धो सालस्स मूले अभिसम्बुद्धो ककुसंघी भिक्खवे, भगवा अरह सम्मासम्बुद्धो सिरीसस्स मूले अभिसम्बुद्धो, कोणागमनो भिक्खवे भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उदुम्बरस्स मूले अभिसम्बुद्धो, अहं भिक्खये एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो अस्सत्थस मूले अभिसम्बुद्धो।।

दीघनिकाय के पथिकवग्ग के आटानाटीयसुत्त में सप्तबुद्धों को नमस्कार किया गया है। कला में भी सप्तमानुषी बुद्धों अथवा पूर्व सप्त बुद्धों का अंकन किया गया है। भरहुत, साँची, बोधगया एवं सारनाथ की कला में सप्त बुद्धों का अंकन हुआ है। भरहुत में सप्तबुद्धों का सात बोधिवृक्ष के रुप में अंकन है। प्रत्येक बोधिवृक्ष के नीचे अभिलेख है, जिसमें पूर्वबुद्ध का नाम है। बोधिवृक्ष का नाम केवल विश्वभू के साथ आया है।

	सप्तमानुषी बुद्ध	बोधिवृक्ष दूरेनिदान के अनुसार	बोधिवृक्ष बुद्धवंश के अनुसार	लेख
1	विपश्यी	पाटलि	अश्वत्थ	भगवतो विपस्सिनो बोधि
2	शिखी	पुण्डरीक	पुण्डरीक	स्पष्ट नहीं है
3	विश्वभू	शाल बोधि	महासाल बोधि	भगवतो बोधि सालो
4	ककुसंघ	शिरीष	सिरीष	भगवतो ककुसंघस्स बोधि
5	कोणागमन	उदुम्बर बोधि	उदुम्बर बोधि	भगवतो कोणागमनस्स बोधि
6	काश्यप	न्यग्रोध	अश्वत्थ	भगवतो कस्सपस्स बोधि
7	शाक्यमुनि	अश्वत्थ		भगवतो शाक्यमुनिनो बोधि

बोधगया में भी सप्तबुद्धों का बोधिवृक्षों के द्वारा ही चित्रण हुआ है। केवल पाटलि, उदुम्बर एवं पीपल ही अपनी विशेषताओं के साथ चित्रित हैं।

साँची में भी सप्त पूर्व बुद्धों का प्रतीक माध्यम से अंकन है। ये अंकन कभी पृथक रुप से वृक्ष के माध्यम से हैं अथवा कभी एक साथ हैं। दक्षिणी तोरणद्वार के ऊपरी सिरदल के पृष्ठभाग पर सात मानुषी बुद्ध तीन स्तूप एवं चार वृक्षों के माध्यम से दर्शाये गये हैं।

15.6 पंचध्यानी बुद्धों से सम्बद्ध बोधिसत्त्व

15.6.1 पद्मपाणि (अवलोकितेश्वर)

अमिताभ महायान मतानुयायियों का लोकप्रिय देवता कहा गया है। महायान ग्रंथों में अमिताभ से संबंधित बोधिसत्त्व को पद्मपाणि कहा जाता है क्योंकि उनके हाथ में कमलपुष्प रहता है। पद्मपाणि मानव–बुद्ध का काम करता है। *महावस्तु* में कहा गया है कि भगवान अवलोकितेश्वर नामक बोधिसत्त्व के रुप में अवतरित हुए जिनका मुख्य कार्य जनहित के लिए चारों दिशाओं में देखना था। इसी से पद्मपाणि का नामकरण अवलोकितेश्वर हो गया। सम्भवतः बोधिसत्त्वों में यह सब से अधिक लोकप्रिय थे।

मध्ययुगीन भारतीय कला तथा नेपाल, तिब्बत आदि देशों में अवलोकितेश्वर की अत्यधिक पूजा होती रही है। यह अपनी विश्वव्यापी करुणा के लिए विख्यात थे। इन्होंनें विश्वकल्याण के लिए निर्वाण को स्वयं अस्वीकार कर दिया। *साधनमाला* में अनेक स्वरुप तथा विभिन्न नामों के साथ अवलोकितेश्वर का उल्लेख किया गया है। एक सौ आठ नामों से इनकी लोकप्रियता प्रमाणित होती है। नेपाली चित्रकला में एक सौ आठ अवलोकितेश्वर के भित्तिचित्र मिले हैं। अवलोकितेश्वर के ज्ञानोपदेश से मानव निर्वाणप्राप्ति के लिए उत्तरोत्तर अग्रसर होता जाता है। इकत्तीस साधना में इसका वर्णन मिलता है। इन्हे लोकेश्वर भी कहते हैं। मध्ययुगीन प्रतिमाएँ लोकेश्वर नाम से प्रायः विख्यात हैं।

15.6.2 समन्तभद्र

बोधिसत्त्व समन्तभद्र का वर्णन *निष्पन्नयोगावली* और *साधनमाला* ग्रन्थों में किया गया है। *निष्पन्नयोगावली* में उन्हे श्वेत रंग का भी बताया गया है। समन्तभद्र के दो स्वरूप ज्ञात होते हैं। *निष्पन्नयोगावली* और *साधनमाला* में उन्हें द्विभुजी और एक अन्य विवरण में उन्हें वड़भुजी वर्णित किया गया है। अपने द्विभुजी रुप में भी समन्तभद्र के दो लक्षण बताये गये हैं। एक में दाहिना हाथ वरदमुद्रा में और बायें में पद्म पर असि (उत्पलखड्गधरः) तथा दूसरे रुप में वे रत्नमञजरी अथवा

पद्य पर रत्न और कटिस्थ अथवा वरदमुद्रा धारण करने वाले उल्लिखित किए गए हैं। अपने षड्भुजी रुप में समन्तभद्र अपने दाहिने तीन हाथों में वज्र, कर्त्रि और परशु तथा बायें हाथों में घण्टा, कपाल तथा ब्रह्मसिर लिए हुए कहे गए हैं। षड्भुजी रुप में कभी–कभी ब्रह्मसिर के स्थान पर कमल तथा धर्मवज्र और शक्ति के साथ आलिंगनबद्ध बताया गया है।

समन्तभद्र की एक कांस्य प्रतिमा नालन्दा से मिली है। प्रतिमा में विश्वपद्म पर बैठे समन्तभद्र का दाहिना पैर मुड़ा हुआ पद्मासन अवस्था में स्थित है। इनके बायें पैर का घुटना ऊपर उठा हुआ है और कमर से शरीर के ऊपरी भाग तक शाल से ढका हुआ है। प्रतिमा के दायें हाथ की हथेली कोहनी तक खण्डित अवस्था में है। बायें हाथ से एक वृक्ष की शाखा पकड़े हुए हैं। शाखा के अग्रभाग पर तीन रत्न अंकित हैं। समन्तभद्र का मुकुट तिकोने तीन शिखरों वाला है। बोधिसत्त्व को कुण्डल, हार और बाजूबन्द जैसे विविध आभूषण धारण किए प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा के चारों तरफ अग्निज्वालंकित अण्डाकार प्रभावली प्रदर्शित किया गया है।

15.6.3 रत्नपाणि

रत्नपाणि के बारे में *निष्पन्नयोगावली* में एक विवरण मिलता है कि वे सुनहरे पीले रंग के हैं। उनके दाहिने हाथ में रत्न और बायें हाथ में पद्मस्थ चन्द्र धारण किए हुए बतलाया गया है। ध्यानीबुद्ध रत्नसंभव के बोधिसत्त्व होने के कारण इनके हाथ में रत्न धारण करना स्वभाविक है, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रत्नपाणि की भाँति आकाशगर्भ के साथ भी रत्न का सन्दर्भ बताया गया है।

15.6.4 वज्रपाणि

इनकी प्रतिमाएँ बौद्ध धर्म में प्रस्तर एवं कांस्य में निर्मित की गई है। वज्रपाणि की मूर्तियाँ कश्मीर, नालन्दा, कुर्किहार (गया) धोश्रवण, अन्तिचक (भागलपुर), रत्नगिरि (उड़ीसा) एवं औरंगाबाद से प्राप्त हुई है। इनकी मूर्तियाँ स्थानक एवं आसन मुद्रा में प्राप्त है। मूर्तियों के खड़े या बैठे होने के संबंध में

कोई निर्देश बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त नहीं है। दोनो प्रकार के आसनों का अंकन कलाकार की अपनी सोच है। बोधिसत्त्व वज्रपाणि की अधिकांश मूर्तियाँ वक्ष स्थल के पास बायें हाथ में वज्रधारण किये हुए तथा दाहिना हाथ अभयमुद्रा में अंकित प्राप्त होता है जैसा कि *साधनमाला* के विवरण से ज्ञात होता है।

इस प्रकार बौद्ध ग्रंथों में निर्देशित प्रतिमा लक्षण के अतिरिक्त कई अन्य स्वरुप भी मध्यकालीन कलाकारों ने कल्पित करके रुपायित किया है जो इन कलाकारों की सृर्जनात्मक विद्या के परिणामस्वरुप अथवा तत्कालीन बौद्ध समाज में अन्य प्रचलित स्वरुपों का अनुकरण माना जाना चाहिए जिसके सन्दर्भ किन्हीं ग्रंथों में विवरण प्राप्त नहीं है। नवीन रुपों में प्रतिमा लक्षण की सर्वप्रथम उल्लेखनीय वे मूर्तियाँ है जिसमें वज्रपाणि के बायें हाथ में वज्र धारण करने की स्थिति अथवा वज्र के साथ कोई अन्य लक्षण सम्मिलित करने का प्रयास किया गया। नालन्दा की मूर्ति में बायाँ हाथ पीठ पर है तथा पार्श्व में वज्र के साथ सनालपद्म अंकित किया गया है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वज्र धारण करने वाला हाथ बायें वक्ष के स्थान पर एक नये रुप में नीचे लटकता हुए रचा गया है। बायें हाथ में वज्र के साथ कहीं दो–दो वज्र का अंकन मिलता है। इस मूर्ति में वज्रपाणि के दाहिना हाथ में अभयमुद्रा के स्थान पर चौरी धारण किए हुए दिखाया गया है। वज्रपाणि के आयुधों में चौरी एक नया आयुध ज्ञात होता है किन्तु इस आयुध की परम्परा लोक प्रचलित रही होगी क्योंकि वज्रपाणि की नालन्दा और रत्नगिरि की मूर्ति में उनके एक हाथ में चौरी अंकित किया गया है।

15.7 सारांश

बौद्ध प्रतिमा विज्ञान में पंचध्यानी बुद्ध अमिताभ, अक्षोभ्य, वैरोचन, अमोघसिद्धि तथा रत्नसंभव एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन किया गया है साथ ही नश्वर या सप्तमानुषी बुद्ध एवंपंचध्यानी बुद्धों से सम्बद्ध बोधिसत्त्वों का उल्लेख किया गया है जिसमें वज्रपाणि, रत्नपाणि, पद्यपाणि, एवं समन्तभद्र उल्लेख है।

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- उपाध्याय, वासुदेव. 1972.*प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर.* पटना : बिहार हिन्दी ग्रंथ अकाडमी।
- उपाध्याय, वासुदेव. 1970.*प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान.* (प्रथम संस्करण). वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस।
- कनिंघम, अलेक्जेंडर. 1972.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया.* दिल्ली : रिपोर्ट वल्यूम–3.
- गुप्ता, परमेश्वरीलाल. 1965.*पटना म्यूजियम कैटलॉग एण्टीक्वीटीज.*पटना।
- भट्टाचार्य, बिनयतोश(सं0). 1948.*निष्पन्नयोगावली.* बड़ौदा : गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज, भाग–109।
- भट्टाचार्य, डी0सी0. 1974.*तान्त्रिक बुद्धिष्ट आइकनोग्राफी सोर्सेज.* नई दिल्ली।
- मार्शल, जॉन. 1918.*ए गाइड टू साँची.*कलकत्ता : सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिग।
- सिंह, विनय कुमार. 2007.*बौद्ध तान्त्रिक देव प्रतिमाओं का अध्ययन.* वाराणसी : कला प्रकाशन।
- नाथ, एन0. 1981.*ऑर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया.* नईदिल्ली।

15.9 बोधप्रश्न

- पंचध्यानी बुद्धों एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- नश्वर या सप्तमानुषी बुद्धों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
- पंचध्यानी बुद्धों से सम्बद्ध उनके बोधिसत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

नोट

नोट

नोट

नोट

नोट

नोट